दीपक—वर्ष ७, संख्या ११, सितम्बर १९४२ ई०

भूल सुधार

'पगली' शीर्षक कहानी के मूल लेखक श्री मा० भि० सोलापुरे है, सीतापुरे नहीं तथा इसके अनुवादक श्री कालीचरण पुरोहित हैं जिनका नाम भूल से छपने से रह गया।
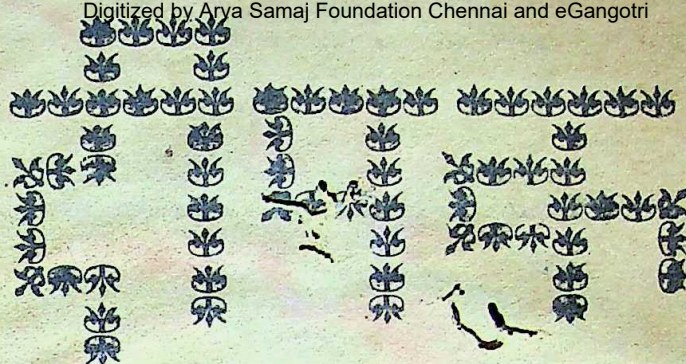
[Appr]oved for use in Schools in the Punjab, U.P., C.P., Bihar, Bombay, Orissa, Sindh, Kotah, Baroda, Bikaner & J & K. States

[हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन; प्रयाग की सम्पत्ति तथा पञ्जाब में राष्ट्रभाषा प्रचार करने वाली प्रमुख संस्था—
साहित्य सदन, अबोहर का मुखपत्र]

सत्यम् :: शिवम् :: सुन्दरम्

सम्पादक— तेगराम

भाद्रपद १९९६ } वर्ष ७, संख्या ११ पूर्ण संख्या ८३ { सितम्बर १९[३९]

तुलसी-वन्दना

ले०—साहित्यरत्न भँवरलाल भट्ट 'मधुप'

चारों ओर शोर सा मचा था जब मेदिनी पै,
छाई थीं घटाए घोर, पाप की—पतन की।
सूझ पड़ता था नहीं पुण्य का प्रकाश कहीं,
होती थी विजय काम-क्रोध—की-दमन की।
देश पराधीन, दीन-हीन हो गया था हाय,
सीमा हो गई थी जब सङ्कट-सहन की।
आ गए तभी थे तुम तुलसी दया-निधान,
लेकर अहिंसा शक्ति दानव-दलन की।

होता जो न जन्म संतराज तुलसी का यदि,
कौन भक्ति गङ्गधार भूमि पै उतारता।
सगर सुतों से पड़े मूर्च्छित समाज को दे—
कौन अवलम्ब, शाप उनका निवारता।
दिखला प्रदीप राम-नाम का 'मधुप' मंजु,
भूले प्राणियों को कौन दुःख से उबारता।
धरता न पुण्य पतवार कर्णधार वह,
पार हमें कौन भवसिंधु से उतारता।

नाच उठे भक्तों के मयूर—मन एक बार,
सावन की शुक्ल सप्तमी जो आज आ गई।
हुलसी समाज की शिराएं तार-तार बन,
चेतना की चन्द्रिका सुरस बरसा गई।
जाग उठे भाग अनुराग भरे भूतल के,
मानस की राग सुन मेदिनी लुभा गई।
आ गई है जीवन प्रदायिनी जयन्ती वह,
प्राणियों में पुण्य प्राण-ज्योति जो जगा गई।

धर्म का नवनिर्माण

ले॰ श्री किशोरलाल मशरूवाला

जब धारा-सभा में कोई नया कानून पास किया जाता है, तो उस विषय के पुराने कानून और उनकी धारायें रद कर दी जाती हैं। फिर तो नये कानून का ही हवाला दिया जा सकता है, और पुराना बेकार हो जाता है। इस का यह मतलब नहीं, कि पुराने कानून की हर एक धारा बदल दी जाती है, और नये में पुराने का कोई अंश ही नहीं रहने दिया जाता। लेकिन किसी भी नियम की प्राचीनता का कोई भी महत्व नहीं रहता। उसकी कदर इसी लिए होती है कि उसे नये कानून में स्थान मिला है।

हिंदू धर्म में एक बड़ी त्रुटि यह रह गई है, कि यद्यपि उसके हर एक युग में नये सद्‌गुरू, स्मृतिकार, आचार्य और सुधारक हुए हैं, तथापि उनमें से किसी ने पुरानी श्रुति स्मृतियों, भाष्यों और रूढियों को आगे के लिए अप्रमाण नहीं ठहराया—रद नहीं किया। अथवा यों कह लीजिए कि उनमें से किसी को इतना महत्व नहीं प्राप्त हुआ कि जिससे उनकी शिक्षा अथवा उपदेश से भिन्न या विरोधी शिक्षा देने वाले ग्रन्थ, वचन वा रूढियां अप्रमाण मानी जायँ। इसके विपरीत, रिवाज यह है कि पुरानी और नई शिक्षा के परस्पर विरोधी होने पर भी दोनों को समान महत्व देने और दोनों का आग्रह पूर्वक एक ही अर्थ करने की कोशिश की जाय। परिणाम इसका यह हुआ है कि आज प्रत्येक विषय में उसके अनुकूल और प्रतिकूल प्रमाण दिये जा सकते हैं। और, स्थिति यह हो गई है कि "नैको मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।"

शायद इस्लाम में ही पहली बार इस तरह का संशोधन हुआ है। वहां कुरान ने अरबस्थान के सभी प्राचीन ग्रन्थों और रूढियों को अप्रमाणित बना दिया। उनमें से जो ग्रहण करने योग्य मालूम हुआ होगा, उसको कुरान में शामिल करके प्राचीन शास्त्रों के संशोधन और चित्रण की आवश्यकता ही नहीं रखी गई। बल्कि ऐसा करना एक दोष माना गया। सिक्ख धर्म में ग्रन्थ साहब ने भी धर्म के एक क्षेत्र में कुछ इसी तरह का काम किया है। लेकिन मैं समझता हूँ कि उसने जीवन के सभी अङ्गों के विषय में अपनी नई स्मृति की रचना नहीं की।

ज्यों-ज्यों मैं मानव जीवन का, भारतीय जीवन का, पारिवारिक जीवन का, व्यक्तिगत जीवन का, अथवा अपने पास-पड़ोस के समाज से सम्बन्ध रखने वाले किसी भी प्रश्न का गहरा विचार करता हूँ, त्यों-त्यों आखिर में इस नतीजे पर पहुंचता हूँ कि संसार में इस समय जितने भी धर्म और सम्प्रदाय प्रचलित हैं, उनमें से किसी में इन प्रश्नों को सुलझाने का सामर्थ्य नहीं रहा। मनुष्यों पर उनकी पकड़ अब ढीली हो गई है। सर्व धर्म समभाव की दृष्टि से सब धर्मों के कुछ अँशों को लेकर एक नया भिन्न सम्प्रदाय बनाने पर भी उसमें यह सामर्थ्य या शक्ति नहीं आ सकती। आज आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य परमात्मा का और परमात्मा से अभिन्न इस विश्व-व्यापी जीवन का नया दर्शन और नया भाष्य (इण्टरप्रिटेशन) प्राप्त करे, और उसके आधार पर मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जो भी संशोधन या नव-निर्माण करना आवश्यक मालूम हो सो करे।

मैं यह नहीं बता सकता कि यह सब कौन करेगा, किस तरह किया जा सकेगा और इस में कितना समय लगेगा। मैं यह भी नहीं कह सकता कि इस नव-दर्शन

और विवरण में कोई न्यूनता ही नहीं रहेगी, अथवा यह यावच्चन्द्र दिवाकरों चलने वाली कोई रचना होगी। संसार में ऐसी कोई रचना हो ही नहीं सकती, जिसमें कभी कोई क्रान्तिकारी संशोधन करने ही न पड़ें, जो कभी नाश, ह्रास या जीर्णता को प्राप्त ही न हो, अथवा जिसमें तनिक भी अशुभ तत्व न रहे। परमात्मा को सदा एक रूप और सनातन होते हुए भी प्रत्येक युग में उसका दर्शन कुछ नवीनता लिए होता है, और उस नवदर्शन में नये धर्म और नये जीवन की उत्पत्ति होती है। नव दर्शन प्राप्त हो जाने पर प्राचीन दर्शन को और उस पर टिकी हुई धार्मिक रचना को पकड़े रहने में दोष है। नव दर्शन में भी दोष तो होंगे ही; तो भी नवयुग में वही काम आवेगा, पुराना नहीं। नये में पुराने का सारा ही स्वरूप तो नष्ट नहीं हो सकता; लेकिन नव-दर्शन और नवविवेचन ने उसके जितने अँश को स्वीकार किया हो, या अस्वीकार न किया हो, उतना ही रह सकता है।

वर्त्तमान धर्मों और सम्प्रदायों के स्थान पर जब तक अपने ही सत्य के बल के प्रमाण पर निर्भर रहने वाले किसी नये धर्म का निर्माण नहीं होता, तब तक मुझे आशा नहीं होगी, कि संसार शुभ की ओर प्रगति कर सकेगा।

('शिक्षण अने साहित्य' से) अनु० काशीनाथ [illegible]

भारत वीर से.

(पं० श्री हरिकृष्ण जोशी)

उठ! उठ!! अब तो भारत वीर!

देख क्षितिज वह लाल हुआ है,
अरुणोदय का काल हुआ है।
जग मग नभ का भाल हुआ है,
बोल उठा मृदु-भाषी कीर॥
उठ! उठ!! अब तो भारत वीर! ॥१॥

सोने वाले, सब जागे हैं,
जो पीछे थे अब आगे हैं।
लंगडे लूले उठ भागे हैं,
तेरा तो है स्वस्थ शरीर॥
उठ! उठ!! अब तो भारत वीर! ॥२॥

बजती है कब से रणभेरी,
युद्ध भूमि वीरों ने घेरी।
नींद नहीं टूटी पर तेरी,
क्या खायेगा सोता तीर?
उठ! उठ!! अब तो भारत वीर! ॥३॥

जब तू सम्मुख हो जायेगा,
अरि दल थर-थर थर्रायेगा।
विजयी लक्ष्मी वर लायेगा,
तू है विश्व विदित रणधीर।
उठ! उठ!! अब तो भारत वीर! ॥४॥

पगली

मू० ले०—मा० भि० सीतापुरे

"वह देखते हो ध्यान।"

"वही ना! एक पगली।"

"सचमुच?"

"हाँ, भाग्य बेचारी का! अच्छा सँसार था उसका, परन्तु दुर्भाग्य से सर्वनाश हो गया और आज बेचारी ऐसी स्थिति को पहुँच गई। भाग्य के सामने किसी का क्या चलता है!"

"अरेरे, बेचारी गरीब दुखिया!"

उसके सम्बन्ध में ऐसे ही उद्गार लाखों आदमियों ने निकाले होंगे; परन्तु वह पागल क्यों हुई—इस बात के मूल तक कोई नहीं पहुँचा।

नैसर्गिक नियम है कि बिना कारण के कोई भी कार्य नहीं होता, फिर उसके पागल होने का भी तो कोई कारण होना चाहिए।

लेकिन सोने की चमक ही देखने वाला; उसके चमकने का कारण जानने की इच्छा न रखने वाला सँसार इतना गहरा विचार क्यों करे? फिर सँसार का एक भी कौन सा काम गया उसके पागल होने से? ऐसे लाखों व्यक्ति सँसार में नित्य मिलते ही हैं। परन्तु खुली आँखों से, जागृत अन्तःकरण से उनका पिछला इतिहास हम देखें तो पता लगे कि गरीबों को जीवित रहने का अधिकार नहीं; दारिद्रय भारी पाप है।

* * *

"भों ऽऽऽऽ भों ऽऽऽऽ भों ऽऽऽऽ"

बीच में ही मिल का भोंपू बजने से सब मजदूर घबरा गए। उन्होंने समझ लिया कि किसी के प्राणों की बली चढ़ गई, या घायल तो कोई अवश्य हो गया; अन्यथा इस प्रकार बीच में ही मिल का भोंपू बजता नहीं। अतः सब काम करने वाले चिन्ता में पड़ गए। जिनकी स्त्रियाँ व बच्चे दूसरे विभागों में काम करते थे वे उनकी ओर दौड़ने लगे। 'क्या काल का समय कह कर आता है? आज हमारे में से ही कोई स्वर्गवासी हो गया।' इस प्रकार भय से भरी बातें करते हुए सब की थकान उड़ गई।

हर कोई दूसरों से पूछता था। 'क्या हो गया' परन्तु किसी को उत्तर देने का अवकाश कहाँ था? वहाँ तो हर कोई अपने-अपने व्यक्तियों को ढूंढ रहा था। अपने आदमियों को सुरक्षित देखकर कितने ही लोगों ने समाधान की साँस ली।

यह दङ्गल थोड़े ही समय में शांत हो गया। उस अभागे जीव के चारों ओर जन-समूह जम गया।

इञ्जिन पर चढ कर तेल डालते समय पट्टे में शर्ट आकर वह यन्त्र के विशाल चाक पर गिर गया था जिससे उसके सिर के चिथड़ेचिथड़े हो गये थे और यन्त्र का वह विशाल चाक रक्त से भर गया था। मानों अपनी बलि के रक्त का टीका ही लगा लिया। हर कोई उसके भाग्य को कोसने लगा।

बायजा—सदू की पत्नि—तो मूर्छित हो गई उस दृश्य को देखकर। इस प्रकरण के परिणाम के सम्बन्ध में क्या कहना, वह तो निश्चित ही था। अपघात से मृत्यु हो गई सदू की।

मृतक के शुभ-चिन्तकों को दो-चार रुपल्ले फेंक दिए और हो गया कर्त्तव्य पूरा मिल मालिकों का।

गरीबों के संसार की, उनकी भावनाओं की कीमत

इससे अधिक हो भी क्या सकती है ? फिर गरीबों की कहाँ है भावना और कैसा है उनका संसार ! किसे यह सब जानने की जरूरत पड़ी। अतः इस विषय में भी वही हुआ। बायजा को दो-चार पैसे देकर विदा कर दिया गया।

* * *

अञ्चल में दस वर्ष की बालिका।

क्या करती बायजा शहर में ?

लौटकर अपने गाँव में आ गई।

गाँव में माँ-बेटी घोर परिश्रम करतीं और जो कुछ मिलता उसी पर गुजरान करती। भाग्य के सामने किसी का क्या चलता है ? इसी तरह चार वर्ष बीत गए।

अब दूसरा ही प्रश्न बायजा के सन्मुख उपस्थित था। पारू का—अपनी पुत्री का विवाह करके उसका सुख से सँसार चलता हुआ देखना—यही एक ही चिन्ता उसको थी।

अरणा साहब नम्बरदार ने उसको अपने घर में प्रतिदिन झाड़ू निकालना, पीसना, फटकना आदि कार्यों के लिए रख लिया।

उसके बदले उसको मजदूरी भी अच्छी मिलने लगी। बायजा को मालूम हुआ मानो देवता ही मिल गए हैं।

परन्तु उस बेचारी को क्या पता कि देवता मिले हैं या पीछे हाथ धोकर पड़े हैं।

अरणा साहब ने दूसरे ही कारण से बायजा को अपने काम पर रखा था।

एक दिन उन्होंने अपना दाँव साधा। पहले से ही उनकी पारू पर आँख थी। और कई ठगबाजियों से उन्होंने उस अबोध बालिका को अपने जाल में फँसा लिया।

भोली बालिका !

उसको क्या पता सँसार कैसा है यह !

अरणा साहब पर विश्वास रखा उसने और फँस गई।

प्रकृति ने अपना कार्य्य-विशेष पूरा किया।

फिर तो अरणा साहब घबरा गए।

उन्होंने बायजा के लिए अपना घर बन्द कर दिया, और पारू के दर्शन तक नहीं किए।

पारू को अपनी असहाय स्थिति मालूम हुई।

एक समय भूखा रहना मञ्जूर, किन्तु आबरू के लिए दूसरों के द्वार पर न जाने वाला उसका स्वाभिमानी पिता उसकी आँखों के सन्मुख दिखाई देने लगा।

अपने घर में ही जैसी मिले, सूखी रोटी खाकर काल यापन करने वाली उसकी शुद्धाचारिणी माँ उसकी दृष्टि के सामने से हिली नहीं। किसकी छाती है उसकी ओर देखने की ?

किन्तु इन माता-पिता के मुख पर कालिख लगाने वाली बालिका की कैसी दुर्दशा हुई ? अपनी संगति के किसी एक युवक के साथ उसका विवाह कर देने की अरणा साहब को छाप—और बाद के उनके बर्ताव से उसको इस विश्वास-घातक संसार में जीवित रहना असम्भव हो गया।

भावनाओं के उद्वेग में अरणा साहब के खेत के कुएँ के पानी की सहायता से उस भोली बालिका ने इस संसार से जाने की आज्ञा लेली।

शव का पञ्चनामा होकर चीरफाड़ हुई और भेद खुल गया।

बायजा पर बज्राघात हुआ।

धरती माता फट जावे और मैं उसके उदर में समा जाऊँ, तो अच्छा हो। ऐसा वह सोचने लगी।

इस भावावेश में वह एकाएक जोर से हँसकर हाथों से विचित्र हाव-भाव करने लगी।

* * *

यह है पिछला इतिहास उपरोक्त पगली अर्थात् बायजा का।

फिर कहिए गरीबों को जीवित रहने का अधिकार है!

इस वर्तमान सामाजिक विषमता में—पूँजीपतियों के इस साम्राज्य में क्या वे जीवित रह सकेंगे?

अंतःकरण का द्वार खोलो। निद्रित हृदय को जागृत करो। मन के ऊपर की दासता को निकाल दो, आँखों के ऊपर का नशा दूर करके कहो कि गरीबों को जीवित रहने का अधिकार है?

राखी

रचियता—पं० रामाधार शुक्ल 'आशुकवि'

आओ आओ रक्षा बन्धन, प्रेम पूर्वक आवो।
किसके कर में बान्धूं राखी, मुझको आज बतावो ॥१॥

नहीं शिवा से बीर केसरी
नहीं प्रताप से भाई।
आल्हा ऊदल से न भइया
देते कहीं दिखाई ॥२॥

यह स्वर्णिम सी सुन्दर राखी
मैंने सुघड़ सजाई।
किसको बाँधू इस चिंता में
सारा दिवस बिताई ॥३॥

देश धर्म की बलि वेदी पर
बीड़ा झपट उठावे।
उसके मुख में बीड़ा दे दूं
राखी वही बन्धावे ॥४॥

आओ कोई बीर, बहिन की आशा पूर्ण कराओ।
देश धर्म पर मरने वाले, राखी सुभग बन्धाओ ॥५॥

जिनने देश धर्म पत राखी
उनको ही है यह राखी।
आओ हाथ बढ़ाओ भइया
बहिन बाँध दे कर राखी ॥६॥

वायु-विज्ञान

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध विज्ञान विशारद घाघ और भड्डरी को आकाश, वायु, नक्षत्रों की गति विधि का बड़ा गहरा अनुभव तथा ज्ञान था जिसके आधार पर हमें आज किस मास, तिथि या नक्षत्र में कौनसी दिशा की हवा चलती है--यह जानने से अच्छे-बुरे सम्वत् का पता लग जाता है यथाः—

सावन पछिवाँ भादों पुरवा, आसिन बहै इसान।
कातिक कंता सींक न डोलै, गाजैं सबै किसान॥

आसिन = असोज, इसान = पूर्व-उत्तर दिशा, सींक न डोलै—हवा न चले।

सावण मास सूरियो बाजै, भादरवे परवाई।
आसोजां में समदरी बाजै, काती साख सवाई।

सूरियो = उत्तर-पश्चिमी, समदरी = पश्चिमी, काति = कार्तिक

छिन पुरवैया छिन पछियाँवँ। छिनछिन बहै बबूला बाव।
बादल ऊपर बादल धावै। तबै घाघ पानी बरसावै॥
औआ बौआ बहै बतास। तब होला बरखा कै आस॥

हवा कभी पूर्व की कभी पश्चिम की अथवा बे सिर-पैर की बहे तो वर्षा होगी।

सावन क पछुवाँ दिन दुइ चार। चूल्ही क पाछा उपजै सार॥

सावन में २-४ दिन भी पछुवाँ चले तो सम्वत् बहुत अच्छा होगा।

चैत के पछुवाँ भादौं जलला। भादों पछुवाँ माघ क पल्ला॥

चैत में पछुवा चले तो भादों में जल पड़े और भादों में पछुवा बहे तो माघ में पाला पड़े।

बाउ चलेगी दखिना। मारड कहाँ से चखना।
बाउ चलेगी उतरा। मांड़ पियेंगे कुतरा।
बाउ चलेगी पुरवा। पियो मांड का कुरवा॥
दखनी कुलखनी। माघ पूस सुलखनी॥

दक्षिणी हवा आम तौर पर खराब होती है, पर माघ पौष में अच्छी होती है।

माघ पूस जो दखिना चलै। तौ सावन के लच्छन भलै।
सब दिन बरसै दखिना वाय। कभी न बरसै बरखा पाय॥

अर्थात् दक्षिणी हवा से वर्षा ऋतु में वर्षा नहीं होती।

फागुन मास बहै पुरवाई। तब गेहूं में गेरुई धाई॥

गेरुई रोग लगेगा।

जब बहै हड़हवा कोन। तब बनजारा लादै नोन॥

अर्थात् पश्चिम दक्षिणी हवा चले तो वर्षा न होगी।

सावन मास बहै पुरवाई। बरदा बेचि लिहा धेनु गाई॥

सावन में पूर्वा चलने से अकाल पड़े, अतः बैल बेच कर गाय लो और पेट पालो।

दिन सात जो चलै बांडा (दक्षिण पश्चिम की हवा)
सूखे जल सातो खांडा

जै दिन जेठ बहे पुरवाई। तै दिन सावन धूरि उड़ाई।
सावन पुरवाई चलै, भादों में पछियांव।
कन्त डँगरवा बेंचि के, लरिका जाई जियाव।

अर्थात अकाल पड़ेगा।

पवन बाजै पूरियो। हाली हलावकीय पूरियो॥

यदि उत्तर पश्चिम की हवा चले तो शीघ्र वर्षा होगी

अम्बाभोर चलै परवाई। तब जानो बरखा ऋतु आई॥

अम्बाभोर = जोर की।

उत्तम खेती आप सेती। मध्यम खेती भाई सेती॥
निकृष्ट खेती नौकर सेती। बिगड़ गई तो बलाय सेती॥
बाड़ी में बाड़ी करै, करै ईख में ईख।
वे घर यो ही जायँगे, सुनैं पराई सीख॥

चर्खा-जयन्ती

[अखिल भारत चर्खा-संघ केन्द्रीय कार्यालय वर्धा की ओर से]

पूज्य गांधीजी की आगामी ७४ वीं वर्ष-गांठ अंगरेजी तारीख के अनुसार २ अक्तूबर १९४२ को पड़ती है। उसे मनाने के लिए चर्खा सङ्घ ने नीचे लिखे अनुसार योजना बनाई है:—

१. चर्खा-जयन्ती का कार्यक्रम ता० २६ जुलाई १९४२ से शुरू किया जाय। यह तारीख इस वर्ष जन्मदिन भाद्रपद कृष्णा १२ से ७४ दिन पहले पड़ती है।

२ हर सूत कातने वाले से कम से कम एक गुंडी (६४० तार) सूत मांगा जाय।

३. वस्त्र-स्वावलम्बियों की सूची तैयार की जावे। वस्त्र स्वावलम्बी की व्याख्या यह है कि जो अपनी खुशी से सतत-सम्पूर्ण खादीधारी होकर नियमित रूप से हर महीने कम से कम ७॥ गुंडी सूत काते। नये वस्त्र-स्वावलम्बी बनाने की भी कोशिश की जाय और उनकी सूची भी बनाई जाय।

४. चर्खा जयन्ती के उपलक्ष में चर्खासङ्घ की ओर से रकम जमा की जाय। रुपये रसीद देकर ही लिये जायँ, और सारी रकम चर्खासङ्घ में पहुंचे। रसीदें चर्खासङ्घ की ओर से ७४ पैसों की, ७४ आनों की, ७४ चवन्नियों की और ७४ रुपयों की तथा कम अधिक देने वालों के लिए सादी रसीद भी छपवाई जायँ।

नोट: – रसीदें, खादी भण्डार बम्बई, द्वारा छपवा ली गई हैं। वहां से वे चर्खासङ्घ की शाखाओं में पहुँचा दी जाएँगी। उन पर चर्खासङ्घ के मन्त्री की तथा शाखा के मन्त्री की भी सही रहेगी।

५. चर्खा सप्ताह में अर्थात् ता० २ अक्तूबर से ७ अक्तूबर तक खादी व ग्रामोद्योगों के सम्बन्ध में विशेष रूप से प्रचार किया जाय। अधिक से अधिक स्थानों पर सूत्र-यज्ञादि किये जायँ। ता० २६ जुलाई से ७ अक्तूबर १९४२ तक प्रान्तीय तथा बाहर के नेताओं से ग्राम सभाओं में खादी और विशेष कर स्वावलम्बी कताई पर जोर देते हुए व्याख्यान करवाये जायँ।

आशा है, उपरोक्त कार्यक्रम के पूरा करने में जनता सहर्ष और उत्साह पूर्वक योग देगी। इस चर्खा-जयन्ती के बारे में पूज्य गांधीजी ने निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया है:—

चर्खा-जयन्ती

"गांधी-जयन्ती एक बहाना है, सच्ची बात तो चर्खा-जयन्ती ही है। चर्खा न होता तो शायद जयन्ती ही न मनानी पड़ती। मनानी पड़ती भी तो उसका महत्त्व न होता। बगैर हेतु के मनुष्यों की जयन्ती मनाने में तो मैं कुछ लाभ नहीं देखता फिर वह भले ही रिश्तेदार या मित्र-वर्ग का निर्दोष आनन्दोत्सव ही क्यों न हो। लेकिन गांधी-जयन्ती के बहाने से चर्खा-जयन्ती का सुयोग हुआ तो इसमें हेतु के बड़े और व्यापक होने के कारण जयन्ती उपयोगी वस्तु सिद्ध हुई है।

चर्खासङ्घ ने जयन्ती मनाने का निर्णय कर लिया है। उसका कार्य खादी के लिए चन्दा इकट्ठा करना, सूत कतवाना व सूत का इकट्ठा करना रहेगा। इसके लिए चर्खासङ्घ के पास भी नारायणदास गांधी का उदाहरण सामने है। वे कई वर्षों से सूत और चन्दे की रकम इकट्ठा करने की प्रतिज्ञा करके कार्य कर रहे हैं। प्रति वर्ष उन्हें उत्तरोत्तर सफलता मिलती जा रही है। कोई वजह नहीं कि ऐसी ही सफलता चर्खासङ्घ को न मिले। अगर दृढ संकल्प वाले कार्यकर्त्ता मिल सके तो सफलता अवश्य मिलनी चाहिए। खादी के बगैर लोगों के लिए नंगे रहने का अवसर आ सकता है। ऐसे अवसर को टालने का कार्य अगर कोई कर सकता है तो वह चर्खासङ्घ ही है।

सङ्घ के इस शुभ-साहस में सब लोग मदद देंगे ऐसी मैं आशा करता हूँ।" सेवाग्राम ता० २२–७–४२

कहानी

गरीब का हृदय

[मालचन्द चाचाण]

किसी गाँव में रामधन नाम का एक किसान रहता था। उसके एक लड़का था गणपत। घर में एक ऊँट, एक गाय तथा रहने के लिए कच्चा मकान और १०० बीघा खातेदारी की जमीन थी। न किसी महाजन का कर्जा देना था, न राज का लगान ही बाकी था अतः वह एक खाता-पिता गृहस्थ समझा जाता था। सम्वत् १९९४ में उसे अपने लड़के गणपत के विवाह के अवसर पर अपनी प्यारी गाय बेचनी पड़ी, तथा पास के कस्बे के कालूराम महाजन से २०) बतौर कर्जे के लेने पड़े। कालूराम ने २०) के एवज में उसका सवाया यानी २५) का दस्तावेज लिखा लिया तथा एक आना माहवारी ब्याज भी लिखा लिया। रामधन ने जिस साल गणपत का विवाह किया, उसी साल से उन प्राणियों पर काल का दुर्दमनीय चक्कर चलने लगा। अर्थात ३ साल तक लगातार अकाल पर अकाल पड़ते रहे। रामधन के परिवार को खाने को रोटी, तन की रक्षा करने के लिए कपड़ा, तथा ऊँट को खिलाने के लिए नीरा वगैरह मिलना दुर्लभ हो गया।

घोर दुर्भिक्ष के वे ३ साल कैसे पार किए, इसे परम-पिता परमेश्वर या रामधन का हृदय ही जानता है। बाप बेटा दोनों दिन भर मजदूरी करते तब जाकर कहीं ऊँट के लिए नीरे का प्रबन्ध होता। चौथे साल परमात्मा ने कुछ कृपा की अर्थात् किसानों के हृदय को वर्षारूपी अमृत के द्वारा तृप्त किया, तो रामधन को यह चिन्ता सवार हुई कि खेत कैसे बोवें? ऊँट तो अपने पास है, परन्तु बोने के लिए अनाज कहाँ से आये, सरकार ने जो कुछ तकावी के रुपये दिये थे वह तो सिर्फ उदर-नारायण की पूर्ति तथा ऊँट के लिए नीरा वगैरह लेने में ही खर्च हो गये। रामधन इस सोच में था। सब किसान सूर्योदय से पहले ही अपने-अपने हल लेकर, तेजा व बनजारा नामी देहाती गीतों को उच्चस्वर से गाते हुए आनन्द से प्रफुल्लित हो, खेत जोतने को जाने लगे। परन्तु लाचार, बेकार घर बैठे रामधन व गणपत का हृदय घोर निराशा के कारण इसी चिन्ता में रहता कि खेत जोतने के लिए अनाज कहाँ से आये।

बीज के लिए वह अपने गाँव के तथा कालूराम आदि अन्य समस्त जान-पहचान वाले लोगों के पास जा आये, परन्तु सबने टका सा जवाब दे दिया। आखिरकार व्याकुल हो दोनों घर की तरफ वापिस आ रहे थे, कि रास्ते में उन्हें अपने गाँव का एक जुलाहा मिल गया। उसने पूछा कि चौधरी! खेत में हल लेकर नहीं गये? तब रामधन ने अपनी सब कथा उस जुलाहे से कह सुनाई। उस जुलाहे ने कहा कि नौहर में एक "अकाल पीड़ित सहायता फण्ड" नामक सँस्था है। वह गरीबों की हर तरह से सहायता करती है। मैंने तो अपने अकाल के ३ साल उसी सँस्था की खद्दर बुन-बुन कर काट दिये हैं, तथा उसी के द्वारा अब भी अपने कुटुम्ब का पालन पोषण अच्छी तरह से करता हूँ। और भी हजारों गरीबों की इस सँस्था के द्वारा उदर-पूर्ति होती है। वह सँस्था मजदूरों को मजदूरी तथा अपाहिज व अनाथों को अन्न-वस्त्र देती है। अब सुना गया है, कि गरीब किसानों को खेत बोने के लिए अनाज मुफ्त देती है।

यह सुनकर वह दोनों वापिस नौहर की तरफ चल दिये और 'अकाल पीड़ित सहायता फंड' के दफ्तर में गए। वहाँ क्या देखते हैं कि जो कुछ उस जुलाहे ने कहा था वह अक्षरशः सत्य है। फण्ड के कार्यकर्ताओं ने उनको खेती के लिए प्रयाप्त

अनाज देकर अपनी सहृदयता का परिचय दिया। बाप-बेटा उन्हें दुआएं देते हुए घर लौटे और रात-दिन परिश्रम करके शीघ्र ही सारा खेत बो दिया।

परमपिता परमात्मा की अनुकम्पा से रामधन के खेत में काफी अनाज होने के लक्षण दिखाई देने लगे। उधर कालूराम महाजन ने सोचा कि रामधन के अनाज तो काफी होगा, पर ३ साल का तो सरकार का लगान ही बाकी है। तिस पर सरकार ने किसानों का हित सोचकर दीवानी बन्द कर रखी है। अब गोगामेड़ी का मेला नजदीक है, रामधन ऊँट बेच दे तो अपना रुपया मय ब्याज के आ जाये। ऐसा विचार कर उसने भादवा बदी २ सँ० १९९७ को रामधन को बुलाया। रामधन आया तो उससे रुपयों का कड़ा तकाजा किया। रामधन ने कहा—"सेठ जी मैं अनाज निकालते ही आपका सब रुपया दे दूँगा।" परन्तु सेठजी किसी तरह नहीं माने और कहा, कि मुझे गोगामेड़ी के मेले में दुकान करनी है। मेरे रुपये मय ब्याज के १००) होते हैं, सो चाहे किसी तरह करो, मुझे उस समय तक रुपया दो। घर का ऊँट है इसे बेच देवो, मेले के बाद में फिर खरीद लेना।" रामधन ने जवाब दिया—"सेठ जी! ३ साल अकाल ही में ऊँट नहीं बेचा, अब कैसे बेचूं? ऊँट हम जमीदारों के घर की शोभा है। हमारे जीवन-निर्वाह का साधन है।" परन्तु कालूराम ने कहा—"मेरे लिए चाहे तुम जहनुम में जाओ या ऊँट बेचो, तुम्हें मेरे १००) देने पड़ेंगे।"

बात लगने वाले के ही लगती है। रामधन के साथ गणपत भी आया हुआ था। उसने उसी वख्त कहा कि मैं तेरा रुपया ५ दिन के अन्दर दे देऊँगा, चाहे मुझे ऊँट ही क्यों न बेचना पड़े। किन्तु ३ वर्ष में २०) के १००) लेता है, परमात्मा के घर में इन्साफ है, कुछ रहम कर। परन्तु कालूराम कौड़ी भी छोड़ना न जानता था। गणपत उसी दिन ऊँट लेकर श्री गोगामेड़ी के मेले में बेचने के लिए चल दिया। उस साल हिसार आदि स्थानों के व्यापारी बहुत ज्यादा आये हुए थे अतः गणपत का ऊँट उसी दिन १०५) में बिक गया। यद्यपि शाम हो गई थी किन्तु कालूराम का रुपया चुकाने के लिए गणपत उसी वख्त रुपयों को कमर में बाँध हाथ में लाठी ले वापिस घर को चल दिया। रात्री के १२ बजे जब वह आधा सफर कर चुका, तो क्या देखता है, कि गोगामेड़ी के जङ्गल में मार्ग के पास २ चोर मुडासा मारे, हाथ में लट्ठ लिए, साक्षात यमराज के समान खड़े हैं। पास में कुछ कपड़ा, रुपया व जेवर आदि सामान पड़ा है, और एक ऊँट पास के वृक्ष से बँधा हुआ है। गणपत को देखते ही पहले चोर ने ललकार कर कहा कि, जो कुछ तेरे पास है रखदे। उसके जवाब में गणपत ने उसको एक लाठी रसीद की, वह वहीं लम्बा हो गया। दूसरा यह देखकर रफूचक्कर हो गया।

गणपत ने चोरों के समान व ऊँट की ओर नजर दौड़ाई तो देखा कि एक आदमी व स्त्री पेड़ से बँधे हुए पड़े हैं। वह नजदीक गया तो कालूराम महाजन और उसकी स्त्री को पेड़ से जकड़े पाया। उन दोनों को छुटाकर उसने कालूराम से कहा—"ले अपने रुपये सम्भाल।" यह कह कर रुपयों की पोटली उसके सामने फैंक दी। कालूराम ने झेंपते हुए रुपये उठा लिए, और वह गणपत से कुछ कहने को ही था कि गणपत ने बिना उनकी ओर देखे ही अपने गाँव का रास्ता लिया।

कालूराम ने सब सामान गोगामेड़ी ले जाकर, मेले में दुकान लगाली। मेला समाप्त होने पर जब गणपत के गाँव के आदमी घर पहुंचे तो उन्होंने बताया कि कालूराम की दुकान में आग लग गई थी जिससे उसका सारा सामान जल गया और १०००) रुपये का नुकसान हो गया। रामधन के खेत में अगले वर्ष २५०) मन अनाज हो गया अतः उसने सरकार का लगान दे दिया तथा १ ऊँट व १ गाय फिर वापिस खरीद ली और आनन्द-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगा।*

---

* नामों का परिवर्त्तन करके यह कहानी सच्ची घटना के आधार पर लिखी गई है। ले०—

achieving this aim than an improvemet in milk yields of Indian cattle" सम्भवतः इस ध्येय की पूर्ति में भारतीय पशुओं के दूध देने की उन्नति करने से बढकर और एक भी उपाय सफल नहीं हो सकता। इधर हाल ही में अपने भाषण में भारत सरकार के पशुपालन विशारद (Husbandary Expert) सर आर्थर आलिवर (Sir Arthur-olver) ने भारतवासियों के लिए दूध अन्य देशवासियों से कहीं अधिक आवश्यक बताते हुए इन शब्दों में खेद प्रकट किया था। "But whereas in other countries of the Empire the average consumption of milk is about 30 oz. per head per day, in India it is only 7 to 8 oz. her head per day" (किन्तु जबकि साम्राज्य के दूसरे देशों में मनुष्य पीछे प्रति दिन प्राय ३० औंस दूध लगने का औसत है, भारत में प्रति व्यक्ति प्रति दिन ७ से ८ औंस तक ही काम आता है)। सर आर्थर (Sir Arthur) ही क्या प्रकृति तक पुकार-पुकार कर कह रही है कि भारतवासियों के लिए दूध सबसे आवश्यक है। तभी तो हमारे यहां के गोदुग्ध में योरोप और अमेरिका की अपेक्षा १. १ प्रतिशत चिकनाई ज्यादा है। ऐसी स्थिति में क्या हम नहीं कह सकते कि गोरक्षा से विरत हो बैठना आत्महत्या एवँ सन्तति हनन के बराबर है ?

अब व्यावसायिक दृष्टिकोण से भी गोरक्षण पर विचार कीजिये। हमारा देश कृषि प्रधान है और स्वभावतया इसकी सम्पति अनाज इत्यादि ही है। पर यह सम्पत्ति, याद रहे, और कुछ नहीं उसी गोवत्स के सतत श्रम की रूपान्तर है। बैलों की क्षति हमारे व्यवसाय के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है। हमारे इस विचार की पुष्टि, सर नलिनिरञ्जन चटर्जी K. T., M. A., B. L. प्रधान Cow Preservation League (गोरक्षिणी सभा), कलकत्ता हाईकोर्ट के जस्टिस मन्मथनाथ मुकर्जी M. A., B, L., प्रधान अ० भा० गो सेवा सँघ (All India cow conferne Association) के १६ दिसम्बर सन २६ के, (Royal Conmission on Agriculture) के प्रधान जोनविक्टर (John Victor) अलैक्जैण्डर होप (Alexander Hope, B, L.) मारक्विस लिनलिथगो (Marquess of Linlithgow) एवँ अन्य सदस्यों के नाम पत्र में "Recemt enquiries by Govt & other official & non official bodies have proved that we have hardly one fourth the number of plough-cattle necessary to cultivate properly the arable area of the couutry, with the result that the rate of out-turn of crops is becomnig lower & lower followed by frequent famines & scaracity." अर्थात सरकार एवँ अन्य राजकीय और साधारण सँस्थाओं की हाल में की गई खोजों से यह सिद्ध होता है कि हमारे पास देश के जुताई योग्य भाग में ठीक-ठीक खेती करने के लिए हलधर पशुओं की आवश्यक सँख्या का कठिनाई से चौथाई भाग है, जिसके फलस्वरुप उपज क्रमशः कम होती जा रही है तथा आये दिन अकाल और कमी का सामना करना पड़ता है), से हो जाती है। इसके अतिरिक्त All India Cow conference Association, Caecutta के मन्त्री के नाम हैदराबाद के राजनीतिक विभाग के मन्त्री के ६ फरवरी सन २३ में लिखे नं० २१७ वाले पत्रोत्तर से स्पष्ट है, कदाचित ऐसी धारणा से मुस्लिम मुकुटमणि निजाम ने प्रजा के कल्याण के लिए बकरईद तक पर गोहिंसा बन्द करादी। मूल आज्ञा इस प्रकार है। "His Exalted Highness has been Graciously pleased to issue a Firman prohibiting the slaughter of Camels & Cows on the occasion of Bakrid festival" (गौरवान्वित महाराज ने बकरईद के त्यौहार पर ऊँट और गोवध का निषेध करते हुए आज्ञा

पत्र जारी करा दिया है। क्या हमारे मुस्लिम मित्र इस ओर कुछ ध्यान देने की कृपा करेंगे? जैसा कि हम बता चुके हैं, गोवध देशी व्यवसाय के लिए भारी क्षति का कारण है। एक गो की हत्या उसी तक सीमित नहीं रहती, प्रत्युत उसकी उपयोगी भावी सन्तान के नाश का भी उत्तरदायित्व वधिक पर है। एक ओर तो इतपशु से होने वाले बैल अपने ईश्वरदत्त स्वत्व, जीवन का उपभोग करते हुए आपकी आजन्म धनधान्य समृद्धि बढाते, मादा पशु आपके परिवार को सुस्वादु पदार्थ बनाने के लिए दूध घी प्रदान करते, तथा दूसरी ओर दरिद्र भारत की आर्थिक समस्या भी बहुत अँशों में हल हो जाती।

आज जब कि भारत-धरा गोरक्त रञ्जित है, तब भी यहाँ प्रति वर्ष (आठ सौ मिलियन) 800 Million (१ मिलियन = १० लाख) मन दूध होता है, जिसका मूल्य ३०० करोड़ रुपये साल है। अब अनुमान कीजिये कि आप देश को आर्थिक ठेस भी कितनी पहुँचा रहे हैं। इस सँसर्ग में कुछ लोग यह भी कह दिया करते हैं कि अनुपयोगी बूढ़े पशु जीवित तो कुछ काम दे नहीं सकते, उनको खिलाना-पिलाना भी वृथा ही जाता है। यदि ऐसे पशुओं को मारा जाय तब कौन आपत्ति है? हम यह पूछना चाहते हैं कि जो पशु जीवन पर्यन्त सेवा करे क्या वह दो साल बेकार रहकर खाने का हकदार नहीं? मनुष्यत्व की भी कुछ माँग है कि नहीं? यदि स्वार्थान्ध उपयुक्ततावाद ही आपके जीवन में सर्वेसर्वा है तो क्या एक समय वह भी आयेगा कि जब शिथिल वृद्ध स्वजनों का भी किसी घातक साधन द्वारा अन्त कर उनकी खाल के जूते बनाये जायेंगे? विदेशी लोग तो (Dairy Farm) खोलें और आप अपनी सम्पत्ति का स्वयँ गला काटें? आह? कैसा लोमहर्षण काण्ड है!! कितनी दयनीय दशा है!!!

एक हम कि बिगाड़ ली अपनी सूरत,
एक वह हैं जिन्हें तस्वीर बना आती है।

मित्रो, हम पुनः यह कह देना चाहते हैं कि गोवध आत्महनन है, सन्तति हनन है और साथ ही देश द्रोह भी।

यहाँ हमारा भारत सरकार से भी यह अनुरोध है कि वह भी निजाम की नीति का अनुशीलन कर अपने प्रजावात्सल्य का परिचय दे, अन्यथा हमें भय है कि भावी भारतीय इतिहास में जब-जब इस काले कानून की चर्चा होगी, तभी उसके नाम पर इसे प्रोत्साहन प्रदान करने का स्थायी धब्बा नजर आयेगा। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति हर्बर्ट हूवर के मतानुसार श्वेत जाति होते हुए उसका भी भाग्य निश्चय ही गौओं से सम्बद्ध है तथा वह भी गोशाला की उपज के बिना नहीं रह सकती। अतः सावधान! अब भी समय है।

अंग्रेज़ी का मोह

[श्रीमन्नारायण अग्रवाल]

सन् १९३५ की बात है। मैं इंगलैण्ड में था। एक दिन एक अमेरिकन महिला ने मुझ से हिचकिचाते पूछा—"क्या हिन्दुस्तान में आप लोगों की कोई स्वभाषा नहीं है?" "कई भाषायें हैं जिनमें सुन्दर साहित्य भी है!" मैंने उत्साह पूर्वक उत्तर दिया। "लेकिन फिर हिंदुस्तानी लोग आपस में अँग्रेजी में क्यों बोलते-चालते हैं?" उस महिला ने पूछा।

"हिंदुस्तान एक बड़ा देश है। उसमें कई प्रांतीय भाषायें हैं। लेकिन सारे देश के लिए एक स्वदेशी भाषा का प्रचार अभी तक नहीं हो सका है।"

"किंतु उत्तर हिंदुस्तान के लोग भी आपस में अँग्रेजी में बोलते हैं। दक्षिण के लोग भी! ऐसा क्यों?"

इस प्रश्न का मैं क्या उत्तर देता ! शर्म से सिर नीचे झुकाना पड़ा। उत्तर हिंदुस्तान का हाल तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। अब तक पुत्र अपने पिता को अँग्रेजी में खत लिखते हैं। पति यह चाहते हैं कि पत्नी उन्हें अँग्रेजी में पत्र लिखे। कालिजों और विश्व-विद्यालयों के प्रोफेसर अपने विद्यार्थियों से हिंदी में बोलना शान के खिलाफ समझते हैं।

दक्षिण हिन्दुस्तान में तो अँग्रेजी करीब-करीब मातृ-भाषा ही बन गई है। घर पर भी जो भाषा बोली जाती है उसमें आधी तो अँग्रेजी ही होती है।

मेरे एक मित्र बर्लिन में थे। वे एक दिन अपने कमरे में बैठे चुपचाप डायरी लिख रहे थे। उनका जर्मन मित्र कमरे में आया और उसकी निगाह अनायास डायरी की ओर पड़ी। जब उसने देखा कि डायरी अँग्रेजी में लिखी थी तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उससे न रहा गया। "आपकी मातृभाषा क्या है ?" उसने जिज्ञासा पूर्वक पूछा। "हिंदी", मेरे मित्र ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

"फिर आप डायरी अँग्रेजी में क्यों लिखते हैं ?" जर्मन नवयुवक ने कुतूहल से पूछा।

इस प्रश्न का उत्तर मेरे मित्र क्या देते !

* * *

अँग्रेजी का प्रेम हमारी नस नस में समा गया है। हम अँग्रेजी भाषा का उपयोग अनजाने ही करते हैं। मैंने बहुत से हिंदी-प्रेमियों को देखा है कि हिंदी में लिखे पत्रों के नीचे वे जल्दी में दस्तखत अँग्रेजी में ही कर जाते हैं।

मैंने पिछली गर्मी की छुट्टियाँ पचमढी में बिताईं। पचमढी महादेव पहाड़ पर बसा है। वहाँ महादेव के कई पवित्र स्थान हैं। उन जगहों में भी लोगों ने चट्टानों पर बड़े परिश्रम से अपने नाम खोदे हैं, ताकि शायद शङ्करजी मोक्ष देने के समय उनका नाम याद रख सकें। लेकिन सब नाम तो अँग्रेजी अक्षरों में ही खुदे हुए हैं। बेचारे शङ्कर जी अँग्रेजी क्या जानें !

अन्य तीर्थ स्थानों में भी लोग अपनी अँग्रेजी की लियाकत का प्रदर्शन करने में नहीं चूकते। और इन छोटी बातों की ओर हमारा ध्यान भी नहीं जाता।

* * *

जब तक हमारे देश में उच्च शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी रहेगा तब तक देशी भाषाओं के लिए लोगों का प्रेम और आदर नहीं बढ सकेगा। हमारे कालिजों में विद्वान हिंदी प्रोफेसर तुलसीदास और सूरदास पर भी लच्छेदार अँग्रेजी में भाषण देते हैं। हिन्दी-साहित्य के प्रश्न-पत्र अकसर अँग्रेजी में ही बनाये जाते हैं। हम अँग्रेजी लिखने और बोलने में अपनी भारी शान समझते हैं, चाहे हमारी अँग्रेजी कितनी ही भद्दी और गलत क्यों न हो।

हमारी ऊँची से ऊँची शिक्षा मातृभाषा द्वारा ही होनी चाहिए। यही स्वाभाविक है; इसी में हमारा कल्याण है। आज हमारी देशी भाषाओं का अँग्रेजी के सामने अपमान किया जा रहा है। उनका विकास रुक गया है। किन्तु यदि हम अपने सभी भाव और विचार अपनी मातृ-भाषा में प्रकट करना शुरू कर दें तो देशी भाषायें पूर्णरूप से सुसम्पन्न और विकसित हो सकेंगी।

* * *

आज कल हम हिन्दी और उर्दू का विवाद पढते और सुनते हैं। किंतु असली समस्या दूसरी ही है। मुख्य प्रश्न तो यह है कि हिन्दी और उर्दू मिलकर अँग्रेजी को राष्ट्रभाषा के स्थान से कैसे हटावें। अँग्रेजी भाषा से हमारा कोई द्वेष नहीं है। वह एक सुन्दर और सम्पन्न भाषा है। लेकिन उसे हमारी देशी भाषाओं को पैर तले कुचल कर हिंदुस्तान की रानी बनने का कोई अधिकार नहीं है।

अँग्रेजी हुकूमत के प्रति तो अब हमारा आदर नहीं रहा है, लेकिन अँगरेजी भाषा के लिए हमारा मोह कायम है। हम कब अपनी देशी भाषाओं का उचित सम्मान करना सीखेंगे ? ('राष्ट्रभाषा प्रचार' से)

बासा भोजन

[ले०—सुरेन्द्रप्रसाद गर्ग]

यदि हमसे पूछा जाय कि भारतवर्ष में क्षय फैलने के क्या कारण हैं तो हम बासा भोजन या रोटी खाने के रिवाज को भी अन्य कारणों के साथ-साथ प्रमुख कारण बतावेंगे। बासे भोजन से हमारा अभिप्राय उस भोजन-सामग्री से है, जो पकने या बनने के पाँच-छह घण्टे या उससे भी अधिक देर बाद खाई जाती है। इसमें समस्त प्रकार की बासी मिठाइयाँ, नमकीन, तथा विदेश से आने वाले बिस्कुट, दूध, चाकलेट आदि सभी शामिल हैं। हम, हमारी बहिनें तथा बच्चे इस प्रकार के ठण्डे या बासे भोजन की हानियों को नहीं समझते और दिनों-दिन हममें ताजा भोजन को छोड़ कर बासे तथा सड़े भोजन को खाने की प्रवृत्ति बढती जा रही है। फलस्वरूप घर-घर अनेक रोगों ने अड्डा जमा लिया है और बहुत प्रयत्न करने पर भी वे टस से मस नहीं होना चाहते।

बासे भोजन से हानियाँ – हम जानते हैं कि शरीर को जीवित भोजन (Live-food) की आवश्यकता है। जीवित भोजन वह है जिसमें शरीर के लिए आवश्यक तत्व, विटामिन तथा खनिज लवण आदि विद्यमान हों। वस्तुतः ताजे फलों, शाकों आदि को ही जिन्दा भोजन कहा जा सकता है और इसके सेवन से ही मनुष्य वर्षों जीता हुआ स्वास्थ्य, सुख, सामर्थ्य आदि का उपभोग कर सकता है। हमारा दैनिक रोटी, दाल, शाक-पात, चावल आदि का भोजन भी कुछ अँशों में जीवित ही है, क्योंकि इसमें शरीर के उपयुक्त कुछ न कुछ तत्व रहते हैं। पर हमें याद रखना चाहिए कि भोजन जितना अधिक आग पर पकाया जायगा, उतना ही वह शरीर के अनुपयुक्त होगा। तात्पर्य यह है कि आग पर पका भोजन यों ही अनेक गुणों से विहीन होता है और यदि उसे ताजा न खाकर कुछ समय तक रख छोड़ें तो उस भोजन में एक प्रकार की सड़न की क्रिया होने लगती है जो भोजन के रहे-सहे गुणों को भी नष्ट कर देती है। ऐसे भोजन से शरीर अपने लिए कुछ पोषण ग्रहण नहीं कर सकता। बासा भोजन इस प्रकार का सड़ा हुआ भोजन है, जिससे पेट तो अवश्य भर जाता है; पर शरीर की कमी पूरी नहीं होती, ऐसे भोजन से शरीर धीरे-धीरे नष्ट होता जाता है।

जिन बच्चों को शाम की सड़ी रोटियाँ कलेवे में दी जाती हैं, उनका बढाव रुक जाता है और शरीर दुर्बल, रोगी तथा भद्दा हो जाता है। बासा भोजन करने वाले विद्यार्थियों के मस्तिष्क दुर्बल होते हैं।

बासे भोजन से शरीर में सदैव आलस्य छाया रहता है, कब्ज से कभी छुटकारा नहीं मिलता और पेट में से बदबूदार वायु निकला करती है।

कुछ समय पूर्व अधिकांश क्षय रोगी फेफड़ों के क्षय से पीड़ित होते थे; पर आज कल लगभग तमाम क्षय-रोगियों को आँतों का क्षय (Intestinal T. B) अवश्य रहता है। आज कल आँतों के क्षय से ग्रसित रोगियों की संख्या दिनों दिन बढती जा रही है। इनमें भी अधिक संख्या स्त्रियों की होती है। जब हमारे पास छोटी-छोटी विवाहिता लड़कियाँ चिकित्सार्थ आती हैं और कहती हैं कि हमें भोजन नहीं पचता, हमारी आँतें सिमटती-सी मालूम देती हैं और पेट में रह-रह कर दर्द उठता है, तो हमें शीघ्र ही विचार हो आता है कि आँतों का क्षय-रोग प्रारम्भ हो रहा है। यदि आप उनसे पूछें तो मालूम होगा कि वे जन्म से ही ठण्डी रोटियाँ खाना सीखी हैं। उन्हें ताजा रोटी अच्छी ही नहीं लगती। यदि यही दशा चलती रही और कारण को दूर न किया गया तो भयङ्कर आँतों का क्षय पक्की तौर से अपना घर बना लेता है। ऐसे कई रोगियों की चिकित्सा उन्हें केवल फलों, शाकों तथा

मट्ठा या फलों के रस पर रख कर हुई है। आँतों का क्षय-रोग फैलने के मुख्य कारण सफेद चीनी, मैदा, मशीन का आटा या चावल, बासी भोजन आदि का खाना तथा हमारी छब्बीस फीट लम्बी आँत को स्वास्थ्य वर्धक भोजन द्वारा पोषण न देना है।

बासी भोजन आज कल के फैले हुए अजीर्ण, वायु-रोग, रक्त-विकार, कैन्सर प्रभृति रोगों का कारण भी है।

हमारे पूर्वजों का भोजन — यदि हम प्राचीन आर्य-जाति के दैनिक भोजन पर दृष्टि डालें तो पता लगेगा कि वे लोग अत्यन्त साधारण भोजन करते थे। दूध, दही, शाक-पात और पका हुआ ताजा अन्न ही उनके भोजन के प्रधान अङ्ग थे। वैदिक काल में आपको नमक का नाम ही नहीं मिलेगा। वे लोग चीनी को भी नहीं जानते थे। ये दोनों चीज स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक हैं। वे हमेशा ताजा भोजन करते थे और दोनों समय कच्चा भोजन ही पकाते थे। पर दिनों-दिन हमारी दशा खराब होती गई और हम लोग पक्का भोजन अर्थात् - पूरी-परांठे बनाकर रखने लगे। यह भोजन घृत या तेल में पक जाने के कारण वैसे ही काबिज और हानिकारक होता है, फिर यदि इसे रखकर खाया जावे तो साक्षात् काल रूप हो जाता है।

हमारी आदतें और रूढ़ियाँ — हम लोगों में बहुत सी हानिकारक रिवाजों तथा रूढियों ने घर कर लिया है। स्वास्थ्य और दीर्घायु चाहने वालों का कर्त्तव्य है कि उन्हें दूर कर दें। हाँ, इसमें कुछ परिश्रम तथा साहस की आवश्यता जरूर है, खास कर बहिनों को इस ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए।

बहुत से घरों में केवल एक समय ही भोजन बनता है। सबेरे ही शाम के लिए रोटियाँ बनाकर रख दी जाती हैं। यदि किन्हीं घरों में दोनों समय भोजन पकता है, तो सबेरे फुलके और शाम को पूरी परांठे बनते हैं। ये दोनों ही रिवाजें घातक हैं। हम आलस्यवश दुबारा चूल्हा जलाने तथा कच्चे भोजन के बाद चौका-बर्तन करने के जरा से श्रम से बचने के लिए अपने और अपने बच्चों के स्वास्थ्य की बलि चढाते हैं।

अकसर बच्चों के कलेवे तथा दोपहर के लिए रोटियाँ बनाकर रख दी जाती हैं। इस प्रकार हम स्वयँ ही अपने प्यारे बच्चों का स्वास्थ्य खराब करते हैं। बच्चों को सवेरे बासी रोटी और दही का कलेवा भूल कर भी नहीं देना चाहिए। माताओं का कर्त्तव्य है कि बच्चों को बार-बार खिलाने की आदत न डालकर उन्हें दो समय ही ताजा भोजन खाने को दें। जब सबेरे उन्हें ठण्डी रोटी दे दी जाती है, तो वे भोजन के समय अर्थात् दस ग्यारह बजे कुछ नहीं खाते और फिर दोपहर बाद रोटी मांगते हैं। उस समय भी उन्हें ठण्डी रोटी मिलती है। इस प्रकार वे ताजा भोजन नहीं खा पाते। परिणाम यह होता है कि उन्हें अनेक रोग बचपन से ही घेरे रहते हैं। रोटी के समय के अलावा भूख लगने पर बच्चों को फल देने चाहिएँ। सबेरे दूध-दही पिलाया जा सकता है। कलेवे के लिए लड्डू, मिठाइयाँ, सकलपारे, सेव या अन्य पदार्थ देना बासी रोटी से भी अधिक हानिकारक है।

बहुत-सी स्त्रियाँ बासी रोटी खाने की आदि होती हैं। विशेषता यह है कि इसका कारण गरीबी नहीं, स्वाद है। उन्हें ठण्डी रोटी और अचार या दही खाने में एक विशेष स्वाद आता है। पर इस आदत को छोड़ना चाहिए। कई लोग रात्रि के बचे हुए भोजन को दूसरे दिन खाते हैं। यह हानिकारक है। इतनी ही रोटियाँ या भोजन बनाना चाहिए जो एक चौके में ही समाप्त हो जावें। यदि बच भी जावें तो उन्हें उसी समय बाँट बूँट देना ठीक है। दूसरे दिन उसे पेट में फैंकने की अपेक्षा बाहर फैंकना अधिक श्रेयस्कर है। कई बार तो कुत्ते भी बासे भोजन को सूंघ कर ही छोड़ देते हैं। यदि हमारे सगे-सम्बन्धियों के यहाँ से भी बासा भोजन आवे, तो उसे वापिस कर देना या न खाना चाहिए। एक दफा गर्म करके ठण्डी की गई वस्तु चाहे वह शाक हो या रोटी या हलुआ, फिर से गर्म करने से वह विष के समान हो जाती है। पर खेद है कि हम ध्यान नहीं देते।

वर्ष में कुछ बार ऐसे त्यौहार भी आते हैं, जब हम एक रोज का रखा हुआ भोजन करते हैं। प्रायः लोग शीतला अष्टमी को गर्म रोटी नहीं खाते। रूढ़ियाँ हानिकारक हैं। हम मानते हैं कि शीतला माता के दिन ठण्डे भोजन की आवश्यकता है। माता शरीर की एक गर्मी है और उसे ठण्ड से शान्त रखना हमारा कर्त्तव्य है, पर हमें जानना चाहिए कि एक दिन के बासे भोजन से शरीर की गर्मी शान्त नहीं होती, अपितु बढती है। फिर यदि पुओं, बड़ों और मालपुओं का प्रयोग किया जाय तो और भी अनिष्ट होता है। यह उसी प्रकार की मूर्खता है जिस प्रकार की लोग उपवास के दिन रोटी न खाकर खूब मावेदार मिठाइयाँ उड़ाते हैं और व्रत का नाम करते हैं। अतः यदि आपको सचमुच ही माता को शान्त रखना है, तो उस दिन बासा भोजन न खाकर फलाहार या दुग्धाहार कीजिए या व्रत रखिए। बासा भोजन खाने के स्थान पर गर्म भोजन ही खाना उत्तम है।

बहुत बार एक-दो दिन का बचा-खुचा भोजन गायों को खिलाया जाता है या नौकरों को बाँटा जाता है। समझदार व्यक्ति कभी ऐसा नहीं करते। प्रथम तो गाय को रोटी देना ही उचित नहीं है; क्योंकि रोटियाँ गाय का स्वाभाविक भोजन नहीं हैं। उनसे गायों के शरीर में रोग पैदा होता है। यही कारण है कि श्राद्धों में बहुत-सी गायें मर जाती हैं। फिर उन्हें सड़ी रोटियां खिलाने से उनका दूध खराब होता है और उसकी हानि हमें ही उठानी पड़ती है। हमें सड़ा-बासा भोजन अपने किसी भी जानवर को न देना चाहिए। यदि नौकरों को भोजन देना ही है तो बासा करने से क्या लाभ?

विवाह आदि के अवसरों पर लोग कई दिन तक ठण्डी पूरियाँ खाया करते हैं। मेहमानों को इन्हीं के कलेवे कराये जाते हैं। अक्सर स्त्रियों के पल्ले ताजी रोटियां पड़ती ही नहीं। बासी पूरियाँ खाने के अलावा विवाह आदि में अन्य कुपथ्य भी होते हैं। फलस्वरूप विवाह की समाप्ति पर घर का घर बीमार पड़ने लगता है। प्रायः लोग इस बीमारी का कारण भोजन में न ढूंढकर विवाह के अधिक परिश्रम को बतलाते हैं। बहुत से घरों में तो विवाह का बचा हलुवा तक सुखा पीसकर महीनों तक खाया जाता है। शादी की बची मैदा की सूखी मिठाइयाँ तथा लड्डू आदि तो सभी घरों में महीनों खाए जाते हैं। हमें इन सब बातों को शीघ्र ही दूर करना चाहिये, अन्यथा हमारा स्वास्थ्य आगे और भी गिरता जायगा।

रोटी आदि की तरह ठण्डी भाजियाँ, शाक-भात, दाल, कढ़ी आदि को भी न रखना चाहिए। इनमें पानी का अधिक अँश रहने के कारण ये जल्दी सड़ जाते हैं। यदि आप एक दिन का बासा शाक सूंघें तो दूसरे दिन बदबू-सी आती है, और वह सड़ जाता है। कुछ घण्टों के कटे हुए फल या शाक आदि भी खाना अनुचित है। फलों, जैसे नीबू-नारङ्गी, खरबूजा, आम आदि को खाते समय ही काटना चाहिए। फलों तथा शाकों का ताजा खरीदना जरूरी है। हमारा अनुमान है कि वैज्ञानिक रीति से सुरक्षित खाद्य भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

बहुत से लोग असँयमी होते हैं और वे अपनी स्वादेन्द्रिय पर काबू नहीं कर पाते। ऐसे लोग कहते हैं कि हम तो वर्षों से बासा भोजन करते आ रहे हैं, हमें तो कभी कुछ नहीं हुआ। उन्हें जानना चाहिए कि हमारी बुरी आदतें एक दम हानि नहीं दिखातीं। वे धीरे-धीरे हमारे शरीर को रोगी बनाती हैं। आदतवश हमें इस समय तो कोई बुराई नजर नहीं आती पर इसका बुरा फल अवश्य भोगना पड़ता है। यदि हम पहिले से ही सावधान रहें, तो उसकी नौबत ही न आने पावे। किसी ने कहा भी है—"रोग दूर करने की अपेक्षा उसे न होने देना ही श्रेयस्कर है।" फिर खासकर रोग की हालत में तो हमें अवश्य ठीक नियमों पर चलना चाहिए।

कुछ लोग कंजूसी की वजह से बासा भोजन करते हैं। वे समझते हैं, कि भोजन बेकार जायगा, इससे लाओ खा ही लें। ऐसे लोगों को जानना चाहिए कि खराब या अधिक भोजन को पेट में डालने की अपेक्षा बाहर फेंकना अधिक अच्छा और लाभदायक है।

रास्ता जाट का कुँआ
जयपुर

स्त्रियाँ संभलें !

[प्रेमलता कौमुदी, सरसावा]

आजकल आए दिन ऐसे समाचार सुनने में आते हैं जिनसे खून खौलने लगता है। कहीं अपहरण, तो कहीं बलात्कार। खून तथा पतिता नारियों के मुकद्दमों से अदालतें भरी रहती हैं। आखिर इसका कारण क्या है ? हमारा नैतिक-जीवन कितना गिर गया है ! हम कितने पतित हो गए हैं ! ओफ, हमारी चलती फिरती इच्छाओं की लगाम हमारे हाथ से छूट कर न जाने किस पथ की ओर जा रही है।

नारी प्रकृति स्वभावतः पवित्र और सङ्कोची होती है। उसकी निर्मलता, उदारता, सहनशीलता और स्नेह के उदाहरण शास्त्र-पुराणों के अतिरिक्त आज भी जमाना खुले तौर पर दे रहा है। लेकिन पुरुष जाति कितनी अधः-पतित है ? जहाँ कोई सुन्दर चीज देखी, मन लट्टू हुआ, अब उसे रोकना शक्ति के बाहर है। उनका दिल इतना आजाद है, निरङ्कुश है, कि जिस पर दिल चला उसे बिना लिए चैन कहाँ ? दर असल बात यह है कि समाज ने अपने इस पहलू को उच्छृङ्खल छोड़ दिया है। शरारती बच्चों की भाँति इनका स्वभाव बन गया है। दिल हुआ, लेलिया छल से, बल से, वैभव से, प्रभुत्व से ! कोई रोकने वाला नहीं, कोई बन्धन नहीं, उन पर शासन किसका ? वे ही जो संसार के राजा ठहरे ? उनका स्वभाव सदा से ही ऐसा रहा है। बड़े-बड़े महापुरुषों ने भी इसे बढावा ही दिया है। भीष्म का काशी नरेश की कन्याओं का हरना, कृष्ण का रुक्मणी हरण, अर्जुन का सुभद्रा को चुराना आदि क्या उनके चरित्र के काले धब्बे नहीं हैं ? क्या आज भी वे पुरुष जाति के निरङ्कुश अत्याचारों के प्रतीक नहीं हैं ? सदियों से पुरुषों ने अपने प्रभुत्व तथा शारीरिक बल से असीम अनगिनत अन्याय, अनधिकार चेष्टाएँ प्रकृत-सुताओं पर की हैं।

किन्तु नारी ने भी अब अपने को पहचाना है। वह पुरुष से मोर्चा लेने को कटिबद्ध हुई है। 'जैसे को तैसा' नीति को वे अपना रही हैं। उनको अब यह तथ्य मालूम हो गया है कि स्त्रियाँ यदि सदा सुकुमार बनी रहीं तो हमेशा गुलाम, दब्बू और दासी बनी रहेंगी। न वे खुद आगे बढ सकेंगी, न पुरुषों को राह दिखा सकेंगी।

पुरुषों को जितना सामाजिक अधिकार मिला हुआ है उसे कोई भी न्याय नहीं कह सकता। वह स्त्री को मार सकता है, तरह-तरह की तकलीफें दे सकता है, छोड़ सकता है अथवा चाहे जो कर सकता है। पर नारी को खुद अपने ऊपर भी इतना अधिकार नहीं जितना कि पति का

उस पर है। उसे पद-पद पर पुरुषों का भय है। घर में ही नहीं, बाहर भी और उससे भी अधिक। घर में पतिदेव के इशारे पर नाचना उसे अनिवार्य हो जाता है। घर से बाहर निकलना उसे दूभर हो जाता है। यदि सुन्दरी हुई तो बस खैर नहीं। जब वह छात्रा होती है तब विद्यार्थियों के नेत्र-तीर उसे न पढने को बाध्य करते हैं। यदि वह सबको धता बताती हुई आगे बढती है तो समाज की विषैली नजरों से गिर जाती है। घर की छत पर और झरोखे पर भी निर्लज्ज और विलासी पुरुष उसे घूरते हैं। घर से बाहर वह निकली कि उसकी आफत आई। गुण्डों की पार्टियाँ तो ऐसे मौकों की बाट में रहती ही हैं, पर सभ्यता की दुहाई देने वाले सफेदपोश भी बुरी तरह इस रोग में जकड़ जाते हैं। जहाँ भी देखो उनके पौ बारह हैं। राज्य पर राजा का शासन तो सहज होगा पर 'घर के राजा' का शासन 'घर की रानी' पर अत्यन्त कठोर है। पत्नी यदि कार्यवश बिना पूछे सहेली के घर जाती है तो पति का शङ्कालु हृदय उस पर विश्वास नहीं करता। पर स्वयं पति महाराज रात-दिन वेश्या के जूते चाटते रहें, फिर भी पत्नि मेमने की तरह दुबकी रहती है। कुछ कहते ही या पूछते ही पति-देवता का रुआब और फटकार सुनते ही सहम जाती है।

नारी अबला नहीं, न प्रकृति ने ही उसे अबला बनाया है। वह प्रेम की पुतली है, उदारता की देवी है, सहनशीलता की रानी है सही। लेकिन क्या यह गुण अबलत्व के चिन्ह हैं? मैं तो कहती हूँ कि जिसमें ये गुण नहीं वह वीर क्या मनुष्य ही नहीं है।

हम अँग्रेजों को इसलिए बुरा कहते हैं कि उन्होंने हमारे हथियार छीन हमें पंगु बना दिया है। पर क्या पुरुषों ने परदा और आभूषणों के अवगुंठन में अपने स्वार्थ के लिए हम नारियों को अबला नहीं बनाया है जिससे हम उनके अन्यायों को कर्त्तव्य समझ मजबूरी से सहें, और पग-पग पर उनका आश्रय ताकती फिरें।

हाँ, यह निःसन्देह सत्य है कि पुरुषों को स्त्री की रक्षा का भार सौंपा गया है, लेकिन नारी पर भी तो पुरुषों का दायित्व है। स्त्री को गृहकार्य और पुरुषों को बाहर का काम सौंप कर हमारे बुजुर्गों ने अवश्य बुद्धिमानी की है। पर इस व्यवस्था से तो उनमें भेद का गहरा पहाड़ नहीं बनना चाहिए। वह तो विभेद की खाई को पूरा कर समन्वय की शांत वाटिका होनी चाहिए। पर पुरुषों ने तो इससे बहुत नाजायज फायदा उठाया है। वे नारी को कैदिनी बना खुद पहरेदार बन कर बैठे हैं।

लेकिन बहिनो, आखिर यह सब आप कब तक सहेंगी? क्या सदियों से सहते-सहते आप नहीं ऊबीं? जब तक आप खुल्लमखुल्ला उनसे मोर्चा न लेंगी तब तक यह आपत्ति न टलेगी। आप अपनी रक्षा स्वयं करें और यह आप तभी कर सकती हैं जब आप में शारीरिक और मानसिक बल होगा। अन्यथा आप अकर्मण्य और गुलाम बनी रहेंगी? पुरुषों का सहारा जोहेंगी? नहीं, दुनिया ने करवट ली है। आप भी सो नहीं सकतीं। आपको जागना पड़ेगा, शक्तिमती बनना होगा। नहीं तो याद रखिये, यदि आप आत्म-बलिदान और तुच्छ प्रेम के पर्दे में अत्याचार सहती रहीं तो आपका अस्तित्व ही धुंधला हो जाएगा और सिवा कुर्बानी का बकरा बनने के और कोई चारा आपके पास न रहेगा।

नर बनूं कि नारायण

[किशोरीलाल मश्रुवाला]

[स्थान और पात्र वही, जो 'खुदा का पैगाम' में थे ।]

रामजी—पायलागी, महाराज । आज एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ । आज्ञा हो तो पूछूं ।

फकीर—खुशी से पूछो, बेटा ।

रामजी—शास्त्र में लिखा है कि मनुष्य ही ईश्वर बन जाता है । मैं सोचा करता हूँ कि वह कैसे हो सकता है ? मैं तो अनगिनत दोषों की खान हूं, मैं कैसे आशा रखूं कि कभी न कभी ईश्वर बन सकूंगा ?

फकीर—किस शास्त्र में लिखा है कि मनुष्य ईश्वर बन जाता है ?

रामजी—क्या आपने यह कहावत नहीं सुनी कि 'नर जो करनी करै, तो नर का नारायण हो जाय !'

फकीर—हाँ, यह कहावत तो मैंने सुनी है । लेकिन कहावत को कोई शास्त्र नहीं कहता ।

रामजी—तो क्या यह कहावत शास्त्र-सम्मत नहीं है ?

फकीर—इस पर थोड़ा विचार करना होगा । नारायण होना यानी क्या होना ?

रामजी—यानी ईश्वर, भगवान्, खुदा, अल्लाह बन जाना ! भगवान् में और आप में कोई भेद न रह जाना !

फकीर—भगवान, खुदा, अल्लाह यानी कौन ?

रामजी—कौन से मतलब ? वही जिसने यह सारी दुनिया रची है ।

फकीर—अच्छी बात है । यदि कोई नर से नारायण हो जाय, तो क्या वह भी दुनिया बनाने बैठ जायगा ? संसार की सृष्टि पालन और संहार करने की शक्ति उसे प्राप्त हो जायगी ?

रामजी—सो……तो……कु……छ……जँचता नहीं । लेकिन क्या यह सच नहीं कि असल में आत्मा और भगवान एक ही हैं ?

फकीर—अगर दोनों असल में एक ही हैं, तो फिर करनी करके कुछ बनने न बनने की बात नहीं रहती । तुम तो करनी करके नारायण बनने की बात करते हो इसी से मैं पूछता हूँ कि नारायण बनकर तुम क्या बनना

चाहते हो ?

रामजी—तो हमें किस ध्येय को सामने रखकर पुरुषार्थ करना चाहिए ?

फकीर—तुम यह तय करने में क्यों अपना सर खपाओ कि आत्मा के साथ भगवान् का निश्चित सम्बन्ध किस प्रकार का है ? इतना तो निश्चित रूप से अनुभव करते हो न कि इस समय तुम मनुष्य हो ?

रामजी—जी हाँ !

फकीर—अच्छा तो अब यह बताओ कि तुम्हारे विचार में उत्तम मनुष्य किसे कहा जाय ?

रामजी—बुद्ध, महावीर, राम कृष्ण, ईसा—जैसे महापुरुषों को मैं उत्तम मनुष्यों के उदाहरण समझता हूँ।

फकीर—और सिकन्दर, नेपोलियन, हिटलर-जैसों को क्या समझते हो ?

रामजी—ये सब बहुत ही बहादुर और पराक्रमी तो कहे जा सकते हैं, लेकिन मैं इन्हें आदर्श मनुष्य नहीं मानता।

फकीर—क्यों ? आदर्श मनुष्य के लिए तुम किन गुणों की आवश्यकता समझते हो ?

रामजी—पवित्र जीवन, संयम, परदुःख-भञ्जन, निर्भयता, ज्ञान और चरित्र को ऊँचा उठाने वाले दूसरे गुण।

फकीर—तो क्या साहस, पराक्रम, वीरता निडरता वगैरा तुम्हारे विचार में जरूरी नहीं ?

रामजी—जी, जरूरी तो ये भी हैं, लेकिन इनके साथ क्रूरता, स्वार्थ, लोभ, द्वेष, वगैरा न होने चाहिएं।

फकीर—यानी तुम क्रूरता, लोभ, स्वार्थ, द्वेष वगैरा को उत्तम मनुष्य के लिए दोषरूप और पवित्रता, संयम, पर दुःखभञ्जन, निर्भयता ज्ञान, उच्च-चरित्र आदि को भूषण रूप समझते हो ? और शायद इसी लिए सिकन्दर आदि पराक्रमी होते हुए भी, तुम्हें मनुष्य के श्रेष्ठ आदर्श से भटके हुए मालूम होते हैं ?

रामजी—जी हाँ।

फकीर—तो अब यह बताओ कि नर से नारायण बनने और नर से नरोत्तम बनने, यानी मनुष्य के मनुष्यत्व को बढ़ाने के इन दो ध्येयों में से किसे तुम आसानी के साथ समझ सकते हो, और किसे धीमे-धीमे या जल्दी ही पालने की आशा रख सकते हो ?

रामजी—जी, मनुष्यत्व बढ़ाने को।

फकीर—बहुत ठीक। तो फिर नारायण बनने की चिंता छोड़ दो, और नारायण की कृपा से उत्तम नर बनने की इच्छा और पुरुषार्थ करो।

अनु० काशीनाथ त्रिवेदी

भारत-सन्तान

[सुबोधचन्द्र शर्मा 'नूतन']

मैं हूँ भारत-प्रिय सन्तान।

देश–जाति–कुल–पालक हूँ मैं;
शत्रु सबल–दल–घालक हूं मैं,
वीर–बाँकुरा बालक हूं मैं;
सदा निभाता अपनी आन।
मैं हूँ भारत-प्रिय-सन्तान ॥१॥

प्रण से अपने कभी न टलता;
विपदा लख मैं नहीं बिचलता,
आघातों से जरा न हिलता;
बन जाता हूं बज्र-समान।
मैं हूँ भारत-प्रिय-सन्तान ॥२॥

दीन-दुखी का दुख नित हरता;
सत्य अहिंसा मन में धरता;
देश-जाति-हित हँस-हँस करता—
प्राण-पुष्प का 'नूतन' दान।
मैं भारत–प्रिय–सन्तान ॥३॥

कर्मवीर बन जग में आया,
कर्म को अपना लक्ष्य बनाया;
कर्म सदा वह मुझको भाया—
जिससे हो भारत-यश-गान।
मैं हूँ भारत प्रिय सन्तान ॥४॥

नर-केसरी शेरा

आजादी कितनी प्यारी चीज है ? कितना आकर्षण है इस शब्द में ? जिस पर भी आजादी का जादू सवार हुआ, उसे फिर इसे प्राप्त किये बिना चैन कहाँ ? वह इसके लिए बड़ी से बड़ी कुरबानी कर सकता है, फाँसी के तख्ते पर झूल जाता है, हँसते हुए सीने पर गोली झेलता है और अपनी मातृभूमि की आजादी छीनने वालों की संख्या या शक्ति की परवाह न कर उनका निर्भिकता से मुकाबला करता है।

ऐसा ही स्वतन्त्रता का पुजारी था वीर शेरा। वह स्वातन्त्र्य-प्रेमी भील जाति में पैदा हुआ। जन्म से ही देश पर मरने-कटने की शिक्षा पाई थी। अतः देश के लिये, आजादी के लिये मर मिटने की भावना उसकी रग-रग में भरी थी। अरावली परवत की गोद में था उसका गाँव, जिसमें रङ्ग के काले, किंतु हृदय के उज्ज्वल भील लोग रहते थे। देश-प्रेम उन में कूट-कूट कर भरा था। देश के नाम पर सर्वस्व बलिदान करने को वे सदैव तैयार रहते थे। फिर किस की हिम्मत थी कि जो इनकी प्यारी मेवाड़-भूमि की ओर ताक भी सके ?

किन्तु साम्राज्य-लोलुप बादशाह मेवाड़ की स्वतन्त्रता को सहन न कर सका। उसने एक भारी फौज इस प्रदेश को जीतने को भेजी।

मेवाड़ के राणा ने देश की रक्षार्थ स्वाधीनता के पुजारी भीलों को आह्वान किया। भीलों के हृदयों में बिजली दौड़ गई, उनकी बाहें फड़कने लगी और सब बात की बात में मातृभूमि की रक्षा के लिये, राणा के आदेश पर अपने प्राणों की आहुति देने के लिये तैयार हो गये।

अपने भील सरदार की आज्ञानुसार सब भीलों ने अरावली परवत पर शत्रु से लड़ने के लिये मोर्चे लगा लिये। सारा गाँव खाली हो गया। वहाँ पर केवल रह गई भील स्त्रियाँ, बच्चे तथा बूढ़ा वीर भील शेरा।

शत्रु सैनिकों ने अवसर पाकर पहाड़ी की ओट से भीलों के गाँव पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। एक स्त्री के कलेजे में तीर लगा, वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी। सब भील स्त्रियाँ घबरा गईं। शेरा को इसकी सूचना मिली, तो वह शेर की भाँति गुर्राता हुआ आ पहुंचा। उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने

लगीं। एक वृक्ष की ओट लेकर वह शत्रु-सैनिकों पर बाण-वर्षा करने लगा। किन्तु क्षण-भर में सैंकड़ों शत्रु-सैनिक अरावली की गुफाओं से निकल पड़े और जय घोष करते हुये भीलों के उस गाँव पर टूट पड़े।

किन्तु वृद्ध शेरा घबराया नहीं। वह वृक्ष की ओट से ही ऐसी जोर की बाण-वर्षा कर रहा था कि जिसके तीक्ष्ण प्रहारों से एक भी सैनिक आगे न बढ़ सका। गाँव के स्त्री-बच्चे शेरा के पास तीरों का ढेर लगा रहे थे और वह उन्हें उठाकर शत्रुओं की छाती बेध रहा था। उसके सर्प की गति से चलने वाले तीर, अपूर्व साहस तथा धैर्य को देखकर शत्रु सैनिक चकित थे। अन्त में शत्रु के तीरों से उनका शरीर व भुजाएँ घायल हो गईं। सैंकड़ों सैनिकों का वह अकेला कब तक मुकाबला करता? आखिर उसने स्त्रियों व बच्चों को जङ्गल में भाग जाने को कहा तथा गाँव के झोंपड़ों में आग लगा दी। गाँव धांय-धांय कर जलने लगा, किन्तु शेरा अग्नि की लपटों में भी छिप कर शत्रुओं पर तीर चला रहा था।

इधर शेरा शत्रु सैनिकों को रोके हुए था, उधर एक भील युवती दौड़ती हुई अरावली परवत की चोटी के एक वृक्ष पर चढ़ गई तथा लाठी के सिरे पर एक कपड़ा बान्ध, उसे हिलाने लगी। भील सरदार ने इस इशारे को समझ कर अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि दौड़ो शत्रुओं ने गाँव पर आक्रमण कर दिया है। भील-सैनिक अपने गाँव की ओर दौड़े। किन्तु देखते क्या हैं कि गाँव जल रहा है और शत्रु सामने की ओर आक्रमण कर रहे हैं। समस्त भील अपने-अपने तीर-कमान सम्भाल बाघ की भाँति शत्रु पर टूट पड़े। शत्रु सैनिकों के छक्के छूट गये। देखते-देखते सैंकड़ों धराशाही हो गये, जो बचे वे भाग खड़े हुए। इस प्रकार शत्रु को परास्त कर सब भील सैनिक गाँव की ओर लौटे। किन्तु गाँव जल कर राख का ढेर हो गया था। उसी में एक ओर वीर शेरा निर्जीव पड़ा था जिसने मातृ-भूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाई तथा दम रहते शत्रुओं को गाँव में पैर न रखने दिया।

धन्य है वीर शेरा और वह भील जाति जिसका एक-एक लाल आजादी के लिए बलिदान होना जानता है।

किसानों की कहानी उनकी जबानी

: १ :

मैं अबोहर के पास के एक गांव का रहने वाला हूँ। घर में ४ आदमी हैं—मैं, मेरी स्त्री तथा एक लड़का व एक लड़की। मेरे पास घर की कोई जमीन नहीं, दूसरे की जमीन पर बहाई करके दिन तोड़ता हूँ। पिछले वर्ष मैंने ७ बीघे सावनी तथा ५ बीघे हाड़ी की थी। हाड़ी में २ बीघे छोले बोए, जिनमें एक दाना भी न हुआ। ३ बीघे गेहूँ ये जो ३० मन हुए। यह है ६ महीने की पैदावार और खर्च भी सुनिए। १० मन गेहूं तिहाई की बटाई में दे दिये। १४ रु० २ आने लगान जमीन व पानी, १० रु० मजदूरी का खर्च लगा और ३ मन बीज लगा। इस प्रकार मुझे ६ महीने की कमाई में १७ मन अनाज मिला जिस में से २४ रु० २ आ० तो पहले ही खर्च हो गए। बाकी बचे इस अनाज में से मुझे ६ महीने तक अपना, बच्चों का व पशुओं का पेट पालना है और घर के दूसरे खर्च भी पूरे करने हैं।

अब सावणी की पैदावार भी देखिए। ७ बीघे में ४० रु० की कपास, १० मन बाजरा और ६ मन गुवार हुआ। इस पर ९।।) लगान जमीन व पानी और इतना ही मजदूरी का खर्च हुआ। इसके अलावा बटाई व बीज का जो देना पड़ा वह अलग। यह सब दे दिलाकर जो कुछ बाकी बचा उसके सहारे ज्यों-त्यों कर एक-एक दिन पूरा करते हैं। हमारे लिए न उत्सव-त्योहार है, न हारी-बीमारी की संभाल। यह सब पैसे के खेल हैं। बीमारी से हमें मौत अच्छी जो एक बार ही सब दुखों से पीछा छुड़ा देती है। इन सबसे भयङ्कर बीमारी है— मेरे ऊपर १२०) का कर्ज है जो घटता नहीं, हर साल कुछ न कुछ बढ़ता ही है। बच्चों की पढ़ाई कैसी? तन्दरुस्ती के लिए अच्छा खाना-पीना व कपड़े, मकान आदि साफ रखना कहां! जिसे पेट के लाले पड़े हों उसके लिए ये बातें मूर्खता की ही होंगी।

: २ :

अबोहर के पास मेरा गाँव है। स्त्री, पुरुष के अलावा घर में ३ छोटे-छोटे बच्चे हैं। जमीन के नाम पर घर का एक खूड नहीं। २० बीघा जमीन ५) बीघे के हिसाब से ठेके पर ली हुई है। नकद ठेके के पैसे पहले न देने से २०) ब्याज लगता है, और ठेकेदार ५ दिन के लिए ५ हल मुफ्त में अपने यहाँ काम कराने को लेता है। अतः इस २० बीघे जमीन का साल भर का खर्च इस प्रकार है:— १०० रु० ठेका, २० रु० ब्याज, ४५ रु० पानी का लगान, २५ रु० का बीज, २५ रु० ५ हलों का ५ दिन का खर्च और कम से कम १० रु० मजदूरी के देने पड़ते हैं। इस प्रकार कुल २२५ रु० तो नकद खर्च हुए। लेकिन इन २० बीघे की औसत पैदावार ३०० रु० है। और अगर सम्वत् अच्छा न हुआ या फसल को ओले-पाले आदि दैवी विपत्ति ने हानि पहुंचाई, तो पैदावार मुशकिल से २५० या २७५ रु० ही होती है। पिछले वर्षों में ऐसी ही कम पैदावार होती रही है जिसके कारण अपना व बच्चों का पेट पालना अत्यन्त कठिन हो रहा है। असल में ऐसी तङ्गी की हालत में हमारा जीना भी मरे के समान है। लोग कहते हैं कि ईश्वर के यहां इन्साफ है। लेकिन हम गरीबों के लिए या तो ईश्वर है ही नहीं और यदि है भी तो वह गरीबों की तरफ से तो कान में तेल डाले बैठा है कि हम लाखों की भयङ्कर चीत्कार भी उसे सुनाई ही नहीं देती। फिर हमारी दुःखभरी रामकहानी दुनियां में दूसरा कौन सुनने वाला है?

एक मच्छली सारा पानी गन्दा कर देती है।

गुरु नानक साहब एक दफा सैर करते हुए एक ऐसे गाँव में पहुंचे जहाँ के लोग बड़े ही मूर्ख थे। वह गुरु जी के साथ भी बड़ी बुरी तरह पेश आये। बहुत समझाने पर भी उन पर कोई असर न हुआ।

गुरु नानक देव जी यह हालत देखकर वहाँ से चल दिये। रास्ते में मरदाना ने पूछा कि इस गाँव के बारे में आपका क्या विचार है? गुरु जी ने जवाब दिया—आबाद रहे। आगे एक ऐसे गाँव में ठहरने का मौका मिला जहाँ के लोग बड़े सेवा भावी और अच्छे स्वभाव के थे। उन्होंने गुरु जी का हृदय से स्वागत किया, और उनके उपदेश को बड़े ही ध्यान से सुना। जब वे वहाँ से चल दिए तो रास्ते में मरदाना ने पूछा कि इस गाँव के बारे में आपका क्या विचार है? गुरु जी ने उत्तर दिया—बरबाद हो जाये। मरदाना ने बड़ी हैरानी से पूछा—आप यह क्या कह रहे हैं? गुरु जी बोले कि बुरा आदमी जिस जगह आयेगा बुराई ही फैलायेगा और अच्छे आदमी को देखकर सब लोग अच्छे बन जायेंगे। जिस तरह एक मच्छली सारा जल गन्दा कर देती है इसी तरह दुष्ट गाँव के उजड़ने पर वहाँ का आदमी जहाँ जायेगा वहीं पर खराबी पैदा करेगा। इसी लिए मैंने कहा था कि वह गाँव आबाद रहे ताकि दुष्ट लोग अपने बुरे ख्यालात दूसरी जगह न फैला सकें। लेकिन अच्छी नगरी के उजड़ने पर वहाँ का आदमी जहाँ भी जायेगा अच्छे विचार ले जायगा और भले बुरे की पहचान बतलायेगा। यह सुनकर मरदाने की खुशी का कोई ठिकाना न रहा।

मीठे बोल

रचियता—श्री विकल

बोल तू सब से मीठे बोल।

जरा-जरा सी बातों में तू रस में विष मत घोल।
अपना सा दिल समझ सभी का मत तू बोल कुबोल,
काक और कोयल की बोली अपने जी में तोल।
राग द्वेष और भेद-भाव की लगी गाँठ को खोल,
यही प्रेम की अमर रीति है विकल रत्न अनमोल।

सुमन-संचय

[संकलनकर्त्ता—श्री गणेशदत्तजी जामपुर]

—प्राणीमात्र को न सताना ही उत्तम दान है, कामना का त्याग ही उत्तम तप है। वासनाओं के जीतने में ही बहादुरी है और सत्य ही सच्चा दर्शन है।

—मन का मैला मनुष्य सदा जलता रहता है, वह कभी भी शांति और शीतलता प्राप्त नहीं कर सकता। वह कभी काम से जलता है तो कभी लोभ से, कभी अभिमान से तो कभी क्रोध व ईर्ष्या से जलता रहता है।

—सुन्दर भी वही है; जिसका हृदय सुन्दर है। ऊपर से देखने में जिसका रंग-रूप सुन्दर है, जिसके मुख की आकृति तथा शारीरिक बनावट आकर्षक है, किन्तु जिसका हृदय दुर्गुण व द्वेष से पूर्ण है, दूषित हृदय से युक्त ऐसा व्यक्ति सदैव कुरूप ही दिखाई देता है, क्योंकि उसके मलीन हृदय के दूषित भाव ज्यों ही बाहर निकलते हैं त्यों ही लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं।

—मन को पवित्र बनाओ, एक-एक दुर्गुण को चुन-चुन कर हृदय से निकाल दो तथा शुभ गुणों को ढूंढ ढूंढ कर उसमें बसाओ। तब आपका हृदय देवपुरी बन जावेगा। देवता वही है जिसके हृदय में दैवी गुणों का निवास हो।

—लोग दुनियादारों के बाहरी ऐश्वर्य को देख कर समझते हैं कि यह बड़े सुखी हैं। हम भी ऐसे ही धनी बन जावें तभी सुखी होंगे। किन्तु वह भूलते हैं। जिन्होंने धनियों के हृदय को टटोला है उन्हें पता है कि धनी गरीबों से कम दुखी नहीं हैं। हाँ, दुख के कारण और रूप निसन्देह भिन्न-भिन्न हैं।

—गुण दोष सब में रहते हैं, भूल सभी से होती है। यदि तुम किसी का काम देखते ही उसमें दोष ढूंढने लगो तो तुम्हारी वृत्ति आगे चल कर बहुत खराब हो जायेगी। अच्छे से अच्छे कार्य में दोष दिखाई देंगे, स्वयं जलोगे दूसरों को जलाओगे। इसके विपरीत यदि तुम गुण देखोगे तो तुम्हारा चित्त शांत रहेगा, प्रसन्नता बढेगी।

—हमें जो दूसरों में दोष दिखाई देते हैं उनका प्रधान कारण प्रायः हमारे चित्त की दूषित वृत्ति होती है। अपने चित्त को निर्दोष बनालो, फिर जगत में दोष बहुत कम दिखाई पड़ेंगे।

—मन की निरोगता ही सच्चा स्वास्थ्य है। जिसका शरीर बलवान तथा पुष्ट है परन्तु जिसके मनमें बुरी वासना, काम, क्रोध, लोभ, द्वेष, अभिमान, कपट, स्वार्थ आदि दुर्गुण रहते हैं, वह कभी भी निरोग नहीं कहला सकता है।

कुत्ते की सूझ

फिलाडलफिया निवासी श्री मेकफियोन के पास एक कुत्ता है। उसका नाम है 'गुफी' और उसकी आयु है ६ वर्ष की। ३१ अगस्त १९३८ को प्रातः पाँच बजे गुफी बड़ी बुरी तरह से भौंकने लगा जिसके फलस्वरूप मेकफियोन और उसकी पत्नी जाग गये। किन्तु वे जल्दी से पलंग पर से नीचे नहीं उतरे। इसलिए गुफी ने उन की ओढने की चादर को खींचा और उछल कर पलंग पर चढ गया और मेकफियोन की पत्नी का पाँव खींच कर उसे नीचे उतरने के लिए प्रेरित किया। नीचे उतरते ही उसे पता लगा कि घर में आग लग गई है। यह देख कर मेकफियोन, उसकी पत्नी तथा उनके बच्चे बाहर निकल आए और इस प्रकार उन सबकी जान बच गई।

('जीव दया')

रिपोर्ट सहायता कार्य

काँग्रेस कहत कमेटी, हिसार नवम्बर १९४१ से ३१ जुलाई १९४२ तक

सहायता कार्य का हिसाब निम्नलिखित है। इसके अतिरिक्त चार हजार रुपया सेठ घनश्यामदास जी बिरला ने कमेटी के कार्यकर्ताओं के सहयोग से सहायता पर खर्च किए हैं। वर्तमान स्थित के कारण सहायता भेजने वाले सज्जनों के नाम नहीं दिये जा सके, इसके लिए क्षमा करें। जब भी समय मिलेगा उनकी सूची भी प्रकाशित करदी जावेगी। कमेटी सब दानी सज्जनों तथा सहायकों की कृतज्ञ है।

१०६८१–)|||	दान आया
२५०)	मारफत ला० हरदेवसहाय
१००)	बा० ठाकुरदासजी भार्गव
११०)	नहर कमेटी
२६|||≡)	ला० देवीचन्दजी आदमपुर मण्डी
३३|||=)||	ला० खूबरामजी सर्राफ
११२०१|||≡)|	

३५२५।–)।	अनाज तकसीम खाते
१८४)।	कपड़ा तकसीम खाते
१७७।)	जच्चा सहायता
४०७|||–)|||	सफर खर्च कार्यकर्ता
७७६।)।	वेतन खर्च
१०९=)।	डाक तार खर्च
५६।≡)|||	भोजन खर्च
८२|||=)|||	सांड बैल सहायता
१२।–)|||	सामान खाते
१३।=)	रोशनी खर्च खाते
३६०≡)||	सभा केन्द्र खाते
७०४|||)	फर्श खाते बाकी २७८
४५||=)	स्टेशनरी व छपाई खर्च
२६६।=)	दीगर सहायता
१२४|||–)।	किराया बिल्टी व ऊँट वास्ते अनाज
१३४४|||–)	पानी सहायता प्याऊ व कुए
१२||=)||	कमीशन हुँडी व चिक
२९७–)	अनाज खरीद खाते
२१५।)||	चर्खे तकसीम खाते
२०५४।≡)	हल बीज सहायता
२७२।)।	पेशगी जिनका हिसाब अब तक नहीं आया
११०४३।–)	
१५८||=)।	बाकी रहे
११२०१|||≡)।	

हिसाब ठीक है

गनेशीलाल भार्गव
हिसाब निरीक्षक

हरदेवसहाय
मन्त्री कांग्रेस कहत कमेटी, हिसार

दीपक के प्रकाश में—

भारत की व्यवसायी विभूतियाँ — लेखक विद्याभूषण पं० मोहन शर्मा, बिशारद, प्रकाशक — फर्म बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसैलर, राजा बाजार बनारस सिटी मू० १॥), पृष्ठ १५६ । इस पुस्तक में भारत के उन १५ उद्योग-वीर कर्मठ व्यवसायियों के चरित्र हैं जो अत्यन्त हीन अवस्था से अपने अध्यवसाय, सच्चरित्रता तथा सतत प्रयत्न से आश्चर्यजनक उन्नति करके लखपति तथा करोड़पति बन गए और अपने व्यवसाय को उन्नति की चरम सीमा पर पहुंचा दिया । आज देश में ऐसी पुस्तकों के प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि हमारे शिक्षित युवक ऐसे साहसिक तथा व्यवसायिक कामों से कतराते हैं जबकि देश की समृद्धि तथा उन्नति के ये ही मुख्य साधन हैं। लेखक ने इन व्यावसायिक विभूतियों के चरित्रों में उनके आरम्भ से अन्त तक के जीवन की घटनाओं, उनकी उन्नति के रहस्यों व व्यावसायिक जानकारी आदि ऐसी बातें दी हैं जिनको पढकर युवक बहुत कुछ सीखकर अपने जीवन को सफल बना सकते हैं ।

बंगला साहित्य की कथा — बङ्गला साहित्य के प्रख्यात विद्वान् डा० सुकुमार सेन द्वारा लिखित 'बङ्गला साहित्येर कथा' का बरेली कालेज के विद्वान् प्रोफेसर श्री भोलानाथ शर्मा ने यह अनुवाद किया है जिसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने प्रकाशित किया है । आज जबकि हिन्दी राष्ट्र-भाषा के गौरवान्वित पद पर स्थित है तो उसका साहित्य देश की सभी प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य की प्रगति, इतिहास से पूर्ण होना चाहिए । प्रस्तुत पुस्तक इसी दृष्टि से अनूदित हुई है कि बङ्गला भाषा की साहित्यिक समृद्धि का हिन्दी संसार को ज्ञान हो । इसमें बँगला भाषा के आदि काल से आज तक के समस्त साहित्य का जो भी लिखा अथवा छपा है सँक्षिप्त परिचय, लेखकों के नाम व विषय के संक्षिप्त परिचय से युक्त है । इसके पढने से पता लगता है कि बङ्गला साहित्य भण्डार कितना विशाल है । मू० १।)

आहार ही औषध है — लेखक — डा० एल० एन० रतरा, डेरा गाजीखाँ, अनुवादक प्रो० भवानीप्रसाद, मूल अँग्रेजी में लिखित इस पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है जिसमें हर प्रकार के कठिन, पुराने तथा असाध्य रोगों का केवल आहार और भोजन के पदार्थों में यथोचित हेर फेर करके प्राकृतिक पद्धति से इलाज बतलाया है । मनुष्य शरीर विशेषतः आमाशय की बनावट, जल लवणादि का उपयोग, विविध प्रकार के दूध का गुण-दोष, सभी प्रकार के फल फूल शाक-सब्जी का भोजन में उपयोग तथा विविध रोगों में प्रयोग; विटामिन व भोजन-तत्वों का विश्लेषण तथा विविध रोगों का आहार-परिवर्त्तन द्वारा इलाज आदि महत्वपूर्ण दर्जनों विषयों पर अनुभवी लेखक ने खोजपूर्ण ढङ्ग से प्रकाश डाला है । देश की गरीबी भारतवासियों में फैली अगणित बीमारियों का इतना बड़ा कारण नहीं जितना उनका स्वास्थ्यप्रद आहार की अनभिज्ञता व शरीर को निरोग रखने के साधन की अज्ञानता है । अतः डाक्टर वैद्यों व उनकी औषधियों के चक्कर में पड़े बिना आहार में हेर-फेर करके ही लोग रोगों का इलाज जान सकें, तो यह कितना भारी लाभ है । इस विषय का ज्ञान कराने वाली यह पुस्तक अत्यन्त आवश्यक तथा उपयोगी है। मू० १।)

बीरबल की कहानियाँ — लेखक — चौधरी शिवनाथसिंह शाण्डिल्य, प्रकाशक — सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली । ४२ पृष्ट, मू० ≈) । अकबर-बीरबल की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं । ये जहाँ अत्यन्त रोचक व हास्यप्रद हैं वहाँ ज्ञानप्रद तथा हाजिर जवाबी का अद्भुत नमूना हैं । बीरबल की ऐसी ही अनूठी कहानियों का यह संग्रह है जो इतना सरल, दिलचस्प व विनोद पूर्ण है कि पाठक एक बार हाथ में लेकर समाप्त किए बिना न छोड़ेगा । मोटे टाईप में छपी है जिससे बच्चे व साधारण पढ़े भी इसे पढ सकते हैं ।

इलाके की हलचल

—श्री सेठ तुलसीराम जी गाँव सीसवाल (हिसार), हाल निवासी गाँव रामपुरा बहावलनगर के प्रयत्न से उनके भाई श्री सेठ गुलजारीलालजी की सुपुत्री जड़ावदेवी का पुनर्विवाह सेठ कुँजलालजी गाँव बुड़ाक (हिसार), हाल निवासी बहावलनगर के सुपुत्र ला० फूलचन्दजी के साथ पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। वर-वधु अग्रवाल जाति के थे। अतः इस इलाके में अग्रवाल जाति में यह पहला पुनर्विवाह है जिसका श्रेय सेठ तुलसीराम जी व सेठ गुलजारीलाल जी को है कि जिन्होंने यह साहसपूर्ण कार्य करने के लिए आगे कदम बढाया।

—श्री चौ० हरिश्चन्द्रजी ढाका, गाँव—नत्थूढाका ने अपनी स्वर्गीय माता जी की पुण्य-स्मृति में जाट विद्यालय सङ्गरिया को एक हजार रुपया दान दिया है। आपने अपनी वृद्धा माता जी के पीछे मृतक-भोज (औसर) में व्यर्थ रुपया न खर्च करके इस कुप्रथा को बिल्कुल बन्द कर दिया तथा उनके नाम पर पुण्य दान करने का सबसे उत्तम स्थान विद्यालय समझ कर, वहीं दान दिया है।

—अबोहर इलाके के गाँवों में श्रावण के अन्त तथा भादों के आरम्भ में बड़ी अच्छी वर्षा हो गई है, जिससे फसलें बड़ी अच्छी हैं। कई गाँवों में तो वर्षा इतनी ज्यादा है कि और वर्षा होने से फसलों को हानि होने की सम्भावना है।

—२० अगस्त से बहावलनगर-अम्बाला के बीच चलने वाली गाड़ी के बन्द होने से इस इलाके के लोगों को बड़ा कष्ट हो गया है, क्योंकि यही एक गाड़ी थी जो दिन में ऐसे समय आती-जाती थी कि जिससे स्टेशनों के दो-दो चार-चार मील फासले के ग्रामीण अपने नजदीक के स्टेशनों से बैठ कर अबोहर मण्डी में आते और दिन भर काम-धन्धा कर शाम को वापिस घर पहुँच जाते थे। इसके अलावा अब अबोहर, मलोट, गिद्दड़बाहा आदि की ओर से जाने वालों को भटिण्डा जङ्क्शन पर दिन के २-२॥ बजे बीकानेर, हिसार, देहली, अम्बाला, लाहौर को चलने वाली गाड़ियों का मेल भी नहीं मिलता। इस इलाके वालों के लिए तो यदि इस गाड़ी की बजाय वह रात की गाड़ी बन्द हो जाती जो रात को पौने ग्यारह के लगभग भटिण्डा की ओर से अबोहर आती है तथा ३॥ बजे अबोहर से भटिंडा की ओर जाती है, तो इतना कष्ट न होता।

—१२, १३ सितम्बर को होने वाले जाट विद्यालय, सङ्गरिया के जयन्ती-उत्सव के समय अबोहर प्रान्तीय ग्राम-सुधार पञ्चायत की जो बैठक होगी उसमें नये वर्ष के लिए पदाधिकारियों का चुनाव होगा। औसर, विवाहादि सम्बन्धी बनाए पञ्चायत के नियमों में सुधार करके खर्चों को और कम करने का प्रयत्न किया जावेगा तथा पञ्चायत का सङ्गठन मजबूत बनाने व गाँव गाँव में उसके मेम्बर बनाने आदि बातों पर भी विचार होगा। अतः इस इलाके के सभी सुधार प्रेमी सज्जनों को उस समय अवश्य ही पहुँच कर पञ्चायत की बैठक में शामिल होना चाहिए।

—हमारे पास कई स्थानों से ऐसे हिन्दी अध्यापकों व अध्यापिकाओं की माँग आ रही है जो ५ वीं श्रेणी तक हिन्दी तथा अन्य विषयों की योग्यतापूर्वक शिक्षा दे सकें। अतः ऐसे अध्यापक-अध्यापिकाओं को कम से कम वेतन तथा योग्यता के प्रमाणपत्रों सहित नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार करना चाहिए। सं०—'दीपक' अबोहर (पञ्जाब)

स्वर्गीय श्री महादेव देसाई

१५ अगस्त का वह दिन देश के लिए कितना घातक सिद्ध हुआ कि जब उसका एक सच्चा सेवक सँसार से विदा हो गया। जिसने महात्मा गाँधी की महान् कार्य-शक्ति, अलौकिक गुणों तथा देश को झकझोर कर उठाने और सरपट दौड़ाने वाले कार्यों को आँखें खोलकर देखा है, वे जानते हैं कि महात्मा जी को ऐसा बनाने में महादेव भाई के व्यक्तित्व का कितना हाथ था? वे महात्मा जी के सैक्रेटरी ही नहीं थे, उनके जीवन-साथी थे, सच्चे अनुयायी थे, उनके पूरक थे, और एक शब्द में कहें तो वे महात्मा जी के 'प्राण' थे। आज लोग महात्मा जी को इस बड़ी आयु में भी रोजाना बेहद काम करते देखकर हैरान रह जाते हैं कि यह डेढ़ पसली का आदमी इतना काम करके जिन्दा किस प्रकार रहता है। उन्हें क्या पता कि महात्मा जी के सफलता पूर्वक इतना अधिक कार्य करने का कारण महादेव भाई का सहयोग ही था। वे काम करने में महारथी थे। उनके सामने सदैव काम का पहाड़ सा खड़ा रहता जिसे खुशी-खुशी कर डालते। न कभी थकते, न ऊबते थे। महात्मा जी जैसा महान् विचारक तथा नेता और महादेव देसाई जैसा उनका सहकारी - यह कितना अद्भुत सँयोग था कि जिसके कारण देश की वे भारी सेवा कर सके।

श्री महादेव देसाई उच्च-कोटि के साहित्यिक, राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित, अँग्रेजी के जोरदार लेखक, कुशल पत्रकार तथा महात्मा जी के सफल अनुयायी थे। महात्मा जी के सत्य, अहिंसा सिद्धांत का आपने गहरा विवेचन करके, उसके अनुसार अपना जीवन बनाया था। देश के धनिकों, गरीबों, मजूर-किसानों, विद्यार्थियों-युवकों—सबके साथ आपका गहरा सम्पर्क था। पता नहीं कितने युवकों तथा कार्यकर्त्ताओं को आपके द्वारा देश सेवा में लगने की प्रेरणा मिली, अपना जीवन सफल बनाने का प्रोत्साहन मिला! कांग्रेस-क्षेत्र में महादेव भाई का विशेष स्थान था, राष्ट्रीय जागृत में उनकी सेवाएँ अमूल्य थीं। वे सैकड़ों ही नहीं, हजारों के गहरे मित्र थे, सच्चे साथी थे और थे पथप्रदर्शक। ऐसे प्रतिभा सम्पन्न तथा अनन्य साथी को खोकर आज महात्मा जी को कितनी वेदना हुई होगी, इसका अन्दाजा लगाना कठिन है। देश के इस स्वातँत्र्य आन्दोलन में उनका सहयोग कितना महत्वपूर्ण था, इसका अनुमान देश के लिए किए गए उनके अब तक के महान् कार्यों से लगाया जा सकता है। उनके निधन से देश को जो क्षति हुई है—क्या वह पूरी हो सकेगी? महात्मा जी की तो उनके अभाव में मानों कार्यशक्ति ही छिन गई। अतः आज देश सेवकों के ऊपर और अधिक जिम्मेदारी तथा कार्य का भार आ गया है। आओ! हम सब अधिक सचेष्ट होकर उसे पूरा करें जिससे हमारे इस आदरणीय नेता की आत्मा को शांति मिले।

साहित्य सदन, अबोहर का प्रकाशन

'जीवन साहित्य' लिखता है:—

ग्रामसुधार नाटक—पुस्तक का उद्देश्य इसके नाम से ही स्पष्ट है। इसमें ग्राम और ग्रामीणों की आये दिन की प्रमुख समस्यायें सरल भाषा और सजीव चरित्रों द्वारा पेश की गई हैं। गीत भी देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत हैं। नाटक गांवों में खेलने योग्य है। इससे गाँव की समस्यायें स्वयं गाँव वाले समझ सकेंगे और उन्हें सद्प्रेरणा मिलेगी। मू० ||=)

अन्य साहित्य

सरल स्वास्थ्य साधन— नियमित तथा संयत आहार-विहार द्वारा समस्त रोगों का अचूक इलाज बताने वाली अपने विषय के विशेषज्ञ विद्वान् द्वारा लिखित ३० चित्रों से युक्त २५९ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १||) है।

शिक्षा में नई दृष्टि— शिक्षा-संसार में यह पुस्तक अपने ढङ्ग की अकेली है। नवीन मनोविज्ञान तथा नई शिक्षा के सिद्धान्तों का विषद् विवेचन एक सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री की कलम से प्रस्तुत इस पुस्तक में पढ़ें। माँ-बाप, शिक्षक तथा प्रत्येक बाल-हितैषी की यह पथ-प्रदर्शिका है। सिर्फ आठ आने में इसे खरीद कर अपने बच्चों का भविष्य उज्वल बनाइये।

आज का जापान— वर्तमान विश्वयुद्ध में जापान का महत्वपूर्ण स्थान है। उसकी आंतरिक विशेषताओं तथा दुनिया को चकाचौंध करने वाली आकस्मिक उन्नति का रहस्य बताने वाली यह बिलकुल सामयिक वस्तु है। सचित्र, मूल्य केवल १) रुपया।

बाल-गीत— भावी राष्ट्र के निर्माता बालकों में स्वातन्त्र्य-प्रेम और निर्भीकता का सञ्चार करने वाली इस पुस्तिका को अपने बच्चों के हाथ में अवश्य दीजिये। मूल्य केवल ।|)

विश्वधाय— गोपालन के ऊपर एक विशेषज्ञ की लिखी हुई यह अत्यन्त उपयोगी तथा सचित्र पुस्तक है। मूल्य केवल ।)

ईसप-नीति-निकुंज— महर्षि ईसप की नीति की ६१ शिक्षाप्रद, मनोरञ्जक कहानियों का सुन्दर पद्यमय अनुवाद। मूल्य ||)

बाल-गोपाल—संयुक्त अक्षरों से रहित सरस कविताओं का एक अनूठा बालोपयोगी संग्रह मू० =)||

बलिदान (एकांकी नाटक)—भारतीय स्त्री-समाज पर होने वाले रोमांचकारी अत्याचारों की झांकी इस नाटक में देखिये। मूल्य —)||

मिलने का पता:—**प्रबन्धक—साहित्य सदन, अबोहर।**

चलो चलें देखने

भारी मेला

कब—१२, १३ सितम्बर शनिवार रविवार को

कहाँ—जाट विद्यालय संगरिया (बीकानेर) में

वहाँ कौन-कौन आयेंगे ?

जाटों के सुप्रसिद्ध नेता चौधरी सर छोटूराम, बीकानेर राज्य के शिक्षा मन्त्री श्रीयुत मेजर कमलम् माधव जी पेनाकर, श्री गंगानगर डिवीजन के चीफ कमिश्नर रा० ब० पंडित जानकीनाथजी अटल, बड़े-बड़े विद्वान् तथा प्रचारक और सुप्रसिद्ध जाट सरदार

वहाँ क्या होगा ?

१—विशाल यज्ञ

जिसका अनुष्ठान श्री जगदेव जी शास्त्री कुलपति आर्य महाविद्यालय, किरठल तथा बड़े-बड़े वैदिक विद्वान् करेंगे।

२—शिक्षा सम्मेलन

जिसमें शिक्षा को सुगम, सरल तथा व्यापक बनाने के उपायों पर विद्वानों तथा शिक्षा शास्त्रियों के भाषण होंगे।

३—व्यायाम प्रदर्शन

जिसमें विद्यार्थी अपने खेलों के अद्भुत चमत्कार दिखावेंगे।

४—प्रदर्शिनी-

जिसमें देश की नवीन-प्राचीन कला-कौशल के अद्भुत नमूने दिखाये जावेंगे।

५—उद्घाटन समारोह

विद्यालय के भव्य, विशाल भवनों का उद्घाटन बीकानेर राज्य तथा अन्य प्रान्तों से आये प्रमुख व्यक्ति करेंगे।

६—भू. पू. विद्यार्थी सम्मेलन व सहभोज

विद्यालय से आज तक शिक्षा प्राप्त सैकड़ों विद्यार्थियों का यह अपूर्व सम्मेलन व सहभोज होगा।

७—ग्राम सुधार पञ्चायत

जिसमें देहातियों को तबाह करने वाली कुरीतियों व अन्ध-विश्वासों को जड़ से उखाड़ फैंकने के उपाय सोचे जावेंगे।

यह सब कुछ होगा जाट विद्यालय संगरिया के **२५ वर्षीय जयन्ती उत्सव के उपलक्ष में**

यदि आप अपनी आँखों देखना चाहते हैं

श्री स्वामी केशवानन्द जी के महान उद्योग का एक और नमूना तो अवश्य संगरिया पहुँचिये, हजार काम छोड़कर पहुँचिये।

[illegible] (पञ्जाब)।

पञ्जाब, यू०पी०, सी०पी०, बिहार, बंबई, उड़ीसा, सिंध, कोटा, बड़ोदा, बीकानेर, जम्मू व काश्मीर राज्य के शिक्षा-विभागों द्वारा स्वीकृत।

दीपक

[सर्व साधारण में जीवनज्योति जगाने वाला मासिक पत्र]

१

एकमात्र उपाय

मुझे इस नतीजे पर पहुँचने में काफी कष्ट हुआ है कि अँग्रेजों को हिन्दुस्तान छोड़ कर चले जाना चाहिए, और उस पर अमल कराने का जितना ही मैं विचार करता हूँ, उतना ही मुझे अधिक कष्ट होता है। अपने प्रियजनों को अपने से दूर जाने के लिए कहने में जो कष्ट है, वही इसमें है; लेकिन आज तो वह एक धर्म बन गया है। इसकी खरी खूबी और जरूरत इस बात में है कि यह काम फौरन हो, यानी अँग्रेज जल्दी-से-जल्दी यहाँ से चले जायें। क्या अँग्रेज और क्या हिन्दुस्तानी, दोनों इस वक्त आग के बीचोबीच घिरे हैं। अगर अँग्रेज चले गये तो मुमकिन है कि वे भी बच जायँ, और हम भी बच जायँ। अगर वे नहीं गये, तो भगवान ही जाने कि क्या होगा। मैं साफ शब्दों में यह कह चुका हूँ कि मेरे इस प्रस्ताव में किसी व्यक्ति या दल के हाथों में हुकूमत सौंपने की कोई बात ही नहीं है। अगर अँग्रेज किसी समझौते के फल स्वरूप हिन्दुस्तान छोड़ने को तैयार होते, तो इस सवाल पर विचार करना जरूरी हो जाता। लेकिन मेरे इस प्रस्ताव के अनुसार तो हिन्दुस्तान को भगवान् भरोसे छोड़ जाना है—आज कल की भाषा में इसी को अराजकता कहते हैं—इस अराजकता के फलस्वरूप देश में कुछ समय के लिये यादवी मच सकती है, या बेलगाम लूटमार फैल सकती है। लेकिन इसीमें से आज के इस झूठे हिन्दुस्तान की जगह एक सच्चे हिन्दुस्तान का जन्म होगा।

'हरिजन सेवक'
ता० २४-५-४२

—गांधीजी

एक अङ्क का ।)

वार्षिक मूल्य २।।)

वर्ष ७ वाँ
अङ्क ६ वाँ

सम्पादक
तेगराम

जुलाई
१६४२

चलता पुस्तकालय दान-सूची

(१ जनवरी १६४२ से १५ जून १६४२)

२०) श्री चौ० बीरबल जी डूंगारूंगा—पुत्र के विवाह पर
१६) चौ० मामराज, रामलाल, रामरख तालिया, वार्षिक चंदा
१५॥) गाँव साबूवाना से द्वारा चौ० काशीराम व सेठ नन्दलाल जी
१५) चौ० टीकमदास जी, भूमियांवाली—स्व० माताजी की स्मृति में
१५) ,, जीसुखराम सुथार पाटोदया, भूमियांवाली पुत्री के विवाह पर
११) स्वामी पेमदास जी भूमियांवाली पुत्र विवाह पर
१०) चौ० हरिश्चन्द्र जी ढाबा गाँव नत्थूढाका
१०) पीर रत्नशाह की दरगाह द्वारा प्रो० श्रीराम मेहता, पेशावर
१०) श्री चौ० वृजलाल डेलू सिरसी पुत्री के विवाह पर
५) ,, चौ० मनीराम जेलदार चीटाला (बहावलनगर) वार्षिक चन्दा
५) ,, रामनारायण जेलदार ढाब सन्तेका (बहावलनगर)
४) ,, परसाराम भैराराम पूनिया गांव नत्थूढाका वा० चंदा
३॥) ,, अर्जुनराम जगडवाला वार्षिक चन्दा
३) ,, मोतीराम सिवर गांव नत्थूढाका
२) ,, जमनाराम ढाब सन्ते का (बहावलनगर)
२) श्री सन्त ज्वालादास जी कालांवाली
२) पं० दुलीचन्द नाईवाला
२) म० हरिराम जी भोरड़खेड़ा
२) चौ० भीखाराम जी ढाब सन्ते का
२) ,, बालाराम नम्बरदार, मन्ना श्रीराम
२) ,, गंगाविशन जी ढाब सन्ते का
२) ,, शिवकरण जी मन्नां श्रीराम
२) ,, मनीराम धारणिया ढाब सन्ते का
२) ,, तेजाराम जी, डबवाला
२) ठा० जानमोहम्मद ढाब सन्तेका
२) चौ० केशराम, पेमाराम, गुरदयाल, डबवाला
२) ,, जयलाल मुख्तार गाँव नत्थूढाका
२) ,, विजयसिंह चांगल, उडांग
२) चौ० गोविन्दराम जगडवाला (बहावलनगर)
२) ,, हनुमन्ताराम बिजारणिया केरियांवाली पौत्र-विवाह पर
१॥) ,, हरीराम धारणिया ढाब सन्ते का
१-)॥ ,, भैराराम लदोइया, साबूवाना
१) ,, काशीराम लदोइया साबूवाना
१) ,, सुरजाराम सिवर गांव नत्थूढाका
१) ,, केशराम टाक साबूवाना
१) ,, गणपतराम लदोइया साबूवाना
१) ,, जगराम भूरिया, केरियांवाली पुत्री के विवाह पर
१) ,, केशाराम बुड़ानियां केरियांवाली पुत्र के विवाह पर
१) ,, कुम्भाराम गोला बाजीदपुर
१) स० आत्मासिंह बस्ती आत्मासिंह
१) चौ० रावतराम नम्बरदार जगडवाला
१) ,, हरद्वारीलाल चूड़ीवाला
१) ,, पन्नाराम बस्तीराम चूड़ीवाला
१) ,, बस्तीराम जी वैद्यभूषण चूड़ीवाला
१) ,, राजाराम सुपुत्र चौ० दलसुखराय चूड़ीवाला
१) ,, अमोलाल ओंकारनाथ चूड़ीवाला
१) ,, दयाराम जयराम कोड़ीवाल चूड़ीवाला
१) ,, लालचन्द जी चूड़ीवाला
१) सेठ बुद्धरमल दुकानदार चूड़ीवाली
१) स्वामी रामदास भूमियांवाली, पुत्री के विवाह पर
१) लाला नारायणदास चरियामखेड़ा
१) चौ० मनीराम डूँगरखेड़ा
१) ,, नारायण जी पीराराम जी डबवाला
१) ,, कुरड़ाराम जी घेरूराम जी डबवाला
१) ,, सुरजाराम सुपुत्र चौ० चेतनराम डबवाला
१) ,, रामूजी गोदारा, उडांग
१) सेठ अर्जुनदास जी उडांग
१) चौ० मामराज डूडी उडांग
१) चौ० चेतराम जी गाँव—नत्थू ढाका (बहावलनगर)
१) श्री बदरीराम भड़भूजा, जगडवाला (बहावलनगर)
१) विद्यासागर सेठ ढाबसंतेका (बहावलनगर)

दीपक—वर्ष ७, संख्या ६, जुलाई १६४२ ई०

'दीपक' के नियम

१—'दीपक' हर अंग्रेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२—'दीपक' का वार्षिक मूल्य डाक व्यय व विशेषांक सहित केवल २।।) है। एक प्रति ४ आने, विदेश से ४) ।

३—'दीपक' में प्रकाशनार्थ लिखे जाने वाले लेख अधूरे न हों, पृष्ठ के एक ओर ही संशोधन के लिये इधर उधर जगह छोड़कर सफाई से लिखे हों, विस्तार में चार पृष्ठ से अधिक न हों। भाषा उनकी सरल व शैली रोचक हो जिससे साधारण योग्यता वाले व्यक्ति भी जिनके हितार्थ 'दीपक' प्रकाशित हुआ है, उन्हें पढ़ व समझ सकें।

४—'दीपक' का मुख्य उद्देश्य **ग्राम-सुधार, समाज-उत्थान, शिक्षा व राष्ट्र-भाषा-प्रचार** द्वारा जनता-जनार्दन में जीवन-जागृति पैदा करना है। अतः धार्मिक ईर्ष्या, साम्प्रदायिक विद्वेष पूर्ण उपरोक्त उद्देश्य के विपरीत कोई लेख न छप सकेगा।

५—लेख घटाने-बढ़ाने, संशोधन करने तथा प्रकाशित करने या न करने का अधिकार संपादक को होगा।

६—'दीपक' के ग्राहकों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा पता और ग्राहक नम्बर साफ अक्षरों में लिखना चाहिये, अन्यथा जवाब देर से मिलेगा। १ मास से कम समयके लिये पता बदलवाने के लिये डाकखानेसे प्रबंध करें।

७—अस्वीकृत लेख डाक खर्च भेजने पर ही लौटाये जा सकेंगे अन्यथा नहीं।

८—जिन सज्जनों को किसी मास का 'दीपक' न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछ ताछ करके बाद में हमारे पास लिखना चाहिये।

९—लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक व मूल्य तथा प्रबन्ध विषयक पत्र मैनेजर 'दीपक' के पते से और परीक्षा सम्बन्धी लेख व पत्र श्री चन्द्रकान्त शास्त्री श्रीराम निकेतन, मुलतान-सिटी के पते से आने चाहियें।

स्तंभ-सूची

१ जीवन-चर्चा
२ पुस्तकालय
३ नवीन-शिक्षा
४ राष्ट्र-भाषा
५ हमारे गाँव
६ देहाती-साहित्य
७ खेती-बाड़ी
८ उद्योग-धंधे
९ पशु-पालन
१० स्वास्थ्य-साधना
११ हमारा आहार
१२ महिला-मंडल
१३ बाल मंदिर
१४ हिन्दी परीक्षा मन्दिर
१५ प्रकृति और विज्ञान
१६ सामयिक चर्चा
१७ सम्पादकीय नोट

कृपालु लेखक-लेखिकाओं से नम्र निवेदन है कि वे 'दीपक' के लिये कुछ लिखने से पहिले एक बार हमारे स्तंभों की सूची देख लें। इन स्तंभों के अतिरिक्त भाव-पूर्ण किन्तु सात्विक कविता और कहानियों के लिये भी 'दीपक' के कुछ पृष्ठ 'रिज़र्व' हैं सरल भाषा में लिखे गये व्यवहारिक लेख 'दीपक' के श्रद्धापात्र होंगे।

Approved for use in Schools in the Punjab, U. P., C. P., Bihar, Bombay, Orissa, Sindh, Kotah, Baroda, Bikaner & J & K. States

दीपक

[हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की सम्पत्ति तथा पञ्जाब में राष्ट्रभाषा प्रचार करने वाली प्रमुख संस्था—
साहित्य सदन, अबोहर का मुखपत्र]

सत्यम् :: शिवम् :: सुन्दरम्

सम्पादक—तेगराम

आसाढ़ १९९९ } वर्ष ७, संख्या ९ पूर्ण संख्या ८१ { जुलाई १९४२

आह्वान

[काशीनाथ त्रिवेदी]

आओ प्यारे मित्रो ! आओ,
हिलमिल कर माँ के गुन गाओ।
माँ की सेवा में जुट जाओ,
माँ पर अपनी बलि-बलि जाओ ॥

[२]

कस कर कमर उठो औ, दौड़ो,
कायरता से मुंह अब मोड़ो।
सबसे मीठा नाता जोड़ो,
माँ के बन्धन सत्वर तोड़ो।

[३]

माँ के बाँके लाल कहाओ,
उसके मन का मोद बढाओ।
तन, मन, धन सबकी सुध भूलो,
माँ की गोदी में नित फूलो ॥

[४]

माँ यह बुढिया माँ गरीबिनी,
दुखिया, दीना और बन्दिनी।
छाती इसकी छलनी-छलनी,
ऐसी माँ यह किसकी ? अपनी ॥

[५]

मैया अपनी जननी अपनी,
इसकी लाज हमें है रखनी।
नर-नर में औ, ज़िगर-ज़िगर में,
ममता इसकी भर-भर देनी ॥

[६]

घर-घर में औ, गाँव-गाँव में,
घूम-घूम कर कहनी सुननी।
माँ के सुख की माँ के दुख की,
सरस कहानी राम कहानी ॥

[७]

माँ यह मेरी मैं इस माँ का,
कहता बच्चा-बच्चा बाँका।
माँ के यश की उड़ी पताका,
बच्चों ने रिपु सम्मुख ताका॥

[८]

आओ प्यारे मित्रो! आओ,
माँ के झण्डे को फहराओ।
माँ का जय जयकार कराओ,
हरख-हरख माँ के गुन गाओ॥

[९]

माँ के टुकड़े मत होने दो,
दुखड़े माँ के मत बढ़ने दो।
माँ का गौरव मत घटने दो,
मर कर माँ को मत मरने दो॥

[१०]

माँ जीये तो सब जीयेंगे,
आन मान से चिर जीयेंगे।
सब जीयें औ, माँ न जिये तो,
कौन कहाँ कैसे जीयेंगे!

[११]

माँ का दुख हरने में सुख है,
माँ पर मर-मिटने में सुख है।
माँ के बन्धन काट छाँट कर,
माँ की जय कहने में सुख है॥

[१२]

माँ की जय में सबकी जय है,
माँ के सुख में सबका सुख है।
यह 'माँ' है तो हम 'बेटे' हैं,
सुख से चरणों में लेटे हैं॥

[१३]

आओ लेटो, सुख से लेटो,
माँ के चरणों में नित लेटो।
तन मन धन सब कुछ दे करके,
माँ से अपनी भेंटो-भेंटो॥

[१४]

माँ प्यारी है माँ न्यारी है,
माँ की छाया सुखकारी है।
सूरत कितनी भोली-भाली,
बलिहारी माँ! बलिहारी है॥

[१५]

आओ प्यारे मित्रो! आओ,
भेदभाव सब तज कर आओ।
रङ्क-राव सब मिल कर आओ,
भाई-भाई बन कर आओ॥

[१६]

माँ पर सङ्कट है घहराया,
दुश्मन दरवाजे पर आया।
प्रलय अकाल सभी कुछ लाया,
नभ से बम बरसाता आया॥

[१७]

इस दुश्मन को घुसने मत दो,
डट कर इससे कहदो-कहदो,
खबरदार जो आये हो तो,
तैयार मिलेंगे मरने को॥

[१८]

मरने को औ, मिट जाने को,
हँसते हँसते बलि जाने को।
मैया की लाज बचाने को,
दुखिया के दुःख मिटाने को॥

[१९]

भाई के लाल खड़े होंगे,
चालीस करोड़ अड़े होंगे।
सीनों पर हथ पड़े होंगे,
औ, मुँह मुसकान जड़े होंगे॥

[२०]

कायर का याँ नाम नहीं है,
हाय-हाय का काम नहीं है।
हिम्मत वाले वीर सभी हैं,
धीर और गम्भीर सभी हैं॥

[२१]

बहुत सहा है अब न सहेंगे,
मर जायेंगे मिट जायेंगे।
पर गुलाम हरगिज न बनेंगे,
अपने मालिक आप बनेंगे।

[२२]

ओ मां! ओ मां! प्यारी मां ओ!
देख देख कर हिय हरखाओ।
सत्य अहिंसा का बल धर कर,
हम बढ़ते हैं हमें बढ़ाओ॥

[२३]

तेरे चरणों में मां अपनी,
हम भेंट चढ़ाने को आये।
तुझ पर अपने जीवन धन को,
न्यौछावर करने हम आये॥

[२४]

हम तेरे नैनों के तारे,
दीपक हम जग के उजियारे।
तेरे मीठे अरमानों पर,
जाते हैं हम वारे-वारे।

[२५]

आओ प्यारे मित्रो! आओ,
मां की रक्षा में जुट जाओ।
हिन्दू मुस्लिम सिक्ख पारसी,
अपने भेद भुला कर आओ॥

[२६]

बम बरसाता बैरी आया,
आग लगाता प्रलय मचाता।
दिल दहलाता औ, फुसलाता,
धौंस दिखाता बैरी आया।

[२७]

हम दौड़ पड़े मां! दौड़ पड़े,
बूढ़े बालक सब दौड़ पड़े।
तुझको रटते तुझको भजते,
बस सीना ताने खड़े अड़े॥

[२८]

अडग रहे हम अटल रहे मां,
हटे न तिल भर डटे रहे मां।
हम हुलस रहे थे रन में औ,
दुश्मन तेरे झुलस रहे मां॥

[२९]

कैसी तेरी ताकत मैया,
आहा! कैसा तेरा जादू।
इस कोने से उस कोने तक,
बिजली-सा फैला वह जादू॥

[३०]

नामर्दों में मर्दी आई,
शूरों ने राह अद्भुत पाई।
कस कर कमर उठे सब भाई,
बहनें भी आगे बढ़ आईं॥

[३१]

जैसी तेरी ममता मैया,
वैसे तेरे कुँवर कन्हैया।
सुन पुकार दौड़े सब आये,
लगे नाचने ताता थैया॥

[३२]

तेरी माया के वश मैया
अबल सबल कायर लड़वैया।
हुशियार बने दीवार बने,
सत के झण्डे के रखवैया॥

[३३]

मां पर भीषण सङ्कट छाया,
बैरी वह मुंह बाये आया।
उसने हमको तत्पर पाया,
हमने उसको खूब छकाया॥

[३४]

हम मां की आंखों के तारे,
दीपक हम जग के उजियारे।
मां के मीठे अरमानों पर,
हम जाते हैं वारे-वारे॥

[३५]

मां यह प्यारी मां यह न्यारी,
इस दुनिया के सुख की सारी।
जड़ है इसके कर में भारी,
मित्रो! इसके बनो पुजारी॥

[३६]

आओ प्यारे मित्रो! आओ,
सब मिल मां के कष्ट नशाओ।
मां की रक्षा में मिट जाओ,
मां के सच्चे पूत कहाओ॥

गीता की भूमिका

[श्री अरविंद]

अप्रेल के अङ्क से आगे

दुर्योधन की वाक् चातुरी

सञ्जय युद्ध की उसी प्राथमिक अवस्था का वर्णन करने लगे। पांडव सेना के द्वारा रचे हुए व्यूह को देखकर दुर्योधन द्रोणाचार्य के निकट गये। द्रोण के निकट वे क्यों गये, इस बात की आलोचना करना आवश्यक है। सेनापति तो भीष्म थे, इसलिये दुर्योधन को युद्ध सम्बन्धी यदि कुछ कहना था तो उसे भीष्म से ही कहना चाहिये था, किन्तु कूटबुद्धि दुर्योधन भीष्म का विश्वास नहीं करता था। भीष्म पांडवों के अनुरक्त थे, हस्तिनापुर के तत्कालीन शांतिदल के नेता थे। यदि युद्ध पांडवों और कौरवों में ही होता, तो वे कदापि अस्त्र नहीं उठाते, किन्तु कौरवों के प्राचीन शत्रु, उनकी बराबरी करनेवाले और साम्राज्य के लोभी पांचाल जाति के लोगों द्वारा कौरव राज्य को आक्रांत देखकर कौरव जाति के प्रधान पुरुष, योद्धा और राजनीतिज्ञ सेनापति के पदपर नियुक्त हुए थे और अपने बाहुबल के द्वारा चिररक्षित स्वजाति के गौरव और प्रभुत्व की अन्तिम रक्षा करने का संकल्प किया था। दुर्योधन आसुरी प्रकृति का मनुष्य था। राग और द्वेष ही थे उसके समस्त कार्यों के प्रमाण और हेतु; अतएव वह इस कर्त्तव्यपरायण महापुरुष के मनोभावों को समझने में असमर्थ था। कर्त्तव्य उपस्थित होनेपर युद्ध क्षेत्र में अपने प्राणों से भी प्रिय पांडवों का संहार करने की शक्ति इस घोर तपस्वी के प्राण में है, इस बात पर वह कभी भी विश्वास न कर सका। स्वदेशहितैषी लोग परामर्श के समय अपना मत अन्याय और बुराई के विरुद्ध देकर अपनी जातिको अन्याय और बुराई करने से अपने भरसक रोकते हैं, किन्तु उसी अन्याय और बुराई को जब लोकमत स्वीकार कर लेता है तब वे अपने मत की उपेक्षा करके भी और अधर्म युद्ध में भी स्वजातिरक्षा और शत्रुदमन करते हैं। भीष्म ने भी इसी मार्ग का अवलम्बन किया था, यह भाव दुर्योधन की समझ के बाहर था। इसीलिये भीष्म के निकट उपस्थित न होकर उन्होंने द्रोण को याद किया। द्रोणाचार्य व्यक्तिगत भाव से पांचाल राज्य के घोर शत्रु थे, क्योंकि पांचाल देश के राजकुमार धृष्टद्युम्नने गुरु द्रोणाचार्य को वध करने की प्रतिज्ञा की थी। इसलिये दुर्योधन ने सोचा कि इस व्यक्तिगत वैरभाव की बात को याद दिलाने से आचार्य शांति का पक्ष छोड़कर पूर्ण उत्साह के साथ युद्ध करेंगे। इस बातको उन्होंने स्पष्ट रूप में नहीं कहा, केवल धृष्टद्युम्न का नाममात्र लिया। इसके बाद भीष्म को भी संतुष्ट रखने के लिये उनको कौरव राज्य के रक्षक और विजय के आशास्वरूप कहकर संबोधन किया। पहले उन्होंने मुख्य मुख्य योद्धाओं के नामका उल्लेख किया, इसके बाद अपनी सेना के कई एक नेताओं का नाम लिया, सब किसीका नहीं। द्रोण और भीष्म का नाम ही उनकी अभिसन्धि के लिये यथेष्ट था, किन्तु उस अभिसन्धि को छिपाने के लिये उन्होंने चार पांच नाम और ले लिये। इनके बाद उन्होंने कहा कि "मेरी सेना बहुत बड़ी है, भीष्म मेरे सेनापति हैं, पांडवों की सेना अपेक्षाकृत अल्प है, उनकी आशा केवल भीम का बाहुबल ही है, अतएव हमलोगों की विजय क्यों नहीं होगी? तब एक बात है, भीष्म ही हैं हमलोगों के प्रधान आश्रय, अतएव सभी

लोगोंको शत्रु के आक्रमण से उनकी रक्षा करना उचित है, उनके बचे रहने से हमारी विजय निश्चित है।" 'अपर्याप्त' शब्द का लोग उलटा अर्थ करते हैं, यह ठीक नहीं है। दुर्योधन की सेना अपेक्षाकृत बड़ी थी, उस सेना के नेतागण शौर्यवीर्य में किसी से कम नहीं थे। आत्मश्लाघी दुर्योधन क्यों अपने बल की निंदा करके अपनी सेना में निराशा पैदा करता? भीष्म ने दुर्योधन के मनोभाव और गूढ उद्देश्य को समझा और उसके सन्देह को दूर करने के लिये सिंहनाद और शङ्खनाद किया। इस बात से दुर्योधन के मनमें हर्ष हुआ। उन्होंने सोचा, मेरा उद्देश्य पूरा हुआ, द्रोण और भीष्म दुविधा छोड़कर युद्ध करेंगे।

प्रेम की आज्ञा

[स्व० आचार्य गिजुभाई]

प्रत्येक युग में आज्ञा का अवतार होता है और युगप्रवर्तक व्यक्ति उसे स्वीकार करते हैं। नास्तिक युग अथवा आस्तिक युग—दोनों में ही आज्ञा शिरोधार्य मानी गई है और आज भी मानी जा रही है।

इन आज्ञाओं को जिन्होंने कान खोल कर सुना है और जीवन में उनका उपयोग किया है, वे इस विश्व के सामर्थ्यशाली व्यक्तियों में अपना नाम लिखा गये हैं। जो अपने जीवन में इन आज्ञाओं पर अमल कर रहे हैं वे जगदुद्धार के पुण्य प्रयत्न में अमूल्य सहयोग दे रहे हैं।

यह आज्ञा सीधी सादी होते हुए भी बिना अभ्यास के जीवन-व्यवहार का विषय नहीं बन सकता। अभ्यास का आधार आग्रह है, उसका बल सतत उद्योग है और उसकी शुद्धि श्रद्धा है। ऐसा अभ्यास साधकों की तरह हम शिक्षकों को भी अपनी इन आज्ञाओं के सम्बन्ध में करना है।

यह आज्ञा जो आकाश से अवतरित नहीं हुई, जो पुस्तकों से प्रकट नहीं हुई, जो पर्वत शिखर पर से नहीं कही गई वह शिक्षा-जगत के पुण्य श्लोक महात्माओं के हृदय में से उत्पन्न हुई है। वह आज्ञा यह है, तुम बालकों में विश्वास रक्खो। इस आज्ञा में कहा गया है, बालक की पहचान केवल शरीर से मत करो; परन्तु उसे आत्मा से पहचानो। उसका आत्मा चिर-पुरातन है, अनादि है, सर्वज्ञ है। इस शरीर से ही उसका आरम्भ नहीं हुआ और न इसके साथ ही उसका अन्त है। यह आत्मा अपने विकास मार्ग का यात्री होकर उन्नति के लिये नवीन शरीर धारण करके आया है। जैसे बीज में वृक्ष और फल का अस्तित्व है उसी प्रकार इसका उद्देश्य इसके पास है—इसका फल इसके अन्दर है। यह अपने मार्ग, अपने लक्ष्य को जानता है। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, क्रियाशक्ति, कल्पना आदि साधनों द्वारा यह अपने स्वरूप को व्यक्त करने के लिये पूर्ण रूप से कटिबद्ध है। इस अनन्त मार्ग के पथिक के मार्ग में तुम बाधक मत बनो। तुम अपने मार्ग पर उसे लाने की प्रेरणा मत करो। उसे प्रलोभन से आकर्षित मत करो और जबरदस्ती कर्त्तव्य बन्धन से मत बाँधो। तुम्हारा मार्ग तुम्हें मुबारिक हो।

इसीलिये यह आज्ञा कहती है, तुम उसके मार्ग में अवरोधक न बनो। उसे उसकी स्वाभाविक गति और शक्ति से आगे बढ़ने दो। तुम्हारा माप दण्ड बहुत छोटा और संकुचित है। इससे तुम उसे मापने की भूल मत करो। तुम उसे अपनी मर्यादाओं में मत बाँधो। तुम

अपने ममत्व से उसका पतन मत करो। यदि तुम से हो सके तो उसके मार्ग में सहायक बनो। बुद्धि के मार्ग को जैसे 'बोधिसत्व' स्वच्छ करते हैं, निष्कण्टक करते हैं, निर्भय बनाते हैं उसी प्रकार तुम बालकों के विकास-मार्ग को स्वच्छ करो, निष्कंटक करो, निर्मल करो और निर्भय बनाओ। कृषक अथवा माली पशु आदि से जैसे वृक्षों की रक्षा करता है उसी प्रकार तुम 'अनत' और 'हीन' से अपने बालकों की रक्षा करो। विकास के लिये आवश्यक समृद्धि यदि तुम्हारे पास हो तो उसे बालकों को अर्पण करो। इतनी सुविधा होने पर बालक स्वयं अपना विकास खोज लेगा। आकाश के तारों की तरफ दूरदर्शकयन्त्र-द्वारा देखने वाले वैज्ञानिक के समान तुम विकास के नियम शोधने के लिये तटस्थ होकर उस (बालक) का निरीक्षण करते रहो और उसे कोई राहु न ग्रस ले इसलिये, भय और हानि के समय उसका तुरन्त उद्धार करो। जगत् के प्रयत्नों से दुनिया ने जो लाभ उठाया है और जो संस्कृति प्राप्त की है वह उसे अपने 'स्व-प्रयत्नों' को रोके बिना सरलता से प्राप्त हो जाय, इसके लिये सम्पूर्ण उचित वातावरण की रचना करो। ऐसा मत समझो कि बालक मनुष्य की प्राथमिक दशा की अवस्था में है। वह प्राथमिक मनुष्य की तरह आरम्भ से प्रयोग—अनुभव करके आगे बढ़ता है और बढ़ेगा, ऐसा मानने की भूल मत करो। विश्व-यात्रा जहाँ से आगे बढ़ने लगती है वहाँ से ही बालक आगे बढ़ना चाहता है, यह हमारा दृढ़ निश्चय होना चाहिए। हमारे इसी निश्चय की गम्भीरता हमें बालक के लिये उपस्थित किये जाने वाले 'विधिनिषेधों' का विवेक-पूर्ण विचार प्रदान करती है। इस विचार से यदि हम बालकों के सहायक-रूप होंगे तो उनके ऊपर किये जाने वाले मताग्रह में से, उनके सम्बन्ध के अपूर्ण विश्वासों में से मुक्त हो सकेंगे। बालक अन्त में उत्तम मनुष्य होना चाहता है। हमारे प्रयत्न भी उसे उस मार्ग पर जाने देने के लिये हैं। विपरीत मार्ग पर जाते हुए बालक को उधर से रोकने या पीछे लौटने में हम भूल नहीं करते बालक का स्वातन्त्र्य सच्चे सुख की खोज के लिये है—सच्चे सुख के अनुभव के लिये है। जो खोज दुःख उपस्थित करती है उसका मार्ग ही असत्य है। उस मार्ग पर जाने की छूट, यह स्वातन्त्र्य नहीं; परन्तु स्वच्छन्दता है। बालक इच्छानुसार इसलिये चले कि वह अपनी इच्छाओं का केवल दास न रहे, बल्कि अपनी इच्छाओं का स्वामी बने। अपनी अधोगामी इच्छाओं का गुलाम बनकर जब बालक काम करता है, तो वह स्वयं स्फूर्ति या स्वातन्त्र्य के प्रदेश का उल्लङ्घन कर जाता है और विनाश के मार्ग का अनुसरण करता है। ऐसे समय में हम उसे सहानुभूति और प्रेम के साधनों से स्वाधीनता के मार्ग पर लाने का प्रयत्न करें तो यह हमारा धर्म है—परम कर्त्तव्य है।

शिक्षकों माँ बापों समाजवादियों और राजनीतिज्ञों के लिये यह एक आज्ञा है, विश्व के हितार्थ एक आदेश है। यह आदेश सत्ता से नहीं; अपितु जगत के कल्याण की ममता से है, समष्टि के प्रेम से है। सब इसे बालकों के लाभार्थ शिरोधार्य करें—इसका पूर्ण पालन करें और अपने दैनिक व्यवहार का विषय बनायें।

हैं नौकर पर मालिक
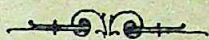
पुलीस, तहसील के सिपाही, पटवारी, तहसीलदार, थानेदार, डिप्टी कमिश्नर या इनसे भी बड़े सरकारी आदमी लोगों के नौकर हैं। इन्हें लोगों के दिये हुए मामला जमीन, टैक्स के रुपये से तनखाह मिलती है। कांग्रेस वाले तो इन्हें नौकर बतलाते ही हैं, कांग्रेसी वर्जीरों ने अपने २ प्रांतों में इन नौकरों को अपने आपको लोगों का सेवक या नौकर समझने तथा बनाने की कोशिश भी की। पञ्जाब के बड़े वजीर सर सिकन्दर हयातखां ने कितनी ही बार हजारों आदमियों में अपने आपको लोगों का सेवक तथा इन बड़े छोटे सरकारी आदमियों को अपना तथा लोगों का नौकर बतलाया। इतना समझने पर भी प्रायः लोग विशेषतया गांव वाले इन्हें नौकर नहीं मालिक समझते हैं। अपने से बड़ा समझ कर इनकी नाजायज खुशामद करते तथा इनकी हां में हां मिलाना अपना कर्तव्य समझते हैं।

कितने दुःख तथा कष्ट की बात है कि जिस आदमी के दिये हुए पैसे से इन सरकारी आदमियों के पेट भरते हैं, उसी आदमी को नीचा समझा जाता है। उसे दबाव देकर, डरा-धमका कर खुशामद के लिए मजबूर किया जाता है। जो मालिक है उसको निजी नौकर जितनी भी इज्जत नहीं। इन सरकारी आदमियों को हमारे धन से तनखाह व सफरखर्च मिलता है, फिर भी गांव-गांव में मलबे तथा बेगार द्वारा मुफ्त खुराक खाते और बिना मजदूरी काम कराते हैं।

नम्बरदार गांव का मुखिया है। उसका कोई कानूनी कर्तव्य नहीं कि सरकारी आदमियों के दबाव में आवे, उनकी अनुचित खुशामद करे। कुछ नम्बरदार अपने गांव वालों के साथ रहते, उनकी सहायता करते हैं। सरकारी आदमियों की अनुचित बातें नहीं मानते। गांव में ऐसे नम्बरदारों की इज्जत भी है। पर कितने ही नम्बरदार सरकारी आदमियों को जो दरअसल उनके नौकर हैं, अपना मालिक समझ कर उनकी हां में हां मिलाते और अपने भाई और गांव वालों तक के विरुद्ध झूठी गवाही तक देते हैं। जिम्मेवार सरकारी अधिकारियों को चाहिए कि लोगों के भय को दूर करने तथा छोटे सरकारी नौकरों की अनुचित कारवाइयों को रोकने के लिए जलसे करके लैक्चर दें। दोनों के कर्तव्य बतलावें। अनुचित दबाव देने वाले सरकारी नौकरों के विरुद्ध कारवाई करें। लोगों को भी जानना चाहिये कि कोई कानून अनुचित खुशामद करने या हां में हां मिलाने के लिए मजबूर नहीं करता अतः जब भी कोई सरकारी आदमी अनुचित गैर कानूनी काम करना चाहे, न करें। गांव की एकता करके इस अन्याय को रोकें। यह समझें हम मालिक हैं और यह सब सरकारी आदमी हमारे नौकर। इस सिद्धांत के लिए कष्ट आवें तो सहें, स्वराज्य के लिए यह प्रथम सीढ़ी है निर्भय बनें, देश के प्रचलित कानून पर चलें। गीदड़ भबकियों में न आवें। जब भी कोई सरकारी अधिकारी अनुचित कार्य करे, एक होकर उसका विरोध करें।

('ग्राम-सेवक')

यह सम्वत् कैसा रहेगा !

[ज्योंही वर्षा ऋतु नज़दीक आती है हमारे देश की जनता विशेषतः किसान जिनका जीवन ही वर्षा पर निर्भर है, आकाश की ओर देख कर वर्षा की प्रतीक्षा करने लगते हैं। वर्षा होने के लिए तरह-तरह की अटकलें लगाते हैं, शकुन विचारते हैं और पण्डितों व ज्योतिषियों से पतरा दिखलाते हैं कि यह सम्वत् कैसा होगा? वर्षा कब, कितनी होगी आदि। हमारे देश में घाघ और भड्डरी नाम के दो बहुत प्रसिद्ध तथा अनुभवी विद्वान् हो गये हैं जिन्हें वर्षा-विज्ञान, वायु-विज्ञान, आकाश-विज्ञान, कृषि, पशुओं आदि का गहरा ज्ञान था। उन्हीं के ज्ञान के आधार पर यहाँ सुकाल-अकाल के लक्षण, वर्षा के चिन्ह, वायु की गति, नक्षत्रों का योग, विभिन्न तिथियों में आकाश का रङ्ग-ढङ्ग आदि ऐसी बातें दी जाती हैं जिनका ध्यान से अध्ययन करने तथा नित्य प्रति आकाश, सूर्य, चन्द्र, वायु की गति विधि देखने से प्रत्येक व्यक्ति जान सकता है कि इस वर्ष वर्षा कब, कैसी होगी और सम्वत् कैसा रहेगा। —सं०]

सुकाल के लक्षण

जेठ मास जो तपै निरासा। तो जानों बरखा की आशा।

यदि जेठ में खूब गरमी पड़े तो अच्छी वर्षा की आशा है।

आसाढ़ी पूनो दिना, बादर भीनो चन्द।
तो भड्डर जोसी कहै, सकल नरां आनन्द॥

आषाढ़ पूर्णिमा को उदय होता हुआ चन्द्रमा बादलों से ढका रहे तो खूब वर्षा होगी और सब मनुष्य सुख पायेंगे।

आसाढ़ी पूनो दिना, गाज बीज बरसन्त।
नासै लच्छन काल का आनन्द मानो सन्त॥

आषाढ़ पूर्णिमा को यदि बादल गरजें, बिजली चमके व बरसे तो अच्छा सम्वत होगा।

आगे रवि पीछे चलै, मंगल जो आषाढ़।
तो बरसै अनमोल ही, पृथी अनन्दै बाढ़॥

आषाढ़ में यदि सूर्य आगे तथा मँगल पीछे हो, तो खूब वर्षा होगी और पृथ्वी पर आनन्द बढ़ेगा।

सावन सुकला सत्तमी, छिपिके ऊगै भान।
तब लग देव बरीसि है, जबलग देव-उठान॥

यदि सावन सुदी सप्तमी को उदय होते समय सूरज बादलों से ढका हो तो देवोत्थान एकादशी (कार्तिक) तक खूब वर्षा होगी।

सावन उखमें भादों जाड़। बरखा मारे टाढ़ उखाड़॥

यदि सावन में गरमी जान पड़े और भादों में सर्दी,

तो समझना चाहिए कि वर्षा खूब होगी।

सर्व तपै जो रोहिणी, सर्व तपै जो मूल।
परिवा तपै जो जेठ की, उपजै सातों तूल॥

यदि रोहणी तथा मूल नक्षत्र पूरे तप जावें औ जेठ की पड़वा भी पूरी तप जावे तो सातों प्रकार के अन्न उपजें।

जैदिन जेठ बहे पुरवाई। तै दिन सावन धूरि उड़ाई॥

जेठ में जितने दिन पूर्वी हवा चलेगी, सावन में उतने दिन धूल उड़ेगी।

आषढ़े धुर अष्टमी, चंद उगन्तो जोय।
काळो वै तो करवरो, धळो वै तो सुगाल॥
जे चन्दा निर्मल हवै, तो पड़ै अचिन्त्या काल॥

आषाढ़ बदी अष्टमी को उगता चन्द्रमा देखो यदि काले बादलों से ढका हो तो समय साधारण होगा, सफेद बादलों से ढका हो तो समय अच्छा होगा और यदि बादलों से हीन, निर्मल होगा तो निश्चय अकाल पड़ेगा।

सवारो गाजियो, नै सापुरस रो बोलियो - एल्यो नहीं जाय।

अर्थात् सवेरे की गरजना और सत्पुरुष का वचन निष्फल नहीं जाता।

सुक्कर वारी बादली, रही सनीचर छाय।
तो यों भाखै भड्डुरी, बिन बरसे नहीं जाय।

शुक्रवार को बादल हो और शनिश्चर तक भी बने रहें तो अवश्य ही वर्षा होगी।

अकाल के लक्षण

मृगसिर वायु न बाजिया, रोहणी तपै न जेठ।
गोरी बीनै बांकरा, खड़ी खेजड़ी हेठ॥

मृगशिर नक्षत्र में हवा न चले और जेठ में रोहणी न तपे, तो वर्षा न होगी। किसान की स्त्री खेजड़ी के नीचे खड़ी कंकड़ चुनेगी।

जेठ उँतारे पक्ख में आद्रादिक दस रिक्ख।
सजल होयँ निरजल कह्यः निरजल सजल प्रत्यक्ख॥

जेठ सुदी में यदि आर्द्रा आदि दस नक्षत्र बरस जायँ, तो चौमासे में सूखा पड़ेगा, और यदि न बरसें, तो चौमासे में पानी बरसेगा।

तपा जेठ में जो चुइ जाय। सभी नखत हलके परिजायँ॥

जेठ में मृगशिर नक्षत्र के अन्त के जो दस दिन 'दस तपा कहलाते हैं, यदि उस दस तपा में बरस जाय तो वर्षा के सब नक्षत्र हलके पड़जावेंगे।'

कृष्ण अषाढ़ी प्रतिपदा, जो अम्बर गरजन्त।
छत्री छत्री जूझया, निहचै काल पड़न्त।

यदि आषाढ़ बदी पड़वा को बादल गरजे, तो क्षत्रिय आपस में लड़ेंगे और निश्चय अकाल पड़ेगा।

आषढ़ी पूनो दिना, निर्मल ऊगै चन्द।
पीव जाव तुम मालवै, अट्ठै छै दुख द्वन्द॥

यदि आषाढ़ पूर्णिमा को चन्द्रमा स्वच्छ उदय हो, तो हे स्वामी तुम मालवे चले जाना क्योंकि अकाल पड़ने से यहां कठिन दुःख होगा।

आगे मङ्गल पीछे भान, वरषा होवै ओस समान॥

यदि आषाढ़ में मङ्गल आगे हो और सूर्य पीछे, तो वर्षा ओस-समान बहुत थोड़ी होगी।

रात्यो बोलै कागला, दिन में बोलै स्याल।
तो यों भाखै भड्डुरी, निहचै पड़ै अकाल॥

यदि रात में कौवे बोलें और दिन में सियार, तो भड्डरी कहते हैं कि निश्चय अकाल पड़ेगा।

मौन अमावस मूल बिन, रोहिनि बिन अखतीज।
सावन सरवन ना मिले, वृथा बखेरो बीज॥

यदि मौनी अमावस्या को मूल, आखातीज को रोहिणी और श्रावण में श्रवण नक्षत्र न हो तो बीज बोना व्यर्थ है—वर्षा न होगी।

चैत चिड़पड़ा। सावन निरमला॥

यदि चैत्र में थोड़ी-थोड़ी वर्षा होती रहे तो सावन में बिल्कुल वर्षा न होगी।

जेठ बीती पहली पड़वा जो अम्बर घरहड़े।
असाढ सावन जाय कोरो, भादवे बिरखा करै॥

आषाढ बदी पड़वा को बादल गरजे या वर्षा हो जावे तो सारा आषाढ व सावन सूखा जावे, भादों में वर्षा होगी।

दिन में गरमी रात में ओस। कहैं घाघ वर्षा सौ कोस॥
ढोकी (बन मुर्गी) बोलें जाय अकास।
अब नाहीं बरखावे आस॥
दिन का बद्दर रात निबद्दर।
बहै पुरवैया झब्बर झब्बर॥
घाघ कहैं कुछ हानि होई।
कुंवा के पानी धोबी धोई॥

दिन को बादल हो, रात को न रहें, पूर्वी हवा रुक-रुक कर चले तो ऐसा सूखा पड़ेगा कि धोबियों को कुएँ के पानी से कपड़े धोने होंगे।

भोर समै डर डम्बरा, रात उजेरी होय।
दुपहरिया सूरज तपै, दुरभिक्ष तेऊ जोय॥

प्रातः तो बादल छाये रहें, रात को आकाश साफ रहे और दोपहर में सूरज तपे तो अकाल पड़ेगा।

दिन सात जो चले बांड़ा (दक्षिण-पश्चिम की हवा)।
सूखे जल सातो खांड़ा (सातों खण्ड में)॥
सावन सुक न दीसै, निश्चै पड़ै अकाल।

एक-आध दिन में वर्षा आने के लक्षण

यदि धूप में तेजी बढ जाय, बालक चिल्लाने लगे, घी पिघल जाय, बकरी हवा के रुख पीठ करके बैठे। चींटियां अंडे लेकर चलें, गौरैया धूल में नहाय, कांसे का रंग फीका पड़जाय, आकाश का रंग गहरा नीला हो जाय मेंढक बांटों की बाड़ में घुस जायँ और सांप वृक्ष के ऊपर चढकर बैठें तो बहुत शीघ्र जोर की वर्षा होगी।

इसी प्रकार यदि रातभर झींगुर बोलें, बकरी बाड़ के पास बैठकर छींके, गोह जोर से आवाज करे, मोर जल्दी २ बोलें, पपीहा चारों ओर पी-पी रटता फिरे, और वृक्ष की ताजा कोंपल कुम्हला जाय, हरा जवासा जलजावे, सूर्योदय के समय बड़ी कड़ी धूप हो, तालाब का पानी गरम हो जावे पनडुब्बी पेड़ पर बैठकर बोले, बिल्लियाँ लड़ें, रात के बादल सवेरे तक रहें, गिरगिट पेड़ पर चढकर काला-सफेद या लाल रङ्ग बदले, सारसों के जोड़े आकाश में उड़ें, बरगद की जटा बढने लगें, अफीम गलने लगे, तो गुड़ से पानी छूटने लगे, ये सब लक्षण शीघ्र जोर की वर्षा आने के हैं।

बागड़ी भी चेते

[श्री तेगराम]

यों तो सभी भारतवासियों का अधिकांश धन सामाजिक कुरीतियों में खर्च होता है, किंतु राजपूताने में तो ये कुरीतियाँ अत्यधिक हैं। उसमें भी 'बागड़' कहलाने वाले उस प्रदेश में, जहाँ लगभग प्रति वर्ष अकाल पड़ता है और लोग वर्षा की कमी से बड़ी मुश्किल से दिन गुजारते हैं, औसर (मृतकभोज) जैसी प्रथाएँ घुन की तरह इस बागड़ी जाति में लगी हैं जो दिन पर दिन इसकी जड़ को खोखली कर रही हैं। ये लोग अच्छे सम्वत् में भी न अच्छा खायेंगे, न अच्छा पहनेंगे। छाछ-राबड़ी से ही गुजारा करके ये पैसा जोड़ते हैं—बच्चों की शिक्षा दीक्षा के लिए या भविष्य में अकाल आदि संकट में रक्षा के लिए नहीं; बल्कि इन्हीं औसर आदि सामाजिक कुरीतियों में फूंकने के लिए। इनके घर में ज्यों ही कोई बड़ा बूढा गुजरता है तो ये लोग खुशी खुशी अपना ५-७ वर्ष का जोड़ा धन औसर में लगा देते हैं और फिर खाली के खाली रह जाते हैं। इतना ही नहीं, कई-कई तो कर्ज लेकर, जमीन गिरवी रख कर भी इस घातक प्रथा को शान से पूरी करते हैं और अगले दसों वर्षों तक रात-दिन मजदूरी कर-करके भी इस ऋण से छुटकारा नहीं पाते। इस प्रकार अपनी अगली पिछली कमाई औसर की भेंट चढा कर खाली हाथ हुए बागड़ियों को यदि अकाल का सामना करना पड़े, जो अक्सर दूसरे तीसरे वर्ष पड़ता ही रहता है—तो इन्हें पेट पालने के लिए, घर बार छोड़, दूर चककर नहरी इलाके में जा कर। किसी का हाली सीरी रह कर या कार मजूरी करके दिन तोड़ने पड़ते हैं। थली का वह ऐल-फैल व आजकल की अनेकों बुराइयों से बचा, स्वास्थ्यप्रद जल वायु वाला स्थान और स्वतन्त्र-जीवन छोड़, स्त्री बच्चों को साथ लिए गाँव गाँव रोजगार के लिए मारे २ फिरते, लोगों की गुलामी करते—कितना कष्ट होता होगा इन लोगों को! यदि ये लोग समझदारी से काम लें, औसर आदि में कौड़ी भी बरबाद न कर—अकालादि में रक्षा के लिए धन जमा रखें, या बच्चों की पढाई में लगावें जिससे वे पढ-लिख कर किसी रोजगार में लग जावें और अकाल आदि विपत्ति में सहायक बनें, तो इन नित्य अकाल से सताए बागड़ियों को ये दिन न देखने पड़ें।

किन्तु ज्यों-ज्यों जमाना बदल रहा है, शिक्षा का प्रचार बढ रहा है, और लोगों को समाज-सुधार की बातों की जानकारी हो रही है—औसर आदि की हानियाँ समझ कर लोगों के विचार भी इसके खिलाफ हो रहे हैं तथा कई हिम्मत वाले लोग इस कुप्रथा को छोड़ भी रहे हैं। अंग्रेज़ी इलाके में आकर बसे बागड़ी लोगों में शिक्षा तथा समाज सुधार का अधिक प्रचार होने के कारण, सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने की भावना दिन पर दिन बढ रही है, लेकिन बागड़ निवासियों के सामने औसर बन्द करने की बात कहने वाला व्यक्ति आज भी घोर पापी और धर्म से पतित समझा जाता है।

हमें यह लिखते हर्ष होता है कि अविद्या-अन्धकार की मजबूत दीवार को चीर कर ज्ञान का प्रकाश अब बागड़ में भी पहुँच गया है। वहाँ भी ऐसे हिम्मत के धनी तथा साहसी लोग पैदा हो गए हैं जो औसर जैसी नाशकारी प्रथा को एक ही झटके में तोड़ कर बागड़ी जाति को बरबादी के मार्ग से उबारने के लिए आगे बढ गए हैं। जाटों के प्रसिद्ध गाँव लालगढ (तहसील श्रीगंगानगर) के

चौधरी धौंकलराम भादू आधे गाँव के चौधरी तथा बहुत प्रतिष्ठित घराने के थे। लालगढ़ के अलावा तहसील सिरसा के ऐलनाबाद आदि स्थानों में भी बड़ी जायदाद के मालिक थे। आपका ८० वर्ष की बड़ी आयु में गत् वर्ष देहांत हो गया। ऐसे बड़े तथा धनी घराने के प्रतिष्ठित व्यक्ति के इतनी बड़ी आयु पाकर गुजरने से बागड़ियों में हजारों रुपये लगा कर ठाट बाट से औसर करना स्वाभाविक सी बात है। किन्तु मृतक के घर वालों ने बड़ी समझदारी और हौसले से काम किया। मृतक के छोटे भाई चौधरी मघाराम जी ने और पुत्र बीरबलजी ने औसर बिलकुल बन्द करने का निश्चय किया तथा चौ॰ धौंकलराम जी की विधवा स्त्री को भी समझा कर औसर न करने के लिए तैयार कर लिया। फलतः चौ॰ धौंकलरामजी के स्वर्गवास पर औसर बिल्कुल नहीं किया गया। हाँ, सौ रुपया गाँव के लिए गोधा (साँड) खरीदने जैसे पुण्य-कार्य के लिए दान दिये। मरने के समय तीसरा और मेल भी इस गाँव में इसी घराने ने बन्द किया और अब औसर बन्द करके जाति को उजड़ने से बचने का मार्ग दिखाया अतः ये समस्त बागड़ी जाति के धन्यवाद के पात्र हैं। इस जाति में उन्नति के लिए यह पहला और अनुकरणीय उदाहरण है। इसके अतिरिक्त चौ॰ मोटाराम भादू नम्बरदार बड़ोपल के स्वर्गवास पर उनके पुत्रों व कुटम्बियों ने औसर न करके तथा चौ॰ रतीराम जी भूगल मिरजावाला ने अपनी स्त्री के स्वर्गवास पर औसर बन्द करके जाति की भारी सेवा की है तथा सैंकड़ों घरों को उजड़ने से बचाया है। चौ॰ बुधराम जी वकील श्रीगंगानगर, चौ॰ रामचन्द्र जी मदेरा तथा चौ॰ नारायणराम श्रीगंगानगर ने अपने पुत्र पुत्रियों के विवाहों पर सब प्रकार की फिजूलखर्चियों को बन्द करके इस कल्याणकारी सुधार-मार्ग पर अग्रसर होकर जाति के सामने आदर्श रखा है जिससे उत्साहित होकर चौ॰ मोतीराम सहारण श्रीगंगानगर ने भी अपनी पुत्री के विवाह में बरात को तीन रोटी दी तथा अब माता के स्वर्गवास पर औसर न करने का विचार कर रहे हैं। ईश्वर ऐसे सुधार-प्रेमियों को साहस तथा सुबुद्धि दे। अबोहर के आस-पास के अंग्रेज़ी इलाके के अन्य बहुत से बागड़ी लोगों ने भी औसर, विवाह आदि की फिजूलखर्ची बन्द की है जिससे ऊपर बताए बीकानेर राज्य के लोगों को ये सुधार-कार्य करने का साहस हुआ।

ऊपर के उदाहरणों से साफ जाहिर है कि आज औसर या विवाहादि में फिजूलखर्ची करना मान बड़ाई, शान या अमीरी की निशान नहीं मानी जाती, बल्कि समझदार तथा प्रतिष्ठित व सम्पन्न लोग इन कुरीतियों में पैसा खर्च करना मूर्खता और बरबादी की ही निशानी समझते हैं। अतः आशा है कि वे सभी लोग जिनमें अब तक ये कुरीतियाँ प्रचलित थीं, अब इन्हें बिल्कुल बन्द करके उनसे बचे पैसे को अपनी उन्नति के दूसरे उपयोगी कामों में लगाएँगे। साहित्य सदन, अबोहर के कार्यकर्ताओं के प्रयत्न से ३–४ वर्ष पहले इलाके के लोगों में फैली इन कुरीतियों को दूर करने के लिए 'ग्राम सुधार पञ्चायत' स्थापित की गई थी तथा इन कुरीतियों की हानियाँ बतला कर गाँवों में इनके बन्द करने के लिए खूब प्रचार किया गया था। उसी का फल है कि आज भी स्थान-स्थान पर इन कुरीतियों के खिलाफ प्रचार करने वाले व्यक्ति चुपचाप काम कर रहे हैं, तभी तो इलाके के प्रतिष्ठित घराने इन कुरीतियों को छोड़ रहे हैं। अब समय आ गया है कि ग्राम सुधार पञ्चायत के कार्य को जोर शोर से किया जावे तथा इन कुरीतियों को पूर्णतः बन्द करने के लिए जबरदस्त आन्दोलन शुरू हो।

साम्राज्यवाद के शिकार

[कुमारी सुमित्रा खोसला, प्रभाकर]

: १ :

"डाक्टर साहिब आप यह क्या कह रहे हैं !" शर्मा जी ने डबडबाती आँखें और भरे हुए कण्ठ से कहा। 'मैं इसे छोड़ कर देश चला जाऊँ ! जिसे देश से लाया, जिसके साथ सारा जीवन बिताया, जिसने मेरी सेवा में न दिन देखा न रात, छाया की नाईं सर्वदा साथ रही, अनेकों कष्ट सहे, मेरे दुःख को अपना दुःख समझा; जिसने मेरे कष्टों में मुझ से दूर हटने का नाम न लिया, उसे आज इस दशा में छोड़ देश चला जाऊँ ? इसके बिना देश विदेश है, जीवन सूना और आनन्द-रहित है। यह मेरे हृदय की रानी है, जीवन की ज्योति है, प्राणों की आधार है और है सर्व सुखों की मूल। इसके बिना जीवन अन्धेरा होगा। जिसने ३० वर्ष से त्यागमूर्ति बनकर मेरी निष्काम सेवा की उसे इन जीवन के अन्तिम दिनों में अकेला छोड़ कर देश चला जाऊँ ? नहीं, कदापि नहीं ! बम्ब पड़ें या तोपें आग उगलें, चाहे प्रलय ही क्यों न आ जावे; परन्तु मैं इसे अकेली छोड़ कहीं नहीं जाऊँगा। इस जीवन साथी के साथ सून्य जीवन में भी रह कर मरना शांति और सुखदायक होगा। अतः इसे यहां मृत्यु के मुख में निराश्रित छोड़ कर मैं कहीं नहीं जाऊँगा।"

डाक्टर ने रोगी का एक-एक घाव लैंज की सहायता से टटोल कर देखा और बोला—"दशा निराशाजनक नहीं। यदि औषधि का प्रयोग होता रहे तो इसके कुछ समय में ठीक होने की सम्भावना है। परन्तु......।"

"परन्तु क्यों ?" शर्मा जी बोले—"आप हमें अपने औषधालय में एक खाट भर का स्थान देदें, हम उसी में निर्वाह कर लेंगे। यदि ऐसा न हो सके तो किसी सरकारी अस्पताल में ही स्थान दिलवा दें, वहां यदि औषधि ही मिलती रहेगी तो भी ठीक है क्योंकि सुनते हैं कि शत्रु औषधालयों पर आक्रमण नहीं किया करते। यदि किसी सरकारी अस्पताल में भी प्रबन्ध न हो सके तो किसी शैल्टर रक्षागृह) में ही शरण दिला दीजिए। कुछ भी हो, इसे जीवन-दान देने का अवश्य प्रयत्न करें। मेरी सारी सम्पत्ति आपकी होगी, भयङ्कर विपत्ति के कारण में स्वयं फर्स्ट एड (First Aid) तक करना भूल गया हूँ।"

"शर्मा जी", डाक्टर ने ठण्डी सांस भर कर कहा—'शत्रु यहां से केवल पाँच मील रह गया है। लोग नगर छोड़ कर भाग रहे हैं, जिन्हें जलयान में स्थान मिला वह समुद्र के मार्ग से सुरक्षित स्थानों में जा रहे हैं; शेष रेलों, मोटरों, लारियों, घोड़ों, बैल-गाड़ियों में तथा सहस्रों पैदल भागे जा रहे हैं। यह शहर रात तक खाली हो जायगा। कल रात्रि को बम्ब वर्षा ने हजारों बच्चे, बूढ़े, स्त्रियां, युवक और पशु मौत के घाट उतार दिए हैं। नगर में कोई घर बचा हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता। बाहर जाकर देखिये, जनता किस प्रकार व्याकुल हुई सड़कों पर पैदल दौड़ी जा रही है। सरकार ने सब गोदामों और दफ्तरों को स्वयं आग लगा दी है तथा घोषणा करदी है कि अब शहर की रक्षा न हो सकेगी, जो लोग बचना चाहें आज रात से पहले जहां स्थान मिले चले जाएँ। आज रात्रि को शत्रु के भीषण आक्रमण की सम्भावना है। बम्ब वर्षा होने वाली है। नगर भस्म हो जाएगा क्योंकि हमारी

सरकार ने नगर को छोड़ने का निश्चय कर लिया है। फौजें और वायुयान पीछे हट रहे हैं। सम्भावना तो यही है कि कल सूर्योदय तक शत्रु का शहर पर अधिकार हो जावेगा और रात्रि के बाद यहां से सब लोग चले जावेंगे। मेरा हस्पताल टूट चुका है, हम सबको सरकारी हिदायतें आ चुकी हैं कि यदि जाना चाहो तो मध्याह्न बाद को जाने वाले जहाज में बैठ कर चले जाओ। अतः इस प्यारे नगर को अन्तिम प्रणाम करके मैं भी आज यहां से जा रहा हूँ। सैनिक और सरकारी अस्पतालों में योद्धाओं और विदेशी लोगों के अतिरिक्त किसी को भी स्थान नहीं दिया जा रहा। बेचारे घायल नागरिक तम्बुओं में पड़े सड़ रहे हैं। यही अवस्था शैल्टर घरों की है। वहां अफसरों के अतिरिक्त किसी को स्थान मिलना असम्भव है। मैं एक छोटा ए० आर० पी० (A. R. P.) अफसर होते हुए भी आपकी कुछ सहायता नहीं कर सकूंगा, क्योंकि बड़े अफसरों के सामने मेरी कुछ न चलेगी। यह लो मेरी औषधियों का बैग, रत्ना को औषधि देते रहना और घाव पर मक्खी आदि न बैठने देना। आशा है कि एक सप्ताह तक आपकी धर्मपत्नि स्वस्थ हो जायँगी। भगवान आपकी रक्षा करें। अच्छा नमस्ते......!"

: २ :

शर्मा जी घायल रत्ना का सिर अपनी गोद में रखे ईश्वर से उसके स्वास्थ्य की और रक्षा की प्रार्थना कर रहे थे। जब एक जांघ थक जाती तो दूसरी बदल लेते। आज रत्ना का लाल मुख पीला हो रहा था, क्योंकि बम्ब का टुकड़ा लगने से उसके शरीर से जो सेर भर रक्त निकल चुका था, उससे शरीर क्षीण हो गया था। अतः वह मूर्छित थी। रत्ना की वे सहचरियाँ, जो उसकी मामूली सी बीमारी में उसको क्षण भर भी न छोड़ती थीं अब उनमें से कोई जल तक पिलाने को दिखाई न देती थी। सारा मुहल्ला सूना पड़ा था। शर्मा जी ने स्वयं दूध गर्म किया और बड़ी कठिनता से थोड़ा सा दूध चमचों द्वारा रत्ना के गले में डाला। ज्यों त्यों कर दिन बीता, नगर के दूसरी ओर वायुयानों के आक्रमण से बचने की अलार्म—खतरे की घण्टी—बजनी शुरू हो गईं। किन्तु अब क्या हो सकता था? भाग जाने के लिए कौन सा स्थान था। शर्मा जी ने रत्ना का मुंह रजाई में ढांपा, बत्ती बुझाई और आँखें मूंद ईश्वरोपासना में मग्न हो गए। थोड़ी देर पश्चात् आक्रमण आरम्भ हो गया। शत्रु-वायुयानों का गर्जन सुनाई दिया। उन्होंने मन भर बम्ब वर्षा की। अनेक प्रकार की भयङ्कर-भयङ्कर ध्वनियां सुनाई देने लगीं। घरों में आग लगाने के कारण गगन चुम्बी ऊँची लपटें उठने लगी। धड़ाधड़ बम्ब फटने के धमाके आने लगे। सारा नगर ज्वालाओं के कारण प्रकाशमान हो रहा था। उसी प्रकाश के साथ शर्मा जी ने एक बार फिर रत्ना के मुंह से कपड़ा उतारा, सांस टटोली, उसके मुँह में थोड़ा सा जल डाल कर फिर बम्ब रूपी यमराज की प्रतीक्षा करने लगे। वे संसार के सब सुख दुःख, उतार-चढ़ाव देख चुके थे, उन्हें जीवन की इच्छा न थी, परन्तु यह नहीं चाहते थे कि रत्ना अकेली रह जाए। उसे और भी समीप कर लिया और चिन्ता-रहित होकर ओ३म् ओ३म् का उच्चारण करने लगे। ज्यों ज्यों बम्ब गिरते गये त्यों-त्यों उनका स्वर ऊँचा होता गया। उनका प्यारा नगर उनकी आँखों के सामने जल कर राख का ढेर हो गया। हाथी की चिंघाड़ और शेर की दहाड़ भी इन शत्रु बम्बों की ध्वनि के सम्मुख तुच्छ थी, जिससे कान फटे जा रहे थे, बदबू से दम घुटा जा रहा था। परन्तु शर्मा जी आँखें मूंदे राम राम जपते रहे। उस दिन सारी रात जोर की बम्ब वर्षा होती रही।

: ३ :

सूर्योदय होते ही शत्रु सेनाएँ नगर पर चारों ओर से हमला करके भीतर घुस आईं और शत्रु का अधिकार स्थापित हो गया। वह नगर जो दो दिन पहले संसार की धन-सम्पति का अजायब घर था आज श्मशान-भूमि बना पड़ा था। यह सुन्दर नगर आज १९३१ के भूकम्प के पश्चात

के कोयटे का दृश्य प्रस्तुत करता था। शत्रु-सिपाहियों के रूप में डाकू, शहर के द्रव्य को लूटे जा रहे थे। अब न पुलीस का भय था, न न्यायधीश का, दिन दिहाड़े लूटने वालों को रोकने वाला कोई न था। वे बेखटके शहर को लूट रहे थे। स्वतन्त्रता और न्याय के पुजारी स्त्रियों के स्वर्ण रञ्जित हाथ व गले काट काट कर भूषण उतार रहे थे।

: ४ :

शर्मा जी के घर की दोनों छतें घायलों की शय्याओं से भरी पड़ी हैं, प्रत्येक कमरे के कोने में एक मेज और दो कुर्सियाँ रखी हैं। मेज पर औषधियों की शीशियाँ रखी हुई हैं। कहीं दूध गर्म हो रहा है, तो कहीं पानी, और कहीं घायलों के घावों को गरमाई दी जा रही है। शर्मा जी स्वयं तथा उनकी पत्नि रत्ना उन घायलों की सेवा करते हुए इधर-उधर दौड़ रहे हैं। दोनों ने श्वेत चोगे डाल रखे हैं और हाथों में मरहम-पट्टी का सामान लेकर नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे जाते दिखाई पड़ रहे हैं। आज यह घर अस्पताल और विश्वअनाथालय बना हुआ है। प्रत्येक जाति और देश के पुरुष, स्त्रियों तथा बालकों के बचाव के लिए इस घर में उपाय किया जाता है।

इस अन्धेर नगरी का यह एक स्वर्गाश्रम है। स्वयं वृद्ध और दुर्बल होते हुए भी न जाने इस दम्पत्ति में कहाँ से इतनी शक्ति आ गई। उनके मनमें सेवा के लिए जोश उमड़ रहा था। वह घायलों की सेवा में ऐसे लीन हो गए थे कि न उन्हें भूख थी, न प्यास और न थकान। उन्हें जहाँ कहीं से खबर मिलती कि अमुक स्थान पर कोई घायल पड़ा है अथवा कोई अनाथ भूखा मर रहा है, तो वह स्वयं दौड़े जाते और उसे घर ले आते; तब यथाशक्ति सेवा भी करते। प्रातः ४ बजे से रात्रि के १२ बजे तक आज इस दम्पत्ति ने एक क्षण भर के लिए भी विश्राम नहीं किया था। जब सब घायलों की मरहम-पट्टी हो गई और वे सब सो गए तो दोनों एक कोने में पड़ी हुई कुर्सियों पर बैठ गए। रत्ना बड़े धीमे स्वर से बोली—

"स्वामी! आप धन्य हैं जो मेरे स्वस्थ होने से पहले अकेले ही इतना परिश्रम करते रहे। आप किस प्रकार इस सब काम को निपटाते थे? इतना परमार्थ, इतना त्याग, इतनी सेवा और इतनी शक्ति! धन्य हैं आप, मैं तो एक ही दिन में थक कर चूर हो चुकी हूँ और चाहती हूँ कि विश्राम किया जावे।" "नहीं रत्ना" शर्मा जी ने उसी भांति धीरे से उत्तर दिया—"नहीं, जहाँ भगवान दर्द देता है वहाँ दवा भी अवश्य पैदा करता है। यदि हम लोगों को वह साम्राज्यवाद का शिकार बनाता है तो बचाव के लिए भी कोई उपाय उत्पन्न कर देता है। भगवान ने हमारे प्राणों की रक्षा इस घोर युद्ध में इसी लिए की है कि हम मनुष्य मात्र की सेवा करें। धन्य है भगवान जो······।" इतने में किसी ने घर का बाहर वाला दरवाजा खटखटाया। बात बीच ही में रही और दोनों दौड़ कर नीचे उतरे, किवाड़ खोला तो देखा कि दो पुरुष एक घायल को खाट पर लिए खड़े हैं।

"लीजिये साहब आपका एक और पेशैन्ट (मरीज) आया है" उनमें से एक ने कहा।

"लाइए, मैं इसका स्वागत करता हूँ" शर्मा जी ने उत्तर दिया और उसे अन्दर ले जा कर एक खाली शय्या पर लिटा दिया। लाने वाले चले गए, रत्ना ने किवाड़ बन्द कर दिए और वापस स्वामी के पास आ खड़ी हुई जो कि नये घायल के पास खड़ा था।

"घायल तो मित्र मिरजा जी हैं" शर्मा जी ने आश्चर्य से रत्ना से कहा। वह घबरा कर बोली—"आपने तो कहा था कि डाक्टर साहिब जहाज पर चढ़ कर भाग गए हैं। यह कैसे हुआ? क्या वह वापिस आ गए हैं? न जाने इन पर क्या गुजरी होगी।"

शर्मा जी ने उत्तर दिया—"ऐसा प्रतीत होता है कि इनके पेट में अफारा है शीघ्र ही जल गर्म करो और बोतल में डाल लाओ जिससे इनका पेट गर्म किया जाए।" पेट पर बोतल रखी गई और एक वमन के पश्चात् आध घण्टा में डाक्टर साहिब को होश आई। छत से नजर हटते ही उनकी दृष्टि उनके मित्र शर्मा जी और उनकी

पत्नि रत्ना पर पड़ी तो चमक कर धीमी आवाज में बोले—"शर्मा जी ! यह क्या ? मैं कहाँ हूँ ! रत्ना जीवित है ! आप कहाँ बैठे हैं ! और......।"

रत्ना बोली "मैं जीवित हूँ, परन्तु डाक्टर साहिब यह तो कहिए कि आप किस प्रकार वापिस आ गये !"

"नहीं रत्ना जी" डाक्टर साहिब बोले "मैं अपने स्थान तक पहुँचा ही नहीं। जिस जलयान में मैं बैठ कर गया था वह रास्ते में ही शत्रु के टारपीडो (Tarpedo) का निशाना बना और डूब गया। जहाज का कैप्टन अपने साथियों धनियों और अफसरों को लेकर भाग निकला और हम बचे खुचे यात्री डुबकियाँ लगाने लगे। कुछ मछलियों का आखेट बने। मैं अपनी लाइफ बैल्ट (Life Belt) के सहारे किनारे पर आ गया। किनारे तक मुझे होश रही, उसके पश्चात् पता नहीं मैं कहाँ रहा और यहाँ मुझे कौन लाया। मार्ग में सहायता न मिलने से सैंकड़ों जन डूब गए। ठीक है "जोगी जोगी लड़ें खप्परों की हानि", परन्तु कुछ भी हो, मैं आपके इस आश्रम को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। किस प्रकार आपने यह साज सजाया। हमारी सरकार तो जाती बार सब कुछ जला गई थी और जो बाकी बचा वह शत्रु हड़प कर गये होंगे। फिर आपने यह सब कुछ व्यवस्था कैसे की। ये बीमार कौन हैं ? यह घर है या अस्पताल !"

"यह न घर है, न अस्पताल; यह केवल साम्राज्यवाद के भूखे देशों के युद्ध से पीड़ित जनों की रक्षा का स्थान है जिसके लिए हम कुछ दिन पहले व्याकुल थे" शर्मा जी ने उत्तर देते हुए कहा।

हिन्दी भाषियों का कर्तव्य

१—आपस के पत्र-व्यवहार, हिसाब-किताब, बही-खाता आदि में तथा जिन सार्वजनिक संस्थाओं से हमारा सम्बन्ध है उनके पत्र-व्यवहार, हिसाब-किताब आदि में हमें नागरी लिपि और हिन्दी भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

२—डाकखाने से सम्बन्ध रखने वाले सब काम, जैसे रजिस्टरी, मनीआर्डर, वी० पी० तथा पार्सलों के लिए पता और व्यौरे का लिखना—यह सब हिंदी में होना चाहिए।

३—म्युनिस्पैल्टी और ज़िला बोर्ड से पत्र व्यवहार, चुंगी की रसीदें तथा चुंगी वापिसी प्रार्थना-पत्र, टैक्सों की रसीदें और उनके बारे में लिखा-पढ़ी, यह सब हिन्दी में होना चाहिए। जनता टैक्स और चुंगी देने में बराबर हिन्दी की ही रसीदें माँगे। यदि लोगों को इसमें कठिनता हो तो वे म्युनिस्पैल्टी से लिखा-पढ़ी करें और जब तक उनको ऐसी रसीदें न मिलें जिन्हें वे समझ सकें, तब तक रुपया रोके रहें।

४—किसान अपनी रसीदें ज़मींदारों से हिन्दी में माँगें और ज़मींदार लोग बराबर हिन्दी में रसीदें दें तथा अपने मुकदमों की कुल अदालती कार्यवाही—नालिशें, दरख्वास्तें इत्यादि देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा में करें।

—प्रचार मन्त्री हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग

स्त्री-शिक्षा समस्या

[सरला प्रिजा, प्रभाकर]

संसार परिवर्त्तनशील है। इसमें एक-एक क्षण नया परिवर्त्तन लाता है। इस परिवर्त्तन का प्रभाव सूर्य, चन्द्र, वायु पृथ्वी आदि पर ही नहीं बल्कि मनुष्य के शरीर, मन और विचारों पर भी पड़ता है। अतः मनुष्य के परिवर्त्तन-शील विचारों के कारण संसार में समय-समय पर सामाजिक नैतिक, बौद्धिक, धार्मिक आदि अवस्थाओं में परिवर्त्तन होते रहे हैं। स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में भारतीय समाज के विचार भी समय-समय पर बदलते रहे हैं। एक समय यहाँ पर स्त्री-शिक्षा का इतना प्रचार था कि यहाँ की विदुषियाँ आदि शङ्कराचार्य जैसे संसार-प्रसिद्ध विद्वान् को भी शास्त्रार्थ में पराजित करती थीं। किन्तु लोगों की विचारधारा बदली और एक वह भी समय आया कि जब भारत के बड़े बड़े धर्माचारियों ने यह व्यवस्था दे दी कि स्त्री और शूद्र को पढने का अधिकार नहीं। इस व्यवस्था को क्रियात्मक रूप देने का उन्होंने भरसक प्रयत्न भी किया। उसी का फल है कि आज तक यहाँ का महिला-समाज मूर्खता का ठेकेदार बना रहा है। किन्तु फिर स्थिति बदली, समय पलटा और संसार में स्वतन्त्रता की लहर फैली जिससे स्त्रियाँ भी अछूती न रहीं, उन्होंने भी होश सम्भाला और अपने अधिकारों की माँग की। उनके भावों को कुचलने का प्रयत्न किया गया सही, परन्तु वे अब प्रदीप्त हो चुके थे, लाख प्रयत्न करने पर भी दबाए न दबे। अन्त में स्त्री-जाति में शिक्षा प्राप्ति की भावना जागृत हुई और समाज ने उनकी इस भावना को स्वीकार किया। अस्तु, स्त्री जाति के उसी सङ्घर्ष का परिणाम आज हमारे सामने है--स्त्री-शिक्षा-प्रचार का आन्दोलन जोर पकड़ रहा है, महिला शिक्षणालयों तथा उनमें पढने वालियों की संख्या दिन दूनी बढ रही है। यह प्रसन्नता की बात है।

किन्तु हमें इतने से ही खुश न हो जाना चाहिए। हमें स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में यह भी देखना होगा कि वह हमारे प्राचीन भारतीय नारी-आदर्श के अनुकूल भी है या नहीं तथा स्त्री-जीवन को देश, काल तथा समाज की स्थिति-अनुसार उन्नत तथा सफल भी बनाती है या नहीं? दुःख से कहना पड़ता है कि भारत में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली इस उद्देश्य तक नहीं पहुँचती है। शिक्षा का वास्तविक अर्थ है मनुष्य की आध्यात्मिक और भौतिक शक्तियों का विकास कर उसके जीवन को देश, काल

तथा समाज की तात्कालिक अवस्था के अनुकूल बन-ना। किन्तु आज शिक्षा सच्चे अर्थों में नहीं दी जा रही है। स्त्री शिक्षा में तो और भी अधिक त्रुटियां हैं। यह स्थिति देश के लिए घातक है। कुशिक्षा का पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों पर अत्यधिक कुप्रभाव पड़ता है।

स्त्री का लक्ष्य उच्च, जिम्मेदारियां भारी तथा कर्त्तव्य महान् है। उसे अनन्त कठोर परिस्थितियों में से गुज़रना पड़ता है, महान् मातृत्व पद की योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है। अतः इन गुणों से युक्त सुयोग्य विदुषि तथा सफल गृहिणी बनने के लिए स्त्री को उच्च-शिक्षा, अपार ज्ञान, गहरा अनुभव तथा व्यावहारिक शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है। आजकल की कोरी किताबी शिक्षा से उसका काम न चलेगा। स्त्री का वास्तविक जीवन तो, विवाह के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर ही आरम्भ होता है। घर ही उसका कार्यक्षेत्र है। अतः गृहस्थाश्रम का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही उसे शिक्षा की आवश्यकता है। क्या आधुनिक शिक्षा प्रणाली वर्तमान कन्या को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के योग्य बना देती है? क्या वह उसे आदर्श नारी तथा मां बनने का सच्चा मार्ग दिखाती है जो उसके जीवन का अन्तिम ध्येय है? यदि आज की शिक्षा इस उद्देश्य को पूरा नहीं करती तो वह कल्याणकारी, मुक्तिदाता आदि सच्ची शिक्षा के गुणों से हीन है। उसके प्राप्त करने से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक है।

एक अँगरेज़ का कथन है—"Woman is the complement of man" स्त्री के द्वारा मनुष्य पूर्ण बनता है। यही महाशय एक और स्थान पर भी कहते हैं कि गृहस्थ स्त्री और पुरुष रूपी दो पहियों की गाड़ी है। यदि इनमें से एक भी पहिया नष्ट या विकृत हो जावे तो यह गाड़ी आगे चल न सकेगी। अतः गृहस्थ रूपी गाड़ी को अपने सुनिश्चित लक्ष्य तक सही-सलामत पहुँचाने के लिए पूर्ण प्रयत्न करना स्त्री पुरुष का परम कर्त्तव्य है। पुरुष का कर्त्तव्य घर के बाहर तथा स्त्री का भीतर है। जहां पुरुष का काम आजीविकोपार्जन करना है, वहां स्त्री का घर की देख-भाल व व्यवस्था करना, उसे सुचारु रूप से चलाना, अपने बच्चों के पालन-पोषण में यथोचित ध्यान देना तथा परिवार वालों की सेवा-सुश्रुषा करना है। क्या वर्तमान शिक्षा-पद्धति स्त्री को अपने उपरोक्त कर्त्तव्यों को निभाने तथा जीवन-संग्राम में जूझने के योग्य बनाती है? नहीं। आज की शिक्षा द्वारा कन्या जिन विषयों का ज्ञान प्राप्त करती हैं उनका उपयोग शायद ही उसे अपने गृहस्थ-जीवन में करना पड़े. किन्तु जिन बातों के ज्ञान की उसे पग-पग पर आवश्यकता पड़ती है उसका इस शिक्षा में नितान्त अभाव है। भूख से व्याकुल बच्चों को माता का इतिहास की रटी-रटाई घटनाओं का ज्ञान क्या काम देगा? उसे तो किसी ऐसे शिक्षा का ज्ञान चाहिए था जिसके द्वारा वह स्वयं अपने बच्चों का पेट पाल सके। वह स्त्री अपने बीज गणित अथवा भूगोल के पाण्डित्य पर आंसू ही बहायेगी जिसका बच्चा रोग-शैया पर पड़ा है, किंतु शिशु चिकित्सा के नाम पर जिसने कुछ भी शिक्षा प्राप्त नहीं की है। यह है हमारी आज की निकृष्ट स्त्री-शिक्षा का नमूना —जिसमें निरर्थक, जीवन भर काम में न आने वाले विषयों की रट ई तथा दैनिक व्यवहार में आने वाले अत्यन्त महत्वपूर्ण विषयों की पूर्णतः उपेक्षा रहती है।

किन्तु इस शिक्षा के सम्बन्ध में इतने से ही बस नहीं हो जाती। इस शिक्षा-प्रणाली में और भी भारी दोष हैं। सादगी, सात्विकता, साधना आदि शिक्षार्थी के लिए भारतीय प्राचीन आदर्शों का तो इस शिक्षा-प्रणाली में स्थान ही नहीं। फैशन परस्ती, विलासिता, आरामतलबी, स्वच्छन्दता आदि गुण (!) आधुनिक शिक्षा प्रणाली की पहली बरकतें हैं। साहित्यिक ज्ञानवृद्धि के नाम पर भी यह शिक्षा-पद्धति जो कुछ शिक्षार्थियों की भेंट करती है उससे वे पतनोन्मुख ही होते हैं। उच्च परीक्षाओं में निर्धारित पाठ्य पुस्तकों में इतनी अश्लीलता होती है कि किसी पुरुष द्वारा उनका पढ़ाया जाना अखरता है। अतः जो युवक ब्रह्मचर्य व्रत धारी होते, वे ऐसे साहित्य को पढ़ कर

विचारों से ही विषयी बन जाते हैं और विद्यार्थी जीवन में ही अनाचार के शिकार हो अपने स्वास्थ्य, बुद्धि तथा सर्वस्व से हाथ धो बैठते हैं। अतः क्यों न ऐसे अश्लील तथा चरित्र-भ्रष्ट करने वाले साहित्य के स्थान पर पाठ्यक्रम में व्यावहारिक तथा उपयोगी विषयों का समावेश कराया जाए ?

इस शिक्षा प्रणाली द्वारा स्त्रियों में उच्छृङ्खलता, स्वच्छन्दता आदि भावों का सञ्चार होने से उनमें पति-परायणता, मातृत्व, सेवा-भावना आदि गृहस्थाश्रम की भावना मिट गई है। वह गृहस्थाश्रम से कोसों दूर भागती है, उससे हव्वे की तरह डरती है। अतः वह अपने जीवन के वास्तविक आदर्श से बहुत नीचे गिर गई है। वह प्रत्येक कार्य अपनी इच्छानुसार करने की स्वतन्त्रता चाहती है, किसी की भी दखल-अंदाजी पसन्द नहीं करती। तात्पर्य यह कि अंग्रेज़ी ढङ्ग से शिक्षा प्राप्त भारतीय महिला विलायत की मेम की तरह स्वच्छन्दता से विचरना चाहती है। शायद वह भूल जाती है कि वह भारतीय नारी है। भारतीय संस्कृति का पुजारी तथा भारतीय नारी आदर्श का भक्त पति अपनी पत्नि को भारतीयता के रङ्ग में रङ्गा देखना चाहता है, किन्तु वह उस आदर्श से घृणा करती है। कहिए वह गृहस्थ सुखी हो सकेगा ? कभी नहीं। फिर शिक्षा-प्रणाली को, जिसने यह विष बोया है, क्यों न अपने भारतीय आदर्श के अनुसार प्रचलित किया जावे ?

बस, आज देश के सामने स्त्री-शिक्षा की यह विकट समस्या है। स्त्रियों को शिक्षित बनाए बिना देश का उद्धार हो नहीं सकता। किन्तु आधुनिक घातक शिक्षा-प्रणाली द्वारा शिक्षित स्त्रियों की अशिक्षितों से भी अधिक शोचनीय स्थिति है। एक ओर कुँआ, एक ओर खन्दक है। इन दोनों खतरों के बीच से हमें अपना मार्ग निकालना है। समय रहते इस समस्या को हल करना है, अन्यथा दिन पर दिन स्थिति बिगड़ती जा रही है। क्या शिक्षण संस्थाएँ इस ओर ध्यान देंगी ?

चौ० शिवदत्तसिंह ढाका द्वारा 'दीपक' की सहायता

चौ० शिवदत्तसिंह ढाका, रईस उड़ाग ने, काग़ज़ व छपाई के सामान की इस महँगाई के समय में 'दीपक' की आर्थिक कठिनाई को देख कर जुलाई मास के 'दीपक' की छपाई व काग़ज़ आदि का सारा खर्च देने की उदारता दिखलाई है। आप तथा आप का कुटुम्ब आरम्भ से ही इस संस्था की दिल खोल कर सहायता करता रहा है। आप को जब भी सहायता के लिए कहा गया, आप ने कभी मुंह नहीं मोड़ा, सदैव प्रसन्नता-पूर्वक अच्छी सहायता दी है। एक पूरे अङ्क के खर्च के रूप में बड़ी रकम देकर आपने निश्चय ही 'दीपक' की भारी सेवा की है तथा इसकी स्थिति दृढ़ की है। इसके लिए संस्था आपकी परम कृतज्ञ है।

आशा है कि 'दीपक' के प्रेमी पाठक इस कठिन समय में इसको हर प्रकार से सहायता-सहयोग देकर इसकी जड़ मजबूत बनाएँगे। —सम्पादक

आत्मरक्षा के उपाय

अब तक भारतवासी जिस नाशकारी युद्ध का दूर बैठे तमाशा देखते रहे हैं, वह आज हिन्दुस्तान का दरवाजा खटखटा रहा है। अतः आज सभी देशवासियों में घबराहट है, बेचैनी है कि हम कैसे अपनी रक्षा कर सकेंगे। इस समय लोगों को ३ प्रकार के खतरे हो सकते हैं—(१) शत्रु फौजों का शस्त्रास्त्र से हमला, (२) अन्दरूनी गड़बड़ और गुण्डों द्वारा लूट-मार, (३) रेलें, सड़कें बन्द हो जाने के कारण जीवन निर्वाह की आवश्यक चीजों का न मिलना। इनसे बचने के नीचे लिखे उपाय किए जा सकते हैं—

१. शत्रु हमले से बचाव शत्रु आक्रमण सभी स्थानों पर नहीं बल्कि फौज महत्व के स्थानों पर ही हो सकता है। अतः लोगों को यथा समय ऐसे स्थानों से हट सुरक्षित स्थानों पर चले जाना चाहिए।

२. भीतरी लूट-मार से बचाव—लोग अपने-अपने इलाके की सभी जातियों व सम्प्रदायों में सङ्गठन करें। यह विचार कि विभिन्न सम्प्रदायों में एकता व सङ्गठन हो नहीं सकता, हृदय से निकाल व अपने अपने दिलों से दूसरे सम्प्रदाय के प्रति अविश्वास हटा कर यदि एकता के लिए सच्चा हाथ बढ़ाया जावे तो, आज सबके इस सांझे सङ्कट के समय विभिन्न सम्प्रदायों में एकता व सङ्गठन हो सकता है। मनुष्यों की तो बात ही क्या सांझे सङ्कट—बाढ़ अग्नि लगने आदि के समय हरिण व शेर, सांप व मेंढक तक एक साथ मिल कर रहते देखे गए हैं।

गांवों में अक्सर पार्टीबाजी, दुश्मनी व अदावतें रहती हैं। आज इन सांझे भारी खतरे के सामने देहातियों को अपनी सब पुरानी अदावतें छोड़, एक दिल हो गांव का सङ्गठन करना चाहिए। इसके साथ ही धनियों व जमींदारों को चाहिए कि वे अपनी शोषण वृत्ति छोड़ गरीबों के प्रति अच्छे से अच्छा व्यवहार करके उनके हृदय को प्रेम से जीतें ताकि सङ्कट के समय वे सहायक बनें।

३. जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओं का प्रबन्ध प्रत्येक व्यक्ति को यह बात सोचनी है कि उसे जीवन निर्वाह के लिए जिन जिन चीजों की आवश्यकता है, उनका प्रबन्ध अपने गांव या निकट के इलाके से करना है, क्योंकि माल ढोने के सब साधन—रेल, मोटर आदि बन्द होने से बाहर से कोई चीज आ न सकेगी। इसके लिए लोगों को चाहिए कि अपने गांव के खर्च के लिए अनाज जमा रखें और आगे की फसलों में खाने के अनाज की फसलें बोएँ। कपड़ों की जरूरत पूरी करने के लिए कपास काफी बोएँ, गांव में चर्खे हों, धुनने व बुनने वाले हों, आटा पीसने के लिए हाथ की चक्कियां व खरास हों क्योंकि तेल न मिलने से आटे की मशीनें बन्द हो जावेंगी। इसी प्रकार जलाने का मिट्टी का तेल न मिलने से घाणी का तेल तैयार करने के लिए कोल्हू चाहिएँ। नहर का पानी बन्द होने पर पानी पीने के लिए कुँए होने चाहिएँ। खाने के नित्य काम में आने वाली चीजें—गुड़, शक्कर, जीरा, धनिया सौंफ, मिर्च, प्याज, हल्दी, आलू तथा अन्य हरी सब्जियाँ आदि—यानी नमक के सिवाय अन्य सब भोजन-वस्तु अपने गांव या इलाके में पैदा करने का प्रबन्ध हो। नमक का काफी मात्रा में प्रबन्ध कर लिया जावे। जूता भी गांव में ही बने, कपड़े भी गांव में ही सिलें। खेती के सब आवश्यक औजार गांव में तैयार हों। बीमारी का इलाज व दवाइयाँ गांव में ही मिलें, आदि।

—तेगराम

चलो चलें हम रण में

[श्री काशीनाथ त्रिवेदी]

मित्रो ! चलो चलें हम रण में,
आहा ! चलो चलें हम रण में।
किसके रण में ? कैसे रण में ?
कहो काहे चलें हम रण में ?

माँ की आज़ादी के रण में,
पावन और अनूठे रण में।
सत का झण्डा फहराने को,
जग में नवयुग लाने को॥

मित्रो ! चलो चलें हम रण में,
माँ के रण में मीठे रण में।
पावन और अनूठे रण में,
आहा ! चलो चलें हम रण में॥

बन्दूक नहीं, तलवार नहीं,
रे बर्छी, तीर, कटार नहीं।
लाठी का भी अधिकार नहीं,
रे रण में कैसे चलें कहीं ? मित्रो०

वाँ तोप चलेगी चलने दो,
वाँ आग लगेगी लगने दो।
वाँ खून बहेगा, बहने दो,
वाँ लूट मचेगी मचने दो॥ मित्रो०

इनसे डरने का काम नहीं,
डरने वालों में राम नहीं।
धन धाम नहीं विश्राम नहीं;
दुनिया में उनका नाम नहीं॥ मित्रो०

हम जग में चिर जीने वाले,
राम-कृष्ण के बच्चे-वाले।
शिवा-प्रताप हमारे पाले,
कोई कैसे हमारा टाले ? मित्रो०

परवाह नहीं बम तोप नहीं,
बन्दूक नहीं, तलवार नहीं।
रे बर्छी, तीर, कटार नहीं,
लाठी का भी अधिकार नहीं॥ मित्रो०

हमको इनसे क्या करना है?
अपने हाथों खुद मरना है?
नहीं-नहीं यह तो भ्रमता है,
हाँ, इससे हमको बचना है॥ मित्रो०

'खुद जीना और जिलाना है',
यह विरद हमारा माना है।
अपनी इक टेक निभाना है,
निज माँ पर बलि-बलि जाना है॥ मित्रो०

तन में ताकत भरनी होगी,
मन में हिम्मत धरनी होगी।
प्रभु में लगन लगानी होगी,
तब सभी कुरबानी होगी॥ मित्रो०

सत्य-अहिंसा व्रत ठाना है,
रे रिपु को रिपु ना माना है।
इक नई राह पर जाना है,
मिलजुल कर रंग जमाना है॥ मित्रो०

लाखों को लेकर धाना है,
रे डटना और डटाना है।
सीनों पर गोली खाना है,
दीवार बनाने जाना है॥ मित्रो०

ना रुकना है ना झुकना है,
मर जाना वाँ मिट जाना है।
मरते मिटते मुसकाना है,
यह मुसकाना ही जीना है॥ मित्रो०

इस जीने पर जग बलि जाये,
इससे जग में नवयुग आये।
दीन-दलित दुनिया में इससे,
नवजीवन की आशा छाये॥ मित्रो०

न्याय-नीति का युद्ध हमारा,
नहीं किसीको लूटा मारा।
सत्य-अहिंसा का बल हमने,
अपने हिरदे कस कर धारा॥ मित्रो०

जग में सब जिनके अपने हैं,
जिनने नित देखे सपने हैं।
उनको कौन हरा सकता है ?
उनको कौन मिटा सकता है ? मित्रो०

हम हिलमिल आगे चलते हैं,
हम माँ की जय जय कहते हैं।
हम किलक-पुलक कर बढ़ते हैं,
हम हुलस-हुलस कर मरते हैं॥ मित्रो०

हमको कौन हरा सकता है ?
हमको कौन मिटा सकता है ?
जगतीतल पर हमसे बढ़ कर,
गाँधी-सा किसका नेता है॥ मित्रो०

हारे हार हमारी कैसी ?
जीते जीत उन्हों की कैसी ?
जो हारा है, वह जीता है,
औ, जो जीता, वह हारा है॥ मित्रो०

सत को कौन हरा सकता है,
सत को कौन मिटा सकता है ?
सतवन्तों की इस सेना को,
रण से कौन हटा सकता है ? मित्रो०

नया रंग है नई जंग है,
नव विधान यह नव उमंग है।
सैनिक माँ के बड़े अनूठे,
बालक, बूढ़े औ, अपंग हैं॥ मित्रो०

रण में जा रणजीत बने वे,
धीर, वीर, गम्भीर बने वे।
जग के नवयुग के सैनिक बन,
माँ के सच्चे पूत बने वे॥ मित्रो०

रिपु आना चाहे आ जावे,
औ, हाहाकार मचा जावे।
पाई-पैसा तनिक न पावे,
जैसा आवे वैसा जावे॥ मित्रो०

राई-रत्ती चलै न उसकी,
करै खुशामद जिसकी तिसकी।
कोई बात सुनैना उसकी,
शान चले याँ किस पर किसकी॥ मित्रो०

सूने घर औ सूनी धरती,
मन में रिपु के डर है भरती।
भूखों मरतीं प्यासों मरतीं,
फौजें उसकी पीछे हटतीं॥ मित्रो०

कोई हाथ उठावे कैसे,
कोई जीभ चलावे कैसे?
कोई आँख दिखावे कैसे?
कोई ज्ञान जतावे कैसे॥ मित्रो०

सन्त हमारा सेनानी है,
हम उसके संयत सैनिक हैं।
न्याय-नीति औ, धर्म कर्म युत,
सत्पथ के सच्चे सैनिक हैं॥ मित्रो०

हमको अन्तर्मुख होना है,
अन्तर तर में सुख जोना है।
मन के कलुष मिटा कर हमको,
निश्चय हो निर्भय होना है॥ मित्रो०

हम निर्भय हो जग जीतेंगे,
अपना सरबस जग को देंगे।
जग से उसका सरबस लेंगे,
जग में नव जीवन भर देंगे॥ मित्रो०

मित्रो! चलो चलें हम रण में,
आहा! चलो चलें हम रण में।
किसके रण में? कैसे रण में?
कहाँ काहे चलें हम रण में॥ मित्रो०

माँ की आजादी के रण में,
पावन और अनूठे रण में।
सत का झण्डा फहराने को,
जग में नवजुग लाने को॥ मित्रो०

भगवान् की भाषा

[श्री किशोरीलाल मशरूवाला]

पात्र—१२-१३ बरस के बालक।

[स्थान पाठशाला के पास]

रामजी—क्यों भाई रहमान, आज सुबह तुम अपने अब्बाजान के पास बैठकर क्या पढ़ रहे थे? मैं तो उसकी कोई बात समझ ही नहीं पाया।

रहमान—मैं कुरानेशरीफ पढ़ रहा था भाई। तुम उसे क्योंकर समझते? बड़े-बड़े हाफिज भी तो उसे समझ नहीं पाते। वह तो सिर्फ पढ़ने की चीज है। वह खुदा की जबान में लिखी हुई है न।

रामजी—खुदा की जबान में? कैसी बात करते हो? भगवान् की भाषा तो संस्कृत है। उसी में हमारे वेद लिखे गये हैं। हमारे विद्वान् भी यही कहते हैं कि वेदों को कोई समझ नहीं सकता; वे तो सिर्फ पाठ करने की चीज हैं। तो क्या कुरान संस्कृत में है?

रहमान—यार, तुम पूरे गावदी मालूम होते हो। कुरानेशरीफ संस्कृत में कैसे हो सकता है? उसकी भाषा तो अरबी है।

रामजी—तो फिर वह खुदा की जबान क्यों कही जाती है? ईश्वर की भाषा तो संस्कृत है। सच है न, रुस्तम?

रुस्तम—तुम दोनों गलत कहते हो। खुदा की बोली तो वह है, जो हमारे दस्तूर बोलते हैं। उसे हम जन्द-अवस्था कहते हैं। खुदा का असली नाम तो अहुरमज्द है न? तुम्हारे शास्त्रों में उसका यह नाम कहीं मिलता भी है? वह तो हमारे शास्त्रों में ही मिलता है। उसीने तो वे लिखे हैं। क्यों भाई दावीद (डेविड) तुम्हारी क्या राय है?

दावीद—हम तो अपनी हिब्रू को ही यहोवा की जबान मानते हैं। अल्लाह ने पैगम्बर मूसा से लेकर इजाया तक इसी बोली में अपने पैगाम भेजे थे। खुद अल्लाह ने ही पैगम्बर मूसा के लिए कायदे लिख दिये थे और वे हिब्रू में ही लिखे गये थे। इसीसे साबित होता है कि खुदा की भाषा हिब्रू है।

रुस्तम—यह ठीक रही! हर आदमी अपने शास्त्र की भाषा को ही खुदा की भाषा कहता है। आखिर सच क्या है?

रामजी—तो भाई, इस में नुकसान भी क्या है? हम भी तो दो-दो, तीन-तीन भाषायें बोल लेते हैं। फिर भगवान को सभी भाषायें आती हों, तो इसमें अचरज ही क्या? वह हर एक देश के ऋषियों और पैगम्बरों के साथ

उन्हीं की बोली में बोला होगा।

रहमान—अगर सचमुच ऐसा है, तो फिर वह अल्लाह की जबान कैसे कही जा सकती है? तब तो वह उस-उस पैगम्बर की जबान हुई। लेकिन मैं तो कहता हूँ कि खुदा की जबान अरबी ही है।

दावीद—और मैं कहता हूं कि हिब्रू ही है। न मानो, तो आजाओ, इस सवाल को लेकर मैं तुममें से हर एक के साथ दो-दो हाथ करने को तैयार हूँ?

रुस्तम—तुम दो-दो हाथ कैसे करोगे?

दावीद—मैं तुममें से हर एक के साथ कुश्ती लड़ूंगा। अगर मैं सच कह रहा हूँ, तो यहोवा मेरी मदद करेंगे और मुझे जितादेंगे। अगर तुम सच होगे, तो तुम्हारी जीत होगी। यह तो इन्साफ की बात है न?

रामजी—भलेमानस, कुश्ती लड़ने से हमारे शरीर के बल का निर्णय होगा। भगवान की भाषा का निर्णय कैसे हो सकेगा?

दावीद—तो फिर तुम्हीं बताओ कि इसका फैसला कैसे किया जाय?

रामजी—मेरी सलाह तो यह है कि हम अपनी बस्ती के बाहर रहने वाले दिलखुश बाबा के पास जायें और उनसे पूछें। मैं सुना है कि वे भगवान से मिले हैं।

रहमान—भगवान से मिले हैं! रहने भी दो यार, अल्लाहमियाँ तो सातवें आसमान के भी उस पार रहते हैं, उनसे कोई कैसे मिल सकता है?

रुस्तम—नहीं नहीं, रामजी ठीक कह रहा है। परवरदिगार तो जिससे चाहे उससे मिल सकता है। उसके लिए मुश्किल क्या है? अगर ऐसा न होता तो वह पैगम्बरों से क्योंकर मिलता?

रहमान—तो क्या हम उनसे पूछें? सब की यही राय है?

दावीद—हाँ, मेरी भी यही राय है।

रहमान—तो फिर चलो।

पात्र—उक्त बालक और दिलखुश बाबा।

[स्थान—गाँव के बाहर एक पेड़ तले की झोंपड़ी।]

रामजी—पायलागी, बाबाजी!

रहमान—बन्दगी, फकीर साहब!

दावीद—सलाम, बाबाजी!

रुस्तम—सलाम, दरवेश साहब!

बाबा—आओ, बच्चो, आओ! आज तुम यहाँ कैसे भूले पड़गये? क्या खेलकूद से जी ऊब गया?

(लड़के शरमाते हैं। एक-दूसरे इशारों में कहते हैं: पूछो! आखिर रुस्तम हिम्मत करता है।)

रुस्तम—दरवेश जी हम लोगों में एक झगड़ा खड़ा हो गया है। हम आपसे उसका फैसला कराने आये हैं। हमने सुना है, आपने

खुदा को देखा है। क्या यह सच है ?

बाबा- भाई, इसका जवाब देना तो मुश्किल है 'हाँ' कहूं तो भी ठीक नहीं, 'ना' कहूँ तो भी ठीक नहीं। लेकिन यह तो बताओ कि तुम्हें इसकी जरूरत क्यों हुई ?

रुस्तम—अच्छी बात है; न कह सकें, न कहियो लेकिन हम यह जानना चाहते हैं कि क्या आप ईश्वर की आवाज को सुन सकते हैं ?

बाबा हाँ, तुम्हारा यह सवाल कुछ आसान है। उसकी आवाज मैंने जरूर सुनी है। उसे सुनकर ही तो मैं उसके पीछे पड़ा हूँ।

चारों--(एक साथ) सचमुच ! आपने ईश्वर की आवाज सुनी है ?

बाबा हाँ भाई, सुनी है। झूठ क्यों कहूं ?

रुस्तम--तब तो हमारा झगड़ा मिट जायगा। हमारे झगड़े का मुद्दा ही यह है। यह रामजी कहता है कि खुदा की भाषा संस्कृत है। रहमान कहता है कि अरबी है और दावीद कहता है हिब्रू है। लेकिन हम पारसी तो यह मानते हैं कि दादा अहुरमज़्द की भाषा जन्द है। अब आप बताइये कि हममें से किसकी बात सच है ?

बाबा इनमें से एक भी भगवान की भाषा नहीं।

रामजी--जी हाँ, बाबा जी, मैं भी यही कहता हूँ कि भगवान को सभी भाषायें आती हैं और वह हर एक के साथ उसकी भाषा में बोलता है। उसकी अपनी भाषा तो अलग ही होगी।

बाबा—यह भी गलत है।

दावीद--गलत है ? तो क्या खुदा गूंगा है ? क्या उसने मूसा के साथ और दूसरे पैगम्बरों के साथ बात नहीं की ?

बाबा--सुनो बच्चो ! भगवान् कण्ठ और जीभ से निकलने वाली और कान से सुनी जाने वाली किसी आवाज में बात नहीं करता। उसकी भाषा एक ऐसी भाषा है, जिसमें आवाज नहीं होती।

रामजी--बाबा जी, यह कैसी बात है ? क्या वह गूंगों की तरह इशारे से अपनी बात समझाता है ? हमने तो कभी सुनी नहीं !

बाबा—तुमने जरूर सुनी है, बेटा ! कहो देखें, मेरे पास आने की बात तुम्हें कैसे सूझी ?

रामजी--हमने आपको देखा था, इसलिये मनमें विचार आया कि चलो, आप ही से पूछलें।

बाबा—सच है, लेकिन तुम किसी और के पास क्यों नहीं गये ?

रहमान—बाबा, आप खुदा के बन्दे हैं, इसलिये हमने सोचा कि आपसे पूछना ही

ठीक होगा।

बाबा—यह जो तुमने सोचा, सो किस भाषा में सोचा? संस्कृत में, अरबी में, हिब्रू में, जन्द में या किसी पाँचवी ही भाषा में?

रामजी जी···मन में जो ख्याल··· उठा···सो···तो···ऐसे ही उठा। फिर हमने उसे अपनी भाषा में समझ लिया

बाबा बस, इसी तरह भगवान अपनी आवाज सुनाता है? उसकी बात पहले दिल में उठती है, और जिसके दिल में उठती है, वह उसे अपनी कम बुद्धि के अनुसार अपनी ही भाषा में समझ लेता है। पैगम्बरों ने भी यही किया था। उनके हृदय में भी ईश्वर की बातें उठीं, और उन्हों ने, अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार उनको अपनी—अपनी भाषाओं में प्रकट किया भगवान ने किसीको किसी मनुष्य की भाषा में ये बातें कही नहीं थी।

(*बालक विचार में डूब जाते हैं। थोड़ी देर बाद*)

दावीद—अच्छा, तो एक बात बताइये। आप खुदा की आवाज को सुनकर उसका मतलब किस भाषा में समझते हैं?

बाबा—जिसमें तुम से बात कर रहा हूँ। भाषा वही है, जिसे हम सब समझते हैं।

(गुजराती 'शिक्षण अने साहित्य' से)

दावीद तो पैगम्बर क्या अलग २ भाषाओं में समझे?

बाबा वे जिस जमाने में और जिन लोगों के बीच रहते थे उनकी रात दिन की जो बोलियाँ या भाषायें थीं उन्हीं में उन्होंने अपनी बातें प्रकट की थीं। अगर आज मूसा, महम्मद या दूसरे पैगम्बर और ऋषि वगैरा इस दुनिया में हों तो वे आज ही की किसी भाषा में ईश्वर की आवाजों को समझलेंगे। हिब्रू संस्कृत वगैरा में नहीं।

रामजी बहुत अच्छा बाबा! पायलागी मैं अपने गुरु जी से पूछूंगा।

रहमान मैं भी अपने मौलवी साहब से पूछूंगा बन्दगी, बाबा!

दावीद मैं भी अपने रब्बी से पूछूंगा! सलाम!

रुस्तम—मेरा दिल तो कहता है कि आपने बिलकुल सच बात कही है मैं किसी से कुछ न पूछूंगा जब एक बात हमारे दिल में साफ हो जाती है तो फिर दूसरों से क्यों पूछा जाय? हम लोगों ने आपको तकलीफ दी। हमें माफ कीजियेगा. बाबा जी सलाम!

बाबा सच है बेटा!

दिल साफ हुआ फिर क्यों पूछे?

(सब जाते हैं)

—अनु० काशीनाथ त्रिवेदी

दीपक के प्रकाश में—

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली का प्रकाशन—

१. रूमी की कहानियाँ—लेखक—रूमी; अनुवादक—प्रो० शिवनाथसिंह शाण्डिल्य, मूल्य ॥)—महाकवि मौ० जलालुद्दीन रूमी फारस के बहुत प्रसिद्ध लेखक थे जिनके सुविख्यात ग्रन्थ 'मसनवी' की, जो फारसी साहित्य का अनूठा ग्रन्थ है, गणना संसार की श्रेष्ठ पुस्तकों में की जाती है। इसमें कथाओं, आख्यानों द्वारा भक्ति, वैराग्य नीति आदि आध्यात्मिक ज्ञानपूर्ण उपदेश बड़े प्रभावपूर्ण ढङ्ग से दिए हैं! अनुवादक ने इसकी कुछ चुनी हुई सुन्दर कहानियाँ सरल भाषा तथा रोचक ढङ्ग से दी हैं। इनमें गूढ रहस्य तथा महान् शिक्षा निहित है।

२. उपनिषदों की कथाएँ—ले० श्री शङ्करदेव मूल्य ।)—हमारा उपनिषद् साहित्य आध्यात्मिक ज्ञान का अनुपम भण्डार है जिसमें ऋषियों, विद्वानों ने अपने अध्ययन-मनन व साधना द्वारा प्राप्त अनुभव का सार छोटी कथाओं व आख्याओं द्वारा देकर जीवन के गूढ तत्वों पर प्रकाश डाला है। मराठी में लिखी ऐसी ही शिक्षाप्रद १० छोटी कथाओं का यह हिन्दी-अनुवाद है। बच्चों की इन सरल कहानियों में बड़ों के लिए भी अमूल्य उपदेश हैं।

३. पशुओं का इलाज—ले० परमेश्वरीदास गुप्त, मू० ॥)—भारत जैसे कृषि प्रधान देश का सबसे बड़ा धन वे पशु हैं जिन पर करोड़ों लोगों के निर्वाह का आधार कृषि निर्भर है। किन्तु इनकी यहाँ शोचनीय दशा है। पशु-चिकित्सा का देश में अभाव-सा ही है। पुराने ढंग के पशु-चिकित्सा विशेषज्ञ देहातियों की दिन-दिन कमी होती जा रही है और नये सरकारी पशु-अस्पतालों की संख्या बहुत कम है। ऐसी स्थिति में ग्रामीणों को जितना अधिक पशु-चिकित्सा साहित्य दिया जावे उतना ही अच्छा है। प्रस्तुत पुस्तक में पशु रोगों के लिए नुसखे, सस्ती घर-गाँव में मिलने वाली दवाइयाँ, रोग की पहचान, विविध दवाइयाँ आदि उपयोगी सामग्री सरल भाषा में दी है जिससे साधारण पढे किसान भी लाभ उठा सकते हैं।

४. जीवन साहित्य (स्मृति-अङ्क)—सम्पादक—श्री हरिभाऊ उपाध्याय, वा० मू० १॥), इस अङ्क का ॥)—स्व० सेठ जमनालाल बजाज की स्मृति में प्रकाशित इस अङ्क में श्री राजेन्द्र बाबू, म० देसाई, अमृत कुँवर, काका साहेब, जाजू जी, गजाजी, वियाणीजी, मुंशी जी, मश्रुवाला, घ० दा० बिड़ला, रामनाथ 'सुमन' आदि देश के लगभग ४ दजन खरे तपे नायकों, सेवकों व विद्वानों ने सेठ जी के सम्पर्क में आई अपनी जीवन-स्मृतियाँ लिखी हैं जिनमें उनकी उदारता, जन-सेवा, देश-भक्ति, त्याग-भावना, वीरता, कर्मण्यता, पवित्रता, दयालुता आदि उन अलौकिक गुणों का उल्लेख किया है जिन्हें हम आज किसी एक नेता में ढूंढ़ें नहीं पायेंगे। किन्तु उनके इन गुणों तथा महान् व्यक्तित्व का ज्ञान, उनके गाढे सम्पर्क में आये चन्द व्यक्तियों के अलावा देश वासियों को न था। 'जीवन साहित्य' ने यह जीवन-दायक अमूल्य सामग्री भेंट कर देश वासियों को इस नररत्न के जीवन से बहुत कुछ सीखने, ऊँचा उठने का साधन प्रदान किया है।

विश्ववाणी (बौद्ध स्मृति-अङ्क) सं०—श्री विश्वम्भरनाथ; इस अङ्क की सम्पादिका—श्री महादेवी वर्मा, वा० मू० ६), इस अङ्क का १), पता—विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, प्रयाग। यह पत्र संसार के विभिन्न धर्मों व संस्कृतियों का समन्वय तथा विश्लेषण कर उनकी सभी अच्छाइयों को जनता के सामने रख, एक-दूसरे के समीप लाने का प्रशंसनीय प्रयत्न कर रहा है। इसके कई संस्कृति-अङ्क साहित्य की अनूठी चीज हैं। प्रस्तुत अङ्क में बौद्ध धर्म, संस्कृति, साहित्य, विचारधारा, नीति, दार्शनिकता, कला, वर्ण-व्यवस्था आदि विषयों पर अधिकारी लेखकों व बौद्ध धर्म के धुरन्धर विद्वानों के लेख, बुद्ध वाणी, विभिन्न देशों व जातियों में बौद्ध धर्म की अवस्था आदि सामग्री संग्रहीत है। अङ्क बहुत उपयोगी तथा पठनीय है।

इलाके की हलचल

—जाट विद्यालय, सङ्गरिया के जयन्ती-मेले अर्थात् पिछले २५ वर्ष के काम और आगे की योजनाओं का दिग्दर्शन कराने के लिए होने वाले उत्सव की तिथियाँ २७-२८ जून निश्चित हुई थीं। किन्तु सङ्गरिया जैसे स्थान के लिए ये तिथियाँ अनुकूल न होने के कारण अब यह उत्सव अक्टूबर में किसी समय होगा। ठीक तारीखें अभी निश्चित नहीं हुईं। इस अवसर पर शिक्षा सम्मेलन, भूतपूर्व विद्यार्थी सम्मेलन, उद्घाटन समारोह, विद्यार्थियों के खेल व व्यायाम-प्रदर्शन; पुराने विद्यार्थियों का सहभोज, वृहद् यज्ञ तथा अबोहर प्रान्तीय ग्राम-सुधार पञ्चायत की बैठक भी होगी। बड़े-बड़े विद्वान्, शिक्षा शास्त्री, नेता तथा भजनोपदेशक इस अवसर पर पधारेंगे।

— मिचनाबाद (बहावलनगर) में श्री पं० सागरमल तथा श्री गोविन्दशरण योगी आदि के प्रयत्न से श्री हरि कीर्तन सभा में हिन्दी पाठशाला, धर्मार्थ औषधालय तथा हिन्दी पुस्तकालय आदि उपयोगी कार्य आरम्भ हो गए हैं जिनसे जनता पूरा-पूरा लाभ उठा रही है इन सज्जनों के हृदय में जन-सेवा की सच्ची लगन है तथा इनकी इच्छा है कि वे इस संस्था द्वारा सर्व साधारण को अधिक से अधिक लाभ पहुँचावें।

— गाँव तालिया (बहावलनगर) के चौ० रामराव व उनके भतीजे चौ० चुन्नीलाल ने अपने खर्च से गाँव में हिन्दी पाठशाला खोल रखी है जिसमें गरीब अमीर सभी के लड़के मुफ्त पढ़ते हैं। इस पाठशाला के लिए इन्हें हिंदी की अच्छी योग्यता रखने वाले ऐसे अध्यापक की आवश्यकता है जो वैद्यक की भी कुछ जानकारी रखता हो अथवा इस काम में जिसे रुचि हो ताकि वे अपने खर्च से एक औषधालय भी सर्वसाधारण के लिए खोलें।

—डूंगाबूंगा के प्रसिद्ध वैद्य तथा साहित्य प्रेमी श्री रामस्वरूप जी चलता पुस्तकालय, साहित्य सदन, अबोहर की ब्रांच डूंगाबूंगा में खोलना चाहते हैं ताकि डूंगाबूंगा व आस-पास की जनता को उपयोगी पुस्तकें अधिक संख्या में पढ़ने को मिल सकें। वे इस इलाके के दूसरे लोगों से भी सहयोग चाहते हैं।

— नूसर (बहावलनगर) के चौ० रामकरण जी अपने यहाँ 'शिक्षा-मन्दिर' नाम की ऐसी संस्था खोलने का प्रबन्ध कर रहे हैं कि जिसमें हिन्दी का योग्य अध्यापक रहे जो बालकों को हिन्दी भी पढ़ाए और आस-पास के गाँवों में शिक्षा तथा समाज सुधार के लिए प्रचार भी करे। इस काम में उन्हें अपने इलाके के प्रसिद्ध व सुधारवादी जमींदार चौ० हरिश्चन्द्र ढाका और उत्साही कार्यकर्त्ता चौ० अर्जुनराम कड़वासरा का सहयोग प्राप्त है।

—गाँव जण्डवाला (बहावलनगर) के बदीराम भड़भूजे को स्वाध्याय का बड़ा प्रेम है। वह साधारण पढ़ा हुआ और बड़ी गरीबी में रहते हुए भी चलता-पुस्तकालय की 'गांधी विचार दोहन', 'स्वदेशी और ग्रामोद्योग' जैसी गांधी जी की उच्च कोटि की पुस्तकें पढ़ता है और दूसरों को भी सुनाता है। इसका यह स्वाध्याय प्रेम सराहनीय है।

—गाँव साबूआना (फाज़िलका) में पिछले दिनों एक घर में हुक्का पीने के लिए दाबी आग के तेज हवा से भड़कने से घर में आग लग गई और घर का सारा का सारा सामान—अनाज, कपड़े, चारपाई आदि जल कर राख हो गया। घर में एक भी चीज ऐसी न रही कि जो काम आ सके। हुक्के की बदौलत बरबाद हुए इस घर के मालिक को गाँव वालों ने इकट्ठा करके सात मन अनाज तथा कपड़े, चारपाई आदि जरूरी सामान दिया, तब उस हुक्का भक्त के कुटुम्ब की रक्षा हुई।

सम्पादकीय नोट--

अकाल पीड़ितों की जीवनदाता खादी—

हिसार जिले में लगातार अकाल पड़ते रहने से वहां के प्राणियों को घोर विपत्ति का सामना करना पड़ रहा है। कांग्रेस, सरकारी, गैर सरकारी संस्थाएँ—सभी की ओर से इन अकाल पीड़ितों की रक्षार्थ प्रयत्न किए गए किन्तु दान या सहायता के सहारे इन लाखों मनुष्यों व पशुओं का वर्षों के भीषण अकाल से बचाव कैसे हो सकता है! कोई दान या सहायता दे भी तो कब तक और कितनी! अकाल के समय वर्षा के बिना वहां कोई फसल हो नहीं सकती। अतः वहां की अधिकांश जनता बेकार, भूखी मरती है। यदि उस समय इन बेकारों को कोई ऐसा धन्धा मिल जावे कि जिसे वे अपने घर बैठे ही, बिना पूंजी खर्च किए कर सकें और अपना पेट निकालें तो उनके लिए यह सहायता लाखों के दान से भी श्रेष्ठ है। वर्षों के लम्बे अनुभव तथा गहरी खोज के बाद यह सिद्ध हो गया है कि ग्रामीणों के लिए ऐसा घरेलू धन्धा एक मात्र चर्खा तथा धुनना, बुनाई आदि खादी सम्बन्धी अन्य कार्य हैं। अ० भा० चर्खा सङ्घ ने हिसार के अकाल पीड़ितों की सहायतार्थ इन्हीं धन्धों को चालू किया है। उसका कितना सुन्दर परिणाम निकला है, नीचे के आंकड़ों से इसका अनुमान लगाइये:—

गत जनवरी, फरवरी, मार्च मास में हिसार में खादी केन्द्रों की संख्या क्रमशः ८, १२ और १३ थी जिनमें इन तीन मास में २०४२, ४५८८ तथा ५९१४ कत्तिनों को क्रमशः ३२१३), ६९३) तथा १२९१) रुपये, १४८, २२३ तथा २७४ धुनने वालों को क्रमशः ८५५), १६५७) तथा ७५९३), और ३०८, ३६० व ५६३ जुलाहों को क्रमशः ३५४), ७२३) तथा ८८९) मजदूरी मिली। इस प्रकार तीन मास में ६७७१ कारीगरों को कुल २१६२८) मजदूरी दी गई तथा ३८०४२) का सूत खरीदा गया। यह है खादी की करामात कि जो कुछ रुपया मजदूरी में दिया गया उससे अधिक रुपये का सूत तैयार हो गया तथा हजारों असहायों का पोषण हुआ सो अलग। न उन्हें अपने बाल-बच्चों व घर को छोड़ दूर जाना पड़ा और न किसी की नौकरी या गुलामी करनी पड़ी। यदि धनी दान देने के बजाय ऐसे उद्योग-धन्धों को सहायता दें जिससे अधिक से अधिक गरीबों को काम मिले तथा जनता इन गरीबों द्वारा तैयार की खादी अधिकाधिक खरीदे तो अकेली खादी सब अकाल पीड़ितों की रक्षा कर सकती है।

यह उजड्डपन कब तक

किसी जाति के सामाजिक रस्मो रिवाज देखने से पता लग जाता है कि वह जाति कितना सभ्य, शिक्षित तथा उन्नत है। आज देश की जिन जातियों में शिक्षा का अधिक प्रचार हो गया, उन्होंने अपने रस्म रिवाजों में से पुरानी, भद्दी प्रथाएँ, बेहूदगियों तथा जङ्गलीपन को हटाकर उन्हें अपनी उन्नति तथा ऊँचे उठने का साधन बना लिया है। किन्तु पिछड़ी हुई जातियों में आज भी सामाजिक रस्मों रिवाजों में बड़ी उजड्डपन बेहूदगी तथा जहालत की निशानी मौजूद है जिससे ये रस्मो रिवाज उनकी बरबादी का कारण बन रहे हैं। अबोहर के आस-पास बसी हुई उस बागड़ी जाति ने, जो अपने निकास बागड़ (बीकानेर की मरुभूमि) से पुरानी सामाजिक कुरीतियां अपने साथ लाई, इस इलाके से और बहुत सी नाशकारी कुप्रथाएँ पकड़ ली हैं। अतः यह जाति विद्या, बुद्धि, साहस, नैतिकता आदि में बहुत पिछड़ी हुई है। पिछले दिनों इसी इलाके के एक गांव में एक ही दिन कई शादियां थीं। उस अवसर पर लोगों ने बेहद शराब पी कर, गांव में जो वहशीपन व अनाचार फैलाया उसे देख कर ऐसा लगा कि यह जाति अभी भी बरबादी की ओर जा रही है। अपनी उन्नति

करना, शिक्षा-प्रचार तथा ऊँचा उठने, पशु-वृत्ति छोड़ मनुष्य बनने का इन्हें अब तक ख्याल तक नहीं हुआ। उस गाँव के तथा शादी में बाहर से आए वे लोग जो गाँव के नम्बरदार, बड़े प्रतिष्ठित, सम्पन्न व इज्जत वाले माने जाते हैं, उन लोगों ने खूब शराब पी-पी कर रात को अपने ही सम्बन्धियों व भले घर की स्त्रियों को तङ्ग करने, आपस में बेहूदा बकने व लड़ाई-झगड़े करने की जो खुराफात मचाई, उसे देख कर लज्जा भी लजाती है और ख्याल होता है कि जिस जाति के ऐसे अनाचारी रहनुमा हों, अगुवा हों—मान व सत्कार के योग्य माने जावें—उसका भविष्य तो अन्धकार में ही है। अतः बागड़ी जाति के समझदार, सभ्य व उन्नतिशील विचारों के लोगों से हमारा आग्रह है कि यदि वे चाहते हैं कि उनकी जाति भी उठे, सभ्य और शिक्षित बने, सब प्रकार से उन्नति करे, तो उन्हें लोगों का तीव्र विरोध सहकर, कठिनाइयाँ झेल कर भी ऐसे अनाचारियों की इन हरकतों को रोकना चाहिए। इन कार्यों में बड़े धैर्य, समय तथा परिश्रम की आवश्यकता है। आशा है बागड़ी जाति अपने इस कलङ्क को जल्द से जल्द दूर करने का भरपूर प्रयत्न करेगी।

इन्कम टैक्स फार्म व हिन्दी—

पञ्जाब सरकार के लगभग सभी महकमों से हिन्दी बहिष्कृत सी ही है। प्रांत के हिन्दी भाषियों को सरकार की यह नीति बहुत खटकती है और उनको अब अपनी मातृभाषा का यह अनादर असह्य होने लगा है। अतः हिन्दी को सरकारी महकमों में स्थान दिलाने के लिए प्रयत्न आरम्भ हो गया है। नगर हितकारिणी सभा, भिवानी के उत्साही कार्यकर्त्ताओं ने हिन्दी को इन्कम टैक्स विभाग में स्थान दिलाने का एक ऐसा ही स्तुत्य प्रयत्न किया है जिसमें उन्हें सफलता मिली है।

पञ्जाब के अधिकांश बड़े-बड़े शहरों, छावनियों व मण्डियों का बहुत सा व्यापार उन हरियाणा प्रान्तीय तथा मारवाड़ी समाज के लोगों के हाथ में है जिनकी मातृभाषा खड़ी बोली या राजस्थानी हिन्दी है। इनमें से लगभग सभी इन्कम टैक्स के रूप में प्रति वर्ष बहुत सा रुपया सरकार को देते हैं, किन्तु इन्कम टैक्स के जो फार्म इन्हें प्रति वर्ष भरने पड़ते हैं, वे उर्दू में छपे होने से उन्हें इनके भरने में बड़ी कठिनाई होती है। कई-कई को तो उर्दू पढ़े व्यक्तियों से ये फार्म भरवाने में २-२ ३-३ रुपये तक देने पड़ते हैं। सरकार, शिक्षा-विभाग आदि जिन महकमों में जनता के लिए खर्च करती है उनमें तो भाषा सम्बन्धी सुविधा तथा किफायतशारी की बात कहे तो कहे, किन्तु जिन विभागों द्वारा जनता से रुपया वसूल ही वसूल करना है, उनमें तो भाषादि के सम्बन्ध में कर-दाताओं की सुविधा का वह सर्व प्रथम ध्यान रखे। पञ्जाब में बड़ी संख्या में इन्कम टैक्स देने वाले हिन्दी भाषी होते हुए भी इन्कम टैक्स विभाग ने हिन्दी को अपने यहाँ स्थान ही नहीं दिया। इस बात की ओर नगर हितकारिणी सभा, भिवानी द्वारा इन्कम टैक्स कमिश्नर लाहौर तथा इन्कम टैक्स विभाग के केन्द्रीय कार्यालय, देहली का ध्यान खींचा गया तथा उन्हें प्रबल प्रमाण देते हुए लिखा कि वे इन्कम टैक्स के 'रिटर्न फार्म' हिन्दी में भी छपवाएँ ताकि टैक्स देने वाला जो व्यक्ति उर्दू नहीं जानता उसे फार्म भरने में कठिनाई न हो। इन्कम टैक्स विभाग को इस न्यायोचित माँग के सामने झुकना पड़ा और इन्कम टैक्स कमिश्नर पञ्जाब, सीमान्त व देहली ने लाहौर से अपने १० नवम्बर १९४', संख्या ७२३३ के पत्र में लिखा कि जो लोग अपने इन्कम टैक्स फार्म हिन्दी में भर कर भेजना चाहते हैं उनके लिए अगले वर्ष से हिन्दी में छपे 'रिटर्न फार्म' भेजने का प्रबन्ध कर दिया जावेगा। अब अगला वर्ष शुरू है अतः उन सब हिन्दी भाषियों को, जो इन्कम टैक्स देते हैं, चाहिए कि इस वर्ष हिन्दी के ही इन्कम टैक्स फार्म मँगाएँ तथा भरें और अधिक से अधिक लोगों को हिन्दी के ही फार्म मँगा कर भरने की प्रेरणा करें। यदि इन्कम टैक्स विभाग की ओर से माँग करने पर भी उन्हें हिन्दी के इन्कम टैक्स फार्म न भेजे जावें तो उसकी सूचना हमें भेजें ताकि फिर इनके लिए आन्दोलन किया जावे।

सस्ता साहित्य मण्डल

नये प्रकाशन

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

तीस दिन : मालवीयजी के साथ

पं० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संकलित महामना मालवीयजी के जीवन की झाँकियाँ। पृष्ठ ३५५ सचित्र : सादी १॥); एंटीक कागज सजिल्द २)

भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन

श्री रामनारायण यादवेन्दु ने इस पुस्तक में भारतीय संस्कृति के प्राचीन और अर्वाचीन स्वरूपों पर प्रकाश डाला है और हमारे नागरिक-जीवन का विवेचन करते हुए उसके अभावों और आवश्यकताओं को व्यक्त किया है। पृष्ठ ३३४, मूल्य १)

युद्ध और अहिंसा

महात्मा गाँधी के युद्ध और अहिंसा-सम्बन्धी लेख। पृष्ठ २२०, मूल्य ॥)

अहिंसा-विवेचन

श्री किशोरलाल मशरूवाला द्वारा अहिंसा का व्यावहारिक विवेचन। पृष्ठ ११८, मू० ॥)

महावीर वाणी

महावीर स्वामी के वचनों का प्रामाणिक सटीक संग्रह। पृष्ठ १८८; १), १॥)

लड़खड़ाती दुनिया
(नवीन परिवर्द्धित संस्करण)

पं० जवाहरलाल नेहरू के वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय और भावी विश्व-व्यवस्था सम्बन्धी लेखों का संग्रह। सचित्र, पृष्ठ २१०, मूल्य ॥=)

मेरी हिमाकत

श्री वियोगी हरि के व्यङ्ग्यात्मक लेखों का संग्रह; पृष्ठ ११९; मूल्य ॥)

रचनात्मक कार्य-क्रम

गाँधीजी द्वारा रचनात्मक कार्यक्रम की रूपरेखा। पृष्ठ २२, मूल्य =)

रचनात्मक कार्य-क्रम : कुछ सुझाव

श्री राजेन्द्रबाबू द्वारा गाँधीजी की पुस्तिका की पूरक व्याख्या। पृष्ठ ३२ मूल्य ≡)

रूमी की कहानियाँ

महाकवि मौलाना रूमी की दार्शनिक कहानियों का हिन्दी रूपान्तर अनुवादक—चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य पृष्ठ १०२; मूल्य ॥)

बीरबल की कहानियाँ

बीरबल की मनोरञ्जक कहानियों का संग्रह। पृष्ठ २१ : मूल्य =)

भजनावली

श्री वियोगी हरि द्वारा सुप्रसिद्ध "आश्रम-भजनावली" के ढङ्ग पर सङ्कलित तथा सम्पादित हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के गेय भजनों का संग्रह। मूल्य ≡)

मन्दिर

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' के एकाँकी नाटक। 'हिन्दी मन्दिर'—प्रकाशन। पृष्ठ १३१, मूल्य ॥)

—शीघ्रातिशीघ्र आर्डर दीजिए—

DEEPAK Regd. No. L. 3760

हमारा सरल और सुबोध प्रकाशन

सरल स्वास्थ्य साधन नियमित तथा संयत आहार-विहार द्वारा समस्त रोगों का अचूक इलाज हो सकता है, इस कथन पर शायद आपको विश्वास न हो। तब एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। एक बार केवल १॥) रुपया खर्च कर दवाइयों पर खर्च होने वाले सैंकड़ों रुपये बचाइये और अपने बहुमूल्य स्वास्थ्य का बीमा करा लीजिये। हमारा विश्वास है कि इस पुस्तक में प्रतिपादित नियमों का पालन करने पर आपको कभी डाक्टर या वैद्य की जरूरत न पड़ेगी। अपने विषय के विशेषज्ञ विद्वान् द्वारा लिखित ३० चित्रों से युक्त २५९ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १॥) है।

शिक्षा में नई दृष्टि शिक्षा-संसार में यह पुस्तक अपने ढङ्ग की अकेली है। नवीन मनोविज्ञान तथा नई शिक्षा के सिद्धान्तों का विशद् विवेचन एक सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री की कलम से प्रस्तुत इस पुस्तक में पढ़ें। मां बाप, शिक्षक तथा प्रत्येक बाल हितैषी की यह पथ-प्रदर्शिका है। सिर्फ आठ आने में इसे खरीद कर अपने बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बनाइये।

आज का जापान—वर्तमान विश्वयुद्ध में जापान का महत्वपूर्ण स्थान है। उसकी आंतरिक विशेषताओं तथा दुनिया को चकाचौंध करने वाली आकस्मिक उन्नति का रहस्य बताने वाली यह बिलकुल सामयिक वस्तु है। सचित्र, मूल्य केवल १) रुपया।

ग्रामसुधार नाटक ग्रामों में फैली हुई कुरीतियां, अन्धविश्वास और अत्याचार पीड़ित किसानों की दुर्दशा का नग्न चित्र इस पुस्तक में पढ़िये। मूल्य ।=) मात्र।

बाल गीत भावी राष्ट्र के निर्माता बालकों में स्वातन्त्र्य-प्रेम और निर्भीकता का सञ्चार करने वाली इस पुस्तिका को अपने बच्चों के हाथ में अवश्य दीजिये। मूल्य केवल ॥)

विश्वधाय गोपालन के ऊपर एक विशेषज्ञ की लिखी हुई यह अत्यन्त उपयोगी तथा सचित्र पुस्तक है। मूल्य केवल ।)

ईसप-नीति-निकुंज महर्षि ईसप की नीति की ६१ शिक्षाप्रद, मनोरञ्जक कहानियों का सुन्दर पद्यमय अनुवाद। मूल्य ॥)

बाल-गोपाल – संयुक्त अक्षरों से रहित सरस कविताओं का एक अनूठा बालोपयोगी संग्रह मू० =)॥

बलिदान (एकांकी नाटक) — भारतीय स्त्री-समाज पर होने वाले रोमांचकारी अत्याचारों की झांकी इस नाटक में देखिये। मूल्य –)॥

मिलने का पताः—प्रबन्धक—साहित्य सदन, अबोहर।

मुद्रक एवं प्रकाशक श्री कुलभूषण द्वारा 'दीपक प्रेस' साहित्य सदन अबोहर पञ्जाब से प्रकाशित।

पञ्जाब, यू०पी०, सी०पी०, बिहार, बंबई, उड़ीसा, सिंध, कोटा, बड़ौदा, बीकानेर, जम्मू व काश्मीर राज्य के शिक्षा-विभागों द्वारा स्वीकृत।

दीपक

[सर्व साधारण में जीवनज्योति जगाने वाला मासिक पत्र]

वर्ष ७ वाँ
अङ्क ६ ठा

सम्पादक
तेगराम

अप्रेल
१९४२

दीपक—वर्ष ७, संख्या ६, अप्रेल १९४२ ई०

'दीपक' के नियम

१—'दीपक' हर अंग्रेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२—'दीपक' का वार्षिक मूल्य डाक व्यय व विशेषांक सहित केवल २॥) है। एक प्रति ४ आने, विदेश से ७)।

३—'दीपक' में प्रकाशनार्थ लिखे जाने वाले लेख अधूरे न हों, पृष्ठ के एक ओर ही संशोधन के लिये इधर उधर जगह छोड़ कर सफाई से लिखे हों, विस्तार में चार पृष्ठ से अधिक न हों। भाषा उसकी सरल व शैली रोचक हो जिससे साधारण योग्यता वाले व्यक्ति भी जिनके हितार्थ 'दीपक' प्रकाशित हुआ है, उन्हें पढ़ व समझ सकें।

४—'दीपक' का मुख्य उद्देश्य **ग्राम-सुधार, समाज-उत्थान, शिक्षा व राष्ट्र-भाषा-प्रचार** द्वारा जनता-जनार्दनमें जीवन-जागृति पैदा करना है। अतः धार्मिक ईर्ष्या, साम्प्रदायिक विद्वेष पूर्ण उपरोक्त उद्देश्य के विपरीत कोई लेख न छप सकेगा।

५—लेख घटाने-बढ़ाने, संशोधन करने तथा प्रकाशित करने या न करने का अधिकार संपादक को होगा।

६—'दीपक' के ग्राहकों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा पता और ग्राहक नम्बर साफ अक्षरों में लिखना चाहिये, अन्यथा जवाब देर से मिलेगा। १ मास से कम समयके लिये पता बदलवाने के लिये डाकखानेसे प्रबंध करें।

७—अस्वीकृत लेख डाक खर्च भेजने पर ही लौटाये जा सकेंगे अन्यथा नहीं।

८—जिन सज्जनों को किसी मास का 'दीपक' न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछ ताछ करके बाद में हमारे पास लिखना चाहिये।

६—लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक व मूल्य तथा प्रवन्ध विषयक पत्र मैनेजर 'दीपक' के पते से और परीक्षा सम्बन्धी लेख व पत्र श्री चन्द्रकान्त शास्त्री श्रीराम निकेतन मुलतान-सिटी के पते से आने चाहियें।

स्तंभ—सूची

कृपालु लेखक-लेखिकाओं से नम्र निवेदन है कि वे 'दीपक' के लिये कुछ लिखने से पहिले एक बार हमारे स्तंभों की सूची देख लें। इन स्तंभों के अतिरिक्त भाव-पूर्ण किन्तु सात्विक कविता और कहानियों के लिये भी 'दीपक' के कुछ पृष्ठ 'रिज़र्व' हैं सरल भाषा में लिखे गये व्यवहारिक लेख 'दीपक' के श्रद्धापात्र होंगे।

Approved for use in Schools in the Punjab, U.,P., C.,P.. Bihar, Bombay, Orissa, Sindh, Kotah, Baroda, Bikaner & J & K. States.

[हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन; प्रयाग की सम्पत्ति तथा पञ्जाब में राष्ट्रभाषा प्रचार करने वाली प्रमुख सँस्था—
साहित्य सदन, अबोहर का मुखपत्र]

सत्यम् :: शिवम् :: सुन्दरम्

सम्पादक—तेगराम

चैत्र १९९९ | वर्ष ७, सँख्या ६ पूर्ण सँख्या ७८ | अप्रेल १९४२

हमारे चरित्र-बल की कमी

एक बार हमें अकपट चित्त और सरल भावसे इस बातको स्वीकार करने में क्या दोष है कि अभी भी हम लोगोंमें चरित्र-बल पैदा नहीं हुआ है? हम दलबन्दी, ईर्ष्या और क्षुद्रताके शिकार हैं। हम एकत्र नहीं हो सकते, हम परस्पर विश्वास नहीं करते और आप लोगोमें से किसीका नेतृत्व हम स्वीकार करना नहीं चाहते। हम लोगों के बहुत बडे अनुष्ठान भी पानी के बुलबुले की तरह नष्ट हो जाते हैं। आरम्भ में काम खूब तेजी से उन्नत हो उठता है, दो दिन बाद ही वह पहले विच्छिन्न, बाद में विकृत और उसके बाद निर्जीव हो जाता है। जितनी देर त्याग स्वीकार करने का समय नहीं आता, उतनी देर खेल में लगे बालक के समान हम एक उद्योग को लेकर उन्मत्त हो उठते हैं, उसके बाद किंचित त्याग का समय आ उपस्थित होने पर हम तरह-तरह के बहाने बनाकर अपने-अपने घरों की ओर चल देते हैं। ऐसी दुर्बल परिणति के अत्यन्त जीर्ण चरित्र को लेकर हम लोग किस साहस से बाहर आ खडे हुए हैं, यही विस्मय और चिंता का विषय है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

गीता की भूमिका

[श्री अरविंद]

गतांक से आगे

संजय को दिव्य दृष्टि की प्राप्ति

महाभारत के समय जो महासमर हुआ था उसके आरम्भ में गीता कही गयी थी। इसीलिये हम देखते हैं कि गीता के पहले ही श्लोक में धृतराष्ट्र दिव्य चक्षुप्राप्त संजय से युद्ध की बात पूछ रहे हैं। दोनों ओर की सेना युद्ध-क्षेत्र में उपस्थित हैं। उनकी सबसे पहली चेष्टा क्या है, इस बात को जानने के लिये वृद्ध राजा उत्सुक हैं। संजय को दिव्य चक्षु प्राप्त थे, यह बात आधुनिक भारत के पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लोगों की दृष्टि में कविकी कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यदि यह कहा गया होता कि अमुक व्यक्ति दूर-दृष्टि (Clairvoyance) और दूर-श्रवण (Clairandience) को प्राप्त कर दूर के रण-क्षेत्र का रोमांचकारी दृश्य तथा महारथियों का सिंहनाद इंद्रियगोचर कर सका था तो सम्भव है कि यह उतने अविश्वास के साथ न भी देखी जाती। फिर व्यासदेव ने संजय को जो यह शक्ति दी थी, यह बात तो और भी देहाती गप्प कहकर उड़ा दी जाती है। यदि यह कहा गया होता कि किसी विख्यात जड़ विज्ञानवादी ने अमुक व्यक्ति को स्वप्नावस्था (Hypnotised) प्राप्त कराकर उसके मुखसे इस दूर की घटना का कुछ हाल जाना था, तो चूंकि इन लोगों ने हिपनोटिज्म की शिक्षा को मन लगाकर पढ़ा है इसलिये शायद ये लोग इस बात पर विश्वास कर सकते। परन्तु शायद वे यह नहीं जानते कि हिपनोटिज्म योगशक्ति का एक निकृष्ट और त्याज्य अँगमात्र है। मनुष्य के अन्दर ऐसी अनेक शक्तियां निहित हैं, जिन्हें प्राचीन कालके सभ्य लोग जानते थे और ये लोग इन शक्तियों का विकास करते थे, किंतु कलयुग में अज्ञान की जो धारा बही उसमें यह विद्या भी बह गयी। कुछ थोड़े से लोगों में ही गुप्त और गोपनीय विद्या के नाम से इस विद्या की आंशिक रूप से रक्षा होती चली आ रही है।

सूक्ष्म दृष्टि अर्थात् स्थूल इन्द्रियों की पहुँच के परे कतिपय सूक्ष्म इन्द्रियां हैं और इन सूक्ष्म इन्द्रियों के द्वारा, स्थूल इन्द्रियां जिन विषयों को ग्रहण नहीं कर सकतीं उन पदार्थों के ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है, सूक्ष्म वस्तुओं का दर्शन किया जा सकता है, सूक्ष्म शब्दों को सुना जा सकता है, सूक्ष्म गन्धों को सूंघा जा सकता है, सूक्ष्म पदार्थों का स्पर्श किया जा सकता है, सूक्ष्म आहार का स्वाद लिया जा सकता है। सूक्ष्म दृष्टि के चरम परिणाम को दिव्य चक्षु कहा जाता है। इसके प्रभाव से दुरस्थ, गुप्त या अन्य लोकों के समस्त विषयों का हमें ज्ञान होता है। परम योगशक्ति के आधार महामुनि व्यास संजय को दिव्य चक्षु देने में समर्थ हुए थे, इस बातपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। यदि हम आधुनिक हिपनोटिज्म की अद्भुत शक्ति पर अविश्वास नहीं कर सकते, तो फिर अत्यन्त ज्ञानी व्यासदेव की अद्भुत शक्ति पर अविश्वास करने का क्या कारण है? शक्तिमान की शक्ति दूसरे के शरीर पर उपयोग में लायी जा सकती है, इसके अनेकों प्रमाण इतिहास में प्रत्येक पृष्ठ पर तथा मनुष्य-जीवन के प्रत्येक कार्य में पाये जाते हैं। नेपोलियन आदि कर्मवीर उपयुक्त पात्र के अन्दर अपनी शक्ति का संक्रमण कर

अपने कार्य के सहकारी तैयार कर गये हैं। अत्यन्त सामान्य योगी भी, किसी सिद्धि को प्राप्त कर लेने पर कुछ काल के लिये अथवा किसी विशेष कार्य में प्रयोग करने के लिये अपनी सिद्धि दूसरे को दे सकते हैं। फिर व्यासदेव तो जगत् के श्रेष्ठ मनीषी और असामान्य योगी सिद्ध पुरुष थे।

वास्तव में, दिव्य चक्षु का अस्तित्व कोई देहाती गप्प नहीं है, बल्कि यह एक वैज्ञानिक सत्य है। हम लोग जानते हैं कि चक्षु नहीं देखते, कान नहीं सुनते, नाक नहीं सूंघता, त्वचा स्पर्शानुभव नहीं करती, रसना स्वाद नहीं लेती बल्कि मन ही देखता, सुनता, सूंघता स्पर्शानुभव करता और स्वाद लेता है। दर्शनशास्त्र में और मनस्तत्व विद्या में यह सत्य बहुत दीर्घकाल से स्वीकृत होता चला आया है। हिपनोटिज्म में यह बात सायंस के प्रयोग द्वारा परीक्षित होकर प्रमाणित हुई है कि आँख बन्द होने पर भी दर्शनेन्द्रिय का काम किसी भी नाड़ी के द्वारा सम्पादित हो सकता है। इस बात से यही प्रमाणित होता है कि चक्षु आदि स्थूल इन्द्रियां ज्ञान प्राप्ति का केवल सुविधाजनक उपाय हैं, स्थूल शरीर के सनातन अभ्यास में बन्धकर हम लोग इन्द्रियों के दास हो गये हैं, किन्तु असल में हम किसी भी शारीरिक प्रणाली के द्वारा उस ज्ञानको हम मनतक पहुँचा सकते हैं—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अन्धा मनुष्य स्पर्श के द्वारा पदार्थ की आकृति और स्वभाव की निर्मूल धारणा कर लेता है परंतु अँधे की दृष्टि और हिपनोटाइज्ड व्यक्ति की दृष्टि में यह भेद है कि हिपनोटाइज्ड व्यक्ति पदार्थ की प्रति मूर्त्ति को अपने अन्दर देखता है। इसीको दर्शन कहते हैं। वास्तव में हम अपने सामने पड़ी हुई पुस्तक का दर्शन नहीं करते, बल्कि उस पुस्तक की जो प्रतिमूर्त्ति हमारी आँखों में चित्रित होती है उसी को देखकर मन कहता है कि, पुस्तक देखी। परन्तु हिपनोटाइज्ड व्यक्ति जिस प्रकार से दूर के पदार्थ या दूर की घटना को देखता या सुनता है उससे भी यह साबित होता है कि पदार्थ ज्ञान प्राप्ति के लिये किसी शारीरिक प्रणाली की आवश्यकता नहीं,—सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा दर्शन किया जा सकता है। लण्डन के मकान में बैठकर, उस समय एडिनबरा में जो घटना घट रही है, उसे मन के अन्दर देखने वालों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। इसीका नाम है सूक्ष्म दृष्टि।

सूक्ष्म दृष्टि और दिव्य दृष्टि में यह भेद है कि सूक्ष्म दर्शी मनके अंदर अदृष्ट पदार्थ की प्रतिमूर्त्ति का दर्शन करता है, किंतु दिव्य चक्षु के द्वारा हम उस दृश्य को मन के अंदर नहीं देखते, बल्कि स्थूल चक्षु के सामने देखते हैं, उस घटना के शब्दों को चितास्रोत के अंदर न सुनकर स्थूल कानों से सुनते हैं। इस बात का सामान्य दृष्टांत इस रूप में दिया जा सकता है—जैसा कि (Crystal) में या स्याही में सम सामयिक घटना का देखना। परन्तु दिव्य चक्षु प्राप्त योगी के लिए इस प्रकार के उदाहरण की कोई आवश्यकता नहीं होती, वे इस शक्ति के विकास द्वारा बिना किसी उपकरण के ही देश और काल के बन्धन को दूर कर अन्य देश और अन्य कालकी घटना को जान सकते हैं। देश-बन्धन को तोड़ डालने के हमें यथेष्ट प्रमाण मिल चुके हैं, काल-बन्धन दूर किया जा सकता है। मनुष्य जो त्रिकाल दर्शी हो सकता है उसके बहुतेरे और सन्तोषजनक प्रमाण अभीतक जगत् के सामने उपस्थित नहीं किये गये हैं। परन्तु यदि देश-बन्धन दूर किया जा सकता है तो फिर काल-बन्धन को दूर करना असम्भव है, यह बात नहीं कही जा सकती। जो हो, व्यास के दिये हुए दिव्य चक्षु को पाकर संजय ने हस्तिनापुर में रहते हुए भी, मानो वे कुरुक्षेत्र में ही खड़े हों, उसी प्रकार वहाँ पर इकट्ठे हुए कौरवों और पांडवों को अपनी आँखों से देखा था, दुर्योधन की उक्ति, पितामह भीष्म का सिंहनाद, पांचजन्य का कुरुध्वंस घोषक महाशब्द तथा गीतार्थ द्योतक कृष्णार्जुन संवाद को अपने कानों से सुना था।

हमारे मत से महाभारत भी रूपक नहीं है, कृष्ण और अर्जुन भी कविकी कल्पना नहीं है, गीता भी आधुनिक तार्किक अथवा दार्शनिक का सिद्धांत नहीं है। गीता की कोई भी बात असम्भव या युक्ति विरुद्ध नहीं है, इस बात को प्रतिपादित करना होगा और इसी लिये दिव्य चक्षु प्राप्ति की कथा की इतनी विस्तृत आलोचना की गयी।

अहिंसात्मक साध्य और साधन

[राजेन्द्रप्रसाद]

देश की अवस्था पर विचार करने के समय हम बहुधा भूल जाया करते हैं कि हमारी दुरवस्था और दुर्गति के मूलभूत कारण हमारे में ही हैं। और जबतक हम उन्हें दूर न करेंगे, हमारी दशा सुधर नहीं सकती। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक ह्रास का प्रधान कारण हमारी अपनी अकर्मण्यता, अदूरदर्शिता और जड़ता है। इसलिए देश की उन्नति के लिए जो भी कार्यक्रम बनाया जाय उसमें इन दुर्गुणों के दूर करने का उपाय अवश्य रहना चाहिए। गांधीजी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में इसी पर ध्यान रक्खा है, और यद्यपि उन्होंने इस पर बहुत जोर दिया है, तथापि कार्यकर्त्तागण ने उसको पूरा करने में उतना उत्साह नहीं दिखलाया है, जितना चाहिए। इस प्रकार के विधायक कार्यक्रम के पूरा करने में बहुत धैर्य और मूक सेवा लगती है, और हम प्रदर्शन की आतिशबाजी अधिक पसन्द करते हैं। यदि हम विचार करके देखें तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि हमारी प्रगति कम है—क्योंकि हमने अभीतक जनता की सेवा द्वारा प्रेम-पात्रता प्राप्त नहीं की है।

गांधी जी ने एक लम्बे लेख में विधायक कार्यक्रम के १३ भेद बतलाये थे, जिनके अभाव के कारण ही हमारी पराधीनता है। (१) हिन्दु-मुस्लिम व साम्प्रदायिक सद्भाव (२) अस्पृश्यता-निवारण (३) मद्यपान निषेध (४) खादी (५) दूसरे ग्रामोद्योग (६) ग्राम सफाई (७) बुनियादी तालीम (८) प्रौढ शिक्षण (९) स्त्री सेवा (१० आरोग्य शिक्षण (११) राष्ट्रभाषा-प्रचार (१२) मातृभाषा-प्रेम (१३) आर्थिक समानता।

इनमें से प्रत्येक की उपयोगिता स्वयँ सिद्ध है और यदि हम इनको पूरा कर सकें तो संसार में कोई शक्ति नहीं जो हमको अपने अधीन रख सकेगी। हमने इनकी उपेक्षा की है और इसलिए हममें कमजोरी आगई है। एक-एक के पूरा करने में हमको वैयक्तिक और सामूहिक शक्ति पैदा करनी होगी और सङ्गठन करना होगा, जो सभी आगन्तुक उपाधियों को दबा सकेंगे। हमको यह भी याद रखना चाहिए कि यह कार्यक्रम अहिंसात्मक है और अगर हम अहिंसात्मक समाज का निर्माण करना चाहते हैं तो इसका पूरा करना अनिवार्य है। लोग पूछा करते हैं कि चर्खे का स्वराज्य-प्राप्ति से क्या सम्बन्ध है—अथवा अस्पृश्यता-निवारण कैसे स्वराज्य-स्थापन में सहायक हो सकता है! हम भूल जाते हैं कि हमारी पराधीनता के मूल कारणों में वह नैतिक ह्रास ही सबसे बड़ा कारण है, जिसने हमको अकर्मण्य और जड़ बना दिया है और हमारी पराधीनता इसी अकर्मण्यता और जड़ता का फल है। केवल बिना बुद्धि लगाये और बिना उत्साह और श्रद्धा के चर्खा चलाते रहना काफी नहीं है। चर्खा तो एक निमित्त-मात्र है। उसके द्वारा हम उन शक्तियों को जाग्रत करना चाहते हैं, जिनके ह्रास से हमारी दुर्दशा हुई है। साथ ही हम आँखों के सामने उसके लाभ भी देख सकते हैं और उसका नाम भी ले सकते हैं। वह चीज भी इतनी सहज और सुगम है कि बड़े-छोटे स्त्री-पुरुष अमीर-गरीब सभी उसमें भाग ले सकते हैं। और जब तक सब श्रेणियों और वर्गों में हम जाग्रति नहीं लायेंगे, काम पूरा नहीं होगा।

उपरोक्त सभी बातों की जड़ में अहिंसा भरी पड़ी है। आज की संसार की आर्थिक स्थिति का विश्लेषण किया

जाय, तो वह हिंसा मूलक पायी जायगी। सभी देश, जो उन्नत समझे जाते हैं, दूसरे देशों का शोषण करके ही अपनी उन्नति कर सके हैं अथवा समृद्धि बढा सके हैं। इस यन्त्र-युग में धनोपार्जन का सबसे बड़ा साधन यन्त्र है, जो एक तरफ बहुतेरों के धन्धे छीन लेता है, तो दूसरी ओर जो थोड़े काम में लगाये जाते हैं, उनकी मजदूरी इतनी नहीं होती, जितना यन्त्र न होने पर मजदूरों को मिलती। जो बेकार हो जाते हैं, उनकी मजदूरी पूंजी जुटाने वाले को ही बहुत करके मिलती है। फलतः पूंजीपति अपनी पूंजी के बल से बहुतेरों की मजदूरी अकेले ही लेलेता है और मजदूर जो काम करते हैं और परिश्रम करते हैं, मुनाफे में से थोड़ा पाते हैं। शोषण इसीको कहते हैं और आजकी सारी पश्चिमी सभ्यता इसी पर बनी है। मजदूर के शोषित होने का एक मात्र कारण यह है कि वह मजदूर है और यन्त्र के बिना कुछ कर नहीं सकता और यन्त्र वह ले नहीं सकता—उसे दूसरे पर भरोसा करना पड़ता है। गांधी जी ने चर्खे को इस प्रकार के शोषण के विरुद्ध बगावत का चिह्न माना है। यन्त्र में दोष नहीं है—वह तो निर्जीव है। पर मनुष्य ने उसे शोषण का साधन बनालिया है और वह उसके द्वारा बहुत अनर्थ करता है। जहाँ शोषण है वहाँ हिंसा है, और जब तक मनुष्य की बुद्धि और वृत्ति अहिंसात्मक नहीं होगी, शोषण किसी-न-किसी रूप में रहेगा ही। चर्खा भी एक प्रकार का बहुत ही सुन्दर और चमत्कारी यन्त्र है। पर उसके द्वारा शोषण की सम्भावना नहीं के बराबर है। वह सुन्दर से सुन्दर और महीन से महीन सूत दे सकता है, पर इतना नहीं कि उसका मालिक उसके द्वारा किसी का शोषण कर सके। उसकी उत्पत्ति परिमित है और इसलिए उसमें शोषण की मात्रा नहीं के बराबर है। इस प्रकार वह समाज में शोषण के एक साधन को कम करता है और मनुष्य की मनोभावना को अहिंसात्मक बनाता है।

इसी प्रकार आपस के वैमनस्य का कारण भी बहुत करके हिंसात्मक बुद्धि ही होती है। अस्पृश्यता में हिंसा के सिवा दूसरा कुछ है ही नहीं। अगर हम देश का उद्धार अहिंसात्मक साधनों द्वारा ही करना चाहते हैं, तो इसमें रचनात्मक कार्यक्रम के बिना हम सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। गाँधी जी तो साध्य और साधन में भेद नहीं करते और अगर हमारा साधन अहिंसात्मक होगा तो फलतः जो स्वराज्य हम स्थापित करेंगे, वह भी अहिंसात्मक ही होगा—अर्थात् उसमें शोषण वृत्ति नहीं रहेगी—उसके स्थान पर सेवा वृत्ति ही प्रधान रहेगी। यह स्पष्ट है कि हिंसात्मक साधन द्वारा हम अहिंसात्मक समाज में जो वैमनस्य फैला हुआ है—जो समय-समय पर फूट करके युद्ध के रूप में निकल आया करता है, और जिसके द्वारा इतनी क्रूरता, निर्दयता और अमानुषिक व्यवहार किये जाते हैं—वह उस समय तक दूर नहीं होगा, जब तक यह भौतिक हिंसावृत्ति अर्थात् शोषक वृत्ति दबाई न जाय और उसके स्थान पर सेवा वृत्ति की स्थापना न हो। गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम की भित्ति इसी सेवा वृत्ति पर दी गई है, और वह केवल इसी समय के लिए नहीं आवश्यक है, जब हम स्वराज्य-प्राप्ति के प्रयत्न में लगे हैं, पर साथ ही साथ वह उस स्वराज्य की रूपरेखा भी व्यक्त करता जायगा और वास्तविक सङ्गठन भी करता जायगा, जिसमें यह शोषण वृत्ति नहीं रहेगी। मैंने उदाहरणार्थ केवल दो तीन विषयों को ही लेकर उसके महत्त्व को दिखलाने का प्रयत्न किया है। उसके अन्तर्गत विषय इसी तरह उसी भौतिक अहिंसा को जाग्रत करने और शोषक वृत्ति को दबाने के लिए ही बताये गये हैं, और थोड़ा विचार करने पर उनकी उपयोगिता जान पड़ती है। हाँ, अगर हम इस अहिंसा को छोड़ देते हैं, अथवा हिंसात्मक समाज का संगठन ही कायम रखना चाहते हैं, तो हम मान लेंगे कि यह कार्यक्रम उतना उपयोगी नहीं होगा, यद्यपि इसकी उपयोगिता उस अवस्था में भी काफी होगी।

लोग अक्सर कह दिया करते हैं कि स्वराज्य चाहे जैसे हो, प्राप्त कर लेना चाहिए और फिर हम जैसा चाहेंगे, अपना प्रबन्ध कर लेंगे। इसमें दो भूलें हैं। एक

तो हम यह मान लेते हैं कि साधन और साध्य दो अलग वस्तु हैं और एक का दूसरे पर बहुत प्रभाव नहीं पड़ता। यह ठीक वैसा ही है, जैसा कीचड़ से कीचड़ धोने का प्रयत्न, हिंसात्मक साधनों द्वारा प्राप्त कोई भी वस्तु अहिंसात्मक नहीं हो सकती। और न रह सकती है। उसके प्राप्त करने में ही इतनी हिंसा लगती है कि उसे उससे मुक्त करना असम्भव नहीं, तो अत्यन्त दुष्कर अवश्य हो जाता है। यदि आज हम भारतवर्ष को उन साधनों द्वारा मुक्त कराने का प्रयत्न करें, जो प्रचलित हैं,—अर्थात् हथियारों द्वारा हम अपनी आजादी लेना चाहें—तो हो सकता है कि हम उसमें सफल हों। पर हमारे हथियार भी इतने जबरदस्त और पैने होने चाहिएँ, जो प्रतिद्वन्द्वी के पास मौजूद हैं। उन्हें प्राप्त करना ही इतना दुष्कर है कि हम स्वराज्य-प्राप्ति तक स्वयं उनमें ओत-प्रात हो जायँगे कि उनसे छुटकारा कठिन हो जायगा। इसलिए गांधीजी ने साधन को ही निर्दोष बनाने का प्रयत्न किया और उन साधनों द्वारा हम जो प्राप्त करेंगे वह भी निर्दोष ही हो सकता है।

दूसरी भूल यह होती है कि हम मान लेते हैं कि दूसरा रास्ता हमारे लिए अधिक सहज है। हिंसा और अहिंसा की बात छोड़ दी जाय तो आज जो कुछ संसार में देखने में आ रहा है, उससे हम समझ सकते हैं कि आजकी शक्तियों से मुकाबला करने के लिए बहुत बड़ी शक्ति की आवश्यकता होगी। यह एक प्रकार से आज असम्भव जान पड़ता है कि हम उन साधनों को जुटा सकेंगे, जो युरोप के पास इस समय मौजूद हैं। इसमें सबसे बड़ी बाधा हमारी मनोवृत्ति की होगी, क्योंकि हमारी संस्कृति ऐसी बनी है कि हम उसका पूरी तरह स्वीकार नहीं कर सकते। इसलिए हमारे लिए गांधी जी के कार्यक्रम के सिवा दूसरा कोई रचनात्मक कार्यक्रम है भी नहीं। यही सब से अधिक सुलभ है और सबसे अधिक कारगर भी होगा। रचनात्मक कार्यक्रम उसी का साधन है और हमारे लिए आज की स्थिति में श्रेय प्रेय दोनों दृष्टि कोणों से मान्य होना चाहिए।

('विश्वभारती पत्रिका' से)

गाँव की सफाई

इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि गाँव की सफाई उसकी एक अत्यन्त जरूरी चीज है। लोग इस बात को मानो जानते ही नहीं हैं और न इसकी परवा करते हैं कि गाँव को किस तरह साफ रखा जा सकता है—यहाँ तक कि वे अपने शरीर और घर की सफाई भी नहीं रखते और न उसकी परवा करते हैं। इसका नतीजा जो हो सकता है वही होता है, यानी बीमारी, महामारी और गाव के स्वास्थ्य का ह्रास। यह कहावत बिलकुल बेमानी नहीं है कि ईश्वर स्वच्छता में ही बसता है। यह आध्यात्मिक अर्थ में तो सही है ही, भौतिक अर्थ में भी उतनी ही सच है। किसी चीज का अपने उचित स्थान पर न रहकर अन्यत्र रहने का ही नाम गन्दगी है। यह बहुत बुरी आदत है कि किसी चीज को चाहे जहाँ फेंक दे, जहाँ चाहे वहाँ—यहाँ तक कि घर के भीतर दीवारों और बरामदों पर, आँगन में, सड़क पर थूक दें अथवा नाक सिनक दें, मकान के नजदीक या मोरी में या सड़क पर या तालाब के किनारे या नदी के तट पर पाखाना-पेशाब कर दें और उसपर साफ मिट्टी डालकर उसे ढकें भी नहीं। ये सब बुरी आदतें दूर होनी चाहिएँ। यह सब बीमारी का भारी कारण है और पड़ोसियों के लिए कष्टदायक है। इन सबकी ठीक व्यवस्था न होने से बहुत धन भी बरबाद होता है, जो इनसे खाद बनाकर पैदा किया जा सकता है।

गन्दगी से कितने खतरे पैदा होते हैं, यह बात अगर गाँववाले समझ जायें और इससे दूसरी कितनी बुराइयाँ पैदा होती हैं यह जान जायें तो गाँव की सफाई आसानी से हो सकती है। —राजेन्द्रप्रसाद

ग्रामीणों का स्वास्थ्य और आधुनिक सभ्यता

[मुरलीधर दिनोदिया, बी॰ ए॰ एल-एल॰ बी॰]

"शरीरं व्याधि मन्दिरम्" यह उक्ति ठीक तो नहीं है, पर हमने शरीर को आजकल व्याधि-मन्दिर ही बनाया हुआ है। संयम तथा परिश्रम को धता बता कर हमने शौकीनी एवं आरामतलबी को अपना लिया है। हमारी गरीबी और अज्ञानता के कारण खाना-पीना भी स्वास्थ्यकर नहीं रहा है। रहन-सहन ही बदल गया है। देश में बीमारियों ने डेरा जमा लिया है। नित नई बीमारियाँ उठती हैं, बढ़ती जाती हैं और उनके साथ-साथ इलाज करने वालों की भी भरमार होती जा रही है। रोग लगने पर उससे छुटकारा पाने का प्रयत्न करते हैं, भारी खर्च उठाते हैं पर रोग लगने ही न पाय, इसके लिए कुछ करते नहीं हैं। इसका ध्यान रखें तो दवा-दारू से इसमें चौथाई खर्च भी नहीं आयगा और समय की बचत भी होगी। पहले लोग इतने बीमार नहीं होते थे। अब भी शहर वालों की अपेक्षा देहात वाले रोगों के शिकार कम होते हैं क्योंकि उनका परिश्रम और संयम का जीवन है। शुद्ध ताजा हवा भी गाँव वालों को अनायास ही मिल जाती है जो स्वास्थ्य के लिये उतनी ही आवश्यक है जितने अन्न एवं जल। प्रकृति के निकट सम्पर्क का इतना लाभ तो होना ही चाहिये।

आजकल घर में कोई बीमार पड़ रहे तो इलाज में इतना खर्च और समय लगता है कि साधारण स्थिति वालों की तो मुसीबत ही आ जाती है। बीमार तो बीमार, ऊपर वालों का भी काम में पूरा हर्ज होता है तथा अनाप-शनाप खर्च में पिसना पड़ता है। अतः इसे रोग लगने की बजाय "डाक्टर लगना" कहना ठीक रहेगा। पहले बीमार के इलाज में इतना झंझट नहीं करना पड़ता था। कभी-कदास कोई बीमार हो जाता तो घर ही में या पास-पड़ौस के किसी सयाने व्यक्ति की बतलाई हुई घास-फूंस की दवा आदि का प्रयोग करने से ही जल्दी आराम हो जाता था। छोटी-मोटी तकलीफ की तो तब परवाह ही कौन करता था। लेकिन आजकल बीमार तो बहुत होते हैं तथा नित्य दवा का प्रयोग भी करते हैं किन्तु यह रगड़ना-कूटना, पीसना-छानना, उबालना भला कौन करे। ये लोग मन में तो

यहाँ तक रखते हैं कि दवा कोई दूसरा पाले और आराम मुझे हो जाय। तैयार दवाइयाँ मिलती हैं; बस एक हाथ से पैसे निकालिये और दूसरे में दवा सँभालिये। "इस हाथ से दे, उस हाथ से ले।" पुराने आदमियों के साथ-साथ बचे-खुचे घरेलू लटके तुरन्त फल देने वाली हमारी ये मुफ्त की दवाइयाँ, भी तेजी से उठते जा रहे हैं, यह खेद का विषय है। और पेटेण्ट दवाओं के प्रचलन ने तो हमारे इन लटकों को बेआबरू ही कर दिया है। इन तड़क-भड़क वाली पेटेंट दवाओं के लिये प्रतिवर्ष लाखों रुपया देश से बाहर चला जा रहा है, सो अलग।

आजकल की सभ्यता में जहाँ कुछ अच्छाइयाँ हैं, वहाँ बुराइयाँ भी बहुत हैं। हमारे शहरों में यह सभ्यता फूल-फल रही है, पर इसकी छूत कई एक अनिवार्य कारणों से अब गाँव वालों को भी तेजी से लगती जा रही है। अच्छाई तो देर से आती है, बुराई अपनी चकाचौंध के सहारे जल्दी फैलती है। दिन भर में २० कोस चलना हमारे यहाँ गाँव वालों के लिये पहले एक साधारण बात थी, पर आजकल देखा जाता है कि जो जगह पैदल रास्ते से १५ कोस पड़ती है वहाँ जाने के लिये ७ कोस पैदल चलते हैं और १५ कोस रेल में। रेल का दुरुपयोग हमारी बदली हुई मनोवृत्ति का परिचायक है। यह सभ्यता की छूत है। नतीजा हमारे सामने है, ग्रामीण लोग भयङ्कर "शहरी" बीमारियों में ग्रस्त पाये जाते हैं। इस छूत से पूर्णतया नहीं बचा जा सकता, इसमें कई एक कारण हैं। पर हमारे देहाती भाइयों को इस बारे में अभी से सँभल जाना चाहिये।

शहर वाले जीवन की ऊँचाई में उड़ना चाहते हैं, उन्हें उड़ने दीजिये। हम धरती के पूत हैं, हम यहीं जमे रहेंगे तो वे अपनी उड़ान को भुला कर नीचे उतरने को बाध्य होंगे। जीवन का स्रोत देहात हैं, यहीं से शहर वाले जीवन लेते हैं और आज की विषम घड़ी में जो शहर उजड़-उजड़ कर गाँव बस रहे हैं यह इस बात का प्रमाण है कि बड़े-बड़े नगरों की सभ्यता खोखली है, जीवन-शोषक है। हमें शहर वालों के भुलावे में आकर बरबादी की ओर जाने की चाह नहीं होनी चाहिये। अब वक्त आगया है कि हम जोरों से अनुभव करें और पुकार कर कहें कि आपके ये अस्पताल, ये डाक्टर और उनकी आकर्षक बोतलों में भरी ये दवायें आप ही को मुबारिक हों। हम पशुओं के बीच रहते हैं, पहले की तरह उनका अपने ममत्व से पालन करेंगे और उन्हीं में अपने लिये अस्पताल, डाक्टर तथा दवा की बोतलें पाने का प्रयत्न करेंगे।

बालकों का विकास और हमारे परिवार

[काशीनाथ त्रिवेदी]

प्रश्न होता है कि क्या सचमुच हमारे आज के पारिवारिक जीवन में बालकों का वास्तविक विकास हो पाता है ? क्या हमारे परिवारों का वातावरण बालविकास के अनुकूल होता है ? क्या परिवार के कर्त्ता-धर्त्ता बालकों के वास्तविक विकास की चिन्ता करते हैं ! क्या इन्हें विकास के शास्त्र, विकास की कला और विकास के मार्गों का आवश्यक और अद्यतन ज्ञान रहता है ? क्या वे समझते हैं कि बालकों के विकास का भी नित नया शास्त्र है ? बिना उसे जाने, बिना उसे समझे, बिना उसे व्यवहार किये, बिना उसके लिए तपे, वह फलता नहीं—उसका लाभ किसी को मिलता नहीं !

हमारे पारिवारिक जीवन की आज कुछ अजीब-सी दशा है। सदियों की गुलामी ने जहाँ हमें गरीबों का गरीब बनाया है, तहां हमारी दीनता, हीनता और मलीनता को तो उसने पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है। दासत्व का अभिशाप ही कुछ ऐसा है कि न वह सिर्फ हमारे शरीर का स्पर्श करता है, बल्कि मन प्राण और आत्मा को भी अभिभूत कर लेता है—अपने विषपाश में बुरी तरह जकड़ लेता है। इस विष की तासीर भी कुछ अद्भुत-सी होती है इसे पीकर पीने वाला मरता नहीं, गाफिल हो जाता है; अपने को भूल जाता है; स्वदेश, स्वधर्म, स्वाभिमान, स्वावलम्बन, स्वतन्त्रता आदि का खयाल उस के दिमाग से एक दम उतर जाता है, और वह अपने प्रभुओं की पाद-पूजा में ही जीवन की इति कर्त्तव्यता समझ बैठता है। इस दुर्भाग्यपूर्ण मनोवृत्ति के फलस्वरूप अपनी मनुष्यता से इतना गिर जाता है कि उसे पुनः उसके मौलिक स्थान पर ले जाकर बैठाना कठिन नहीं, कठिनतम हो जाता है। यदि कहा जाय कि हमारे देश के औसतन परिवारों की वर्तमान स्थिति इसी सत्य का कटु निदर्शन कराने वाली है, तो शायद वह अत्युक्ति न होगी।

ऐसी दशा में जो पारिवारिक जीवन आज आमतौर पर हमारे यहां पाया जाता है, उसमें वास्तविक बाल-विकास की आशा और अपेक्षा कोई कैसे करे ? जिस देश में १०० में १२ से अधिक लोग पढ़े लिखे न हों, जहां करोड़ों घरों में गरीबी, बेबसी और कंगाली का बारहों महीने भीषण ताँडव होता रहता हो; जहां करोड़ों को एक जून पेट भर खाने को भी न मिलता हो, जहां करोड़ों बिना घर-बार के निराश्रित अवस्था में जीवन बिताते हों, जहां घोरतम अज्ञान के सदियों पुराने गढ़ आज भी अपना सर उठाये देश के कोने-कोने में अविजित खड़े हों, वहां बाल-विकास की चर्चा करना भी एक हिमाकत-सी मालूम होती है।

लेकिन आज हम करोड़ों की बात नहीं कर रहे। शायद अभी उसका वक्त नहीं आया। वह अब करीब आ रहा है, इसमें शक नहीं। जब आयेगा, तो उसकी चर्चा भी हमें करनी होगी और हम खुशी खुशी करेंगे। आज तो हम उन परिवारों में बच्चों के विकास की चर्चा करना चाहते हैं जो इस गरीब देश में भी थोड़ा-बहुत 'अमीरी' का जीवन बिता लेते हैं—जिनके लिए कहा जाता है कि वे ज्ञान के आलोक से आलोकित हैं, सभ्य हैं, सुशिक्षित हैं, धन-जन से युक्त और मान-सम्मान से सुशोभित हैं।

तो क्या इस देश के ऐसे खुश नसीब घरों, में बाल-

विकास की पूरी-पूरी अनुकूलता है ! पूरी न हो, न सही ! अधूरी भी है ! आंसू पोंछने जितनी भी है ? दुःख के साथ कहना पड़ता है कि नहीं, ऐसे घरों में भी बालकों के समुचित विकास का कोई योजनाबद्ध व्यापक प्रबन्ध नहीं है। कुछ इने-गिने परिवारों में इने-गिने भाग्यशाली बच्चों को अपने विकास की थोड़ी अनुकूलता मिल जाती है, लेकिन वह तो समुद्र में बूंद की तरह है। उससे देश के लाखों-करोड़ों बच्चों को भूख कैसे मिट सकती है ? आज प्रश्न इस या उस वर्ग के मुट्ठी भर खुशहाल बालकों के विकास का नहीं है; प्रश्न है, सारे देश के लाखों-करोड़ों बच्चों के संगठित और व्यापक विकास का ! और जब हम इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करने बैठते हैं, तो दिल आशा और उत्साह से उछलता नहीं; बल्कि निराशा के भँवर में पड़कर अवसन्न हो रहता है। इसके कई कारण हैं. और आज हमें इन्हीं कारणों पर थोड़े में विचार करना है।

जीवन में स्वतन्त्रता का अभाव आज की हमारी सामाजिक जिन्दगी का सबसे बड़ा अभाव है। जहां स्वतन्त्रता नहीं, वहां विकास कैसा ? विकास का अर्थ है गति.—अप्रतिहत गति। जब आदमी किसी एक लक्ष्य की ओर निरन्तर बढता जाता है, तो वह विकास के पथ पर होता है। लेकिन जहां जीवन का कोई लक्ष्य ही निश्चित नहीं, वहां गति कैसी और विकास कैसा ? हमारे औसत परिवारों की आज ऐसी ही स्थिति है। हम सब प्रवाह पतित की तरह एक दिशा में बहते चले जा रहे हैं किधर बह रहे हैं और क्यों बह रहे हैं, इसका विचार करने की भी हमें फुरसत नहीं है। इस सम्बन्ध की हमारी चेतना ही मानो सो गई है। गतानुगतिकता ने हमें मोह लिया है। भेड़ियाधसान के चक्कर में हम फँस गये हैं। स्वतन्त्र रूप से कुछ सोचने-समझने और करने की हमारी शक्ति का दिवाला-सा पिट गया है। हम निस्तेज और हतबुद्धि हो गए हैं। यही वजह है कि विकास के क्षेत्र में हम सामूहिक रूप से बहुत पिछड़े हुए हैं। बचपन से लेकर बुढापे तक हमें अपना सारा जीवन दूसरों के इशारों पर बिताना पड़ता है। जीवन में स्वतन्त्ररूप से कुछ करने-धरने का हमें अवसर ही नहीं मिलता। घर में भी नहीं, समाज में भी नहीं, और राज दरबार में भी नहीं। हम अपने घर में भी स्वतन्त्र नहीं—वहां भी दुनिया भर के बन्धन हमारी स्वतन्त्रता-चेतना को चारों ओर से जकड़े बैठे हैं और हमारी मनुष्यता का गला घोंट रहे हैं। जब समाज के और घर के कर्त्ता धर्त्ताओं की यह स्थिति है, तो फिर बच्चों की दयनीय स्थिति का तो पूछना ही क्या ! उन बेचारों को तो तिहेरी गुलामी में रहना और जीना पड़ता है। ऐसी दशा में उनकी शक्तियों का जो भी विकास हो जाता है, सो गनीमत है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, स्वतन्त्रता विकास की पहली शर्त है। जहां स्वतन्त्रता है वहां स्वयँ स्फूर्ति है, वहां स्वावलम्बन है। और जहां ये तीनों हैं, समझना चाहिए कि वहां विकास की अनुकूलता है। इस दृष्टि से जब हम अपने पारिवारिक जीवन को कसौटी पर चढाते हैं तो आंखों के सामने अन्धेरा-सा छा जाता है; मन निराशा से भर उठता है। हम गुलाम हैं, गुलामी में पले हैं और गुलामों का जीवन बिताते हैं, इसलिए अपने बच्चों को भी हम बचपन से गुलामी का ही पाठ पढाते हैं। आज हमारे परिवारों में दुध-मुंहे बच्चे भी सच्चे अर्थ में स्वतन्त्र नहीं हैं। अगर कहा जाय कि पैदा होते ही गुलामी का तौक उनके गले में डाल दिया जाता है, तो अतिशयोक्ति न होगी। हमारे घरों में बच्चों को बचपन से मुंहताजी के पाठ पढाये जाते हैं। उन्हें मजबूर किया जाता है कि वे हर बात के लिए परवश और पराधीन रहें। खाने-पीने, पहनने-ओढने, जाने-आने, नहाने-धोने और खेलने-कूदने के मामलों में भी उनको घर के बड़े-बूढों की मर्जी पर चलना पड़ता है। घरों में बालकों की रुचि, वृत्ति, आवश्यकता भूख और जिज्ञासा का सहानुभूति के साथ विचार करने वाले और विचारपूर्वक इन सबकी पूर्ति करने वाले पालकों की संख्या हमारे देश में आज भी अँगुलियों पर गिनी जा सकती है। ऐसी दशा में घरों के अंदर हमारे बालकों को अपने चौमुखी विकास का अनुकूल वातावरण

तो मिल ही कैसे सकता है ? माता-पिता बात-बात में अपनी रुचि, अपने विचार, अपने मत, और अपने संस्कार बच्चों पर लादनें की कोशिश करते हैं, और इस प्रकार उन्हें बचपन से अपना गुलाम बना लेते हैं। बच्चों को खाना हो तो माता-पिता की रुचि का खाना चाहिए, पहनना हो तो उनकी रुचि की पोशाक पहननी चाहिए, मिलना जुलना हो तो उनकी पसंद के लोगों से मिलना-जुलना चाहिए, सीखना हो, तो उनकी रुचि का काम सीखना चाहिए, पढना-लिखना हो तो वे जो कहें वही पढना-लिखना चाहिए; ऐसी विपरीत परिस्थिति में बालक बेचारा अपनी ईश्वरदत्त शक्तियों का स्वत: सुखाय विकास करे तो कैसे करे ? माता-पिता को अपनी मान-मर्यादा का बड़ा खयाल रहता है, अपने मन का अतिशय आग्रह रहता है और अपनी रुचि का मोह रहता है; फलत: वे बच्चे को उसकी अन्त: प्रेरणा से स्वतँत्रता-पूर्वक कुछ करने-धरने नहीं देते। बालक की विकासमान शक्तियां बचपन से ही इस प्रकार पग-पग पर अवरोध का सामना करते-करते थक जाती हैं, कुण्ठित हो जाती हैं, वह अपनी स्वतन्त्र चेतना को भूल जाता है, उसका व्यक्तित्व दब जाता है, और फिर वह कठपुतली-सा बन कर अपने बुर्जुगों के इशारों पर चलने में ही अपनी खैर समझता है। ऐसे निष्प्राण बालक हमारे घरों में समझदार और शरीफ माने जाते हैं और जिनमें दर असल कुछ प्राण रहते हैं, उनकी गिनती शरीरों में की जाती है - वे उद्दण्ड और आवारा माने जाते हैं। घर के बड़े-बूढों का प्रयत्न यही रहता है कि किसी तरह ये नटखट बालक भी झटपट नाथ लिये जायँ और लकीर के फकीर बना दिये जायँ। यह हालत आम तौर पर उन परिवारों की भी है, जो अपनी कुलीनता, सम्पन्नता और विद्वता के लिए समाज में अग्रणी माने जाते हैं।

आज हमारे सुशिक्षित परिवारों में भी बहुत थोड़े माता पिता ऐसे हैं, जो बाल-संशोधन और बाल-विकास के मर्मको समझते और बालकों की स्वतन्त्रता की रक्षा करते हैं। इस विषय का विधिवत् अध्ययन करने वाले और उस अध्ययन के प्रकाश में बालकों के साथ व्यवहार की तत्परता दिखाने वाले माता-पिता तो और भी बिरले हैं। पहले हमारे देश में ऐसा नहीं होता था। यूरोप और अमेरिका में आज भी ऐसा नहीं होता— इस समय जबकि सारे यूरोप में इस छोर से उस छोर तक युद्ध का भीषण दावानल प्रज्ज्वलित है, जबकि चीन, जापान और अमेरिका में लाखों स्त्री-पुरुष युद्धरत्त हैं, बालकों के लालन-पालन, संवर्द्धन और शिक्षण का उतना ही खयाल रक्खा जाता है, जितना युद्ध की अद्यतन तैयारी का ! वे लोग जानते हैं कि बिना इसके वे अपने राष्ट्र को संसार के राष्ट्रों के बीच जिन्दा नहीं रख सकते। दुःख है कि हममें इस संबंध की कोई चेतना ही विद्यमान नहीं। जो है, वह इतनी निष्प्राण और निर्बल है कि हमारे राष्ट्रीय जीवन पर उसका कोई प्रभाव नहीं।

जीवन का संघर्ष हमारे यहां भी कुछ कम तीव्र नहीं। दिन प्रतिदिन उसकी भीषणता और तीव्रता बढती जा रही है; शोषण और विनाश की मात्रा उत्तरोत्तर बढ रही है, बेबसी के बन्धन असह्य हो रहे हैं, जीवन और मरण के संग्राम में हम भी रत हैं, पर हमारे पारिवारिक जीवन पर इस का कोई उल्लेख योग्य प्रभाव लक्षित नहीं होता। कारण इस का यह मालूम होता है कि सदियों की गुलामी ने हमारे जीवन की सम्पूर्णता को छिन्न-विच्छिन्न कर दिया है; हम खुद तो टुकड़े टुकड़ों में बँट ही गए हैं, जीवन को भी हम ने अनेक टुकड़ों में बांट दिया है, और अब हम सम्पूर्ण की उपासना या रक्षा में नहीं, बल्कि टुकड़ों की उपासना और रक्षा में लगे हैं। इसीलिए बाल-जीवन की सम्पूर्णता का भी कोई खयाल हमें छू नहीं जाता। जिस देश में और जिस समाज या परिवार में बच्चों की इतनी उपेक्षा होती हो, उसके उज्ज्वल भविष्य की आशा और कामना करते दिल धड़कता-सा है

व्यक्ति परिवार की, परिवार समाज की और समाज राष्ट्र की इकाई है। ये इकाइयां अपने आप मे जितनी सबल और सम्पूर्ण होती हैं, राष्ट्र भी उतना ही सबल और सम्पूर्ण बनता है। इस दृष्टि से जब हम अपने बच्चों का

विचार करते हैं, तो हमें दुःख ही दुःख होता है।

बच्चे हमसे अधिकार के साथ पूछ सकते हैं कि आखिर परिवार, समाज या राष्ट्र उन्हें दे क्या रहा है? वह कौन चीज है, जिसे पाकर वे गर्व और आनन्द से फूले न समायें? घर में बचपन से बच्चों को दुत्कार, फटकार और तिरस्कार के बीच जीना पड़ता है, स्कूल में सजा, इनाम, लालच, भय और आतंक का दौर दौरा रहता है। 'राज और समाज में' जी हूजूरी और खुशामद का जोर है। आदमी को हर जगह दबकर चलना पड़ता है। बच्चों को तो पग पग पर चलना पड़ता है—दबंग उनको कोई देखना पसँद नहीं करता ऐसी स्थिति में उनके तन-मन और आत्मा की शक्तियों का सुन्दर विकास हो, तो कैसे हो।

घरों की बनावट-सजावट देखिए, तो उसमें बच्चों के विकास की कोई गुंजायश नहीं। घरों में जितना कुछ होता है, सब बड़ों के लिए—उनकी सुख सुविधा पहले, बच्चों की बाद में। गरीबों और मध्यम श्रेणी वालों के तो क्या अमीरों के घरों में भी बालकों के लिए स्वतन्त्र कमरे और स्वतन्त्र सामान नहीं होता। बच्चों को बड़ों के बीच रहना पड़ता है, उनकी बड़ी-बड़ी चीजें बरतनी पड़ती हैं, और पग-पग पर अपनी हीनता का अनुभव करना पड़ता है। इस तरह की हीन वृत्ति वाले बच्चे जीवन में शुद्ध और प्रखर स्वाधीनता के उपासक क्यों कर बन सकते हैं? उन में सीधी-सच्ची मनुष्यता का विकास कैसे हो सकता है?

घर भी हमारे इतने छोटे और तङ्ग होते हैं कि उनमें बच्चों को अपने शारीरिक विकास के लिए विपुल अवकाश नहीं मिलता। न बच्चे घरों में खुलकर खेल-कूद सकते और न मन चाही प्रवृत्ति ही कर सकते हैं। घरों के रूखे-सूखेपन का, गन्दगी और बदसूरती का तो जिक्र करना ही फिजूल है। और घरों के कलहपूर्ण, कुत्सित वातावरण का तो कहना ही क्या? घर से बाहर समाज की तरफ देखते हैं तो वहां एक सन्नाटा नजर आता है। बच्चे समाज और राष्ट्र की अमूल्य निधि हैं, इसकी तो कल्पना भी हमारे यहां अभी परिपक्व नहीं हो पाई है। जिस तरह घरों में बच्चों का कोई वैयक्तिक महत्व नहीं, उसी तरह समाज में उनके लिए कोई सामूहिक चेतना नहीं। बच्चों के प्रति समाज और राज का भी कोई कर्त्तव्य है, इसका बहुत थोड़ा भान आज हममें है। तब बच्चे अपना विकास कहां करें और किस तरह करें? कोई कहे कि स्कूल कालेजों में उनका वास्तविक विकास होता है, तो वह गलत बात है। विकास की सच्ची उम्र तो बचपन है—शुरू बचपन के छः सात साल हैं—और ये छः सात साल तो हमारे यहां बच्चों को प्रायः व्यर्थ ही बिता देने पड़ते हैं। इन बरसों में उनकी उचित सार-सम्भाल की कोई सन्तोषजनक और देशव्यापी व्यवस्था हमारे यहां नहीं।

दाल रोटी से लगे हुए खुशहाल घरों में बच्चों को खाने-पीने और पहनने ओढने को तो जैसे-तैसे मिलही जाता है, लेकिन बच्चे हमारे इस दुनिया में सिर्फ शरीर ही लेकर तो नहीं आते मन मस्तिष्क और आत्मा भी उसके साथ होती है। और दुःख के साथ कहना पड़ता है कि जहां तक इन तीनों के पोषण और विकास का सवाल है, हमारे अच्छे अच्छे घरों में भी सूनापन नजर आता है। बच्चे मन, मस्तिष्क और आत्मा की दृष्टि से दिन-रात भूखों मरते हैं। उनकी जिज्ञासा का, उनकी रुचि का, उनकी शक्ति का और उनके मनोरथों का जितना अनादर हमारे परिवारों में होता है उतना अन्यत्र शायद ही कहीं होता हो। बच्चों के अनेक विध सवालों का जवाब देने की, उनकी सहज और शुद्ध जिज्ञासा को तृप्त करने की, घर में उनकी रुचि अनुकूल वातावरण का निर्माण करने की, उनकी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के विधिवत विकास का प्रबन्ध करने की, बाल-सुलभ मनोरथों को रम्य रूप देने की न तो हमें फुरसत होती है, और न उतनी सूझ बूझ या उत्साह ही हममें रहगया है। यह हमारे पारिवारिक जीवन की बहुत बड़ी त्रुटि है, और इसका परिमार्जन जितनी जल्दी हो उतना ही हितकर और आवश्यक है।

जिस तरह घरों में बच्चों के खान-पान और रहने-सहने की सुव्यवस्था होनी चाहिए, जिस तरह उनको घरों में

स्वस्थ प्रवृत्तियों से युक्त सुव्यवस्थित जीवन मिलना चाहिए, उसी तरह उनके मन-मस्तिष्क और आत्मा के विकास के लिए भी विविध प्रकार के आयोजनों का प्रबन्ध होना चाहिए। आज हमारे अधिकतर परिवार साहित्य, संगीत और कला की चर्चा व उपासना से सूने हैं; हमारे बच्चों को न घर में न समाज में, कहीं भी इनका पोषक वातावरण नहीं मिलता। परिणाम यह होता है कि बड़े होकर स्कूल-कालेजों में जब वे इन विषयों का अध्ययन करते भी हैं, तो वह काम परीक्षा के लिए होता है, उसके साथ उनके जीवनरस का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। जब जड़ ही नहीं सींची गई तो डाल-पत्तों को सींचने से क्या होता है!

आज जरूरत इस बात की है कि बच्चों के शारीरिक विकास के लिए गाँव-गाँव, गली-गली और मुहल्ले-मुहल्ले में सब साधनों से युक्त सुन्दर और सुहावने क्रीड़ांगणों में २॥-३ से लेकर १०-१२ वर्ष की उम्र के बच्चों को अपने शरीर के अङ्ग-प्रत्यंग का विकास करने की पूरी-पूरी सुविधा प्राप्त हो; उनको समूह में काम करने का और समूह के लिये जीने तथा मरने का प्रत्यक्ष शिक्षण मिले; और इस तरह के संघ-बद्ध क्रीड़ांगणों की विविध प्रवृत्तियों का वर्ष में एकाधिक बार बड़े पैमाने पर प्रदर्शन हों। जब इस तरह जिले-जिले में और प्रान्त-प्रान्त में हजारों लाखों बच्चों का क्रीडांगणों के रूप में एक सुदृढ सङ्गठन बन जायगा. और वे साल में एक या दो बार इस या उस केन्द्र में हजारों लाखों की संख्या में एकत्र होकर अपने विराट रूप का दर्शन करेंगे, तो अपने आप उनके तन पुलकित हो उठेंगे, और प्राणों में उत्साह और उमंग का अद्भुत सञ्चार हो उठेगा। उनकी सामूहिक चेतना प्रबल हो उठेगी और वे आत्मगौरव से युक्त होकर भी नम्र और विनयशील बन जायँगे।

क्रीड़ांगणों की तरह ही बौद्धिक और आत्मिक विकास के लिए तरह-तरह के सम्मेलनों और पर्यटनों की भी खास आवश्यकता है। इनसे बच्चों को एक वातावरण मिलता है। वातावरण से प्रेरणा मिलती है और प्रेरणा से सोई हुई शक्तियों का उदय और विकास होता है। आजकल हमारे सामाजिक जीवन में अवरोध, कुण्ठा और स्थिति-स्थापकता का इतना प्राबल्य हो गया है कि उसने मनुष्य को उसकी मनुष्यता से नीचे गिरा दिया है—उसे सब तरह पराजित और परास्त कर दिया है। अब वह एक लीक पर चलने के सिवा और कुछ कर नहीं सकता। दायें-बायें, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे देखने की शक्ति और स्फूर्ति वह खो बैठा है। वह अपने निर्माण किये बन्धनों में आप ही बुरी तरह जकड़ गया है। इस घातक जकड़ को ढीली करने का एक ही उपाय है कि हम लीक पर चलना छोड़ें, जरा लीक से हट कर चलने की हिम्मत दिखायें और एक नया रास्ता चलादें।

आज बच्चों के सामने घर हैं, घर के बाद स्कूल हैं और स्कूल के बाद! तीसरी कोई आकर्षक जगह नहीं। हमारे घरों की जो स्थिति है, वह हमसे छिपी नहीं, स्कूलों की जो हालत है, वह हमारी अनजानी नहीं। आखिर स्कूल भी तो हमने अपने ही जीवन के नमूने पर बनाये हैं न! उनमें नवीनता कहां से आये! नवीनता तो जीवन के साथ है—बिना नवीनता के प्राण कहां और बिना प्राणों के प्रवीणता कहां! यह प्राण, यह प्रवीणता, यह नवीनता पैदा करने के लिये हमें अपने बच्चों को नया वातावरण देना होगा। उनके लिए प्राण-पोषक नये स्थानों और नई प्रवृत्तियों का निर्माण करना होगा। उनके लिये कथा-कहानियों की आयोजना करनी होगी, सात्विक चर्चाओं का प्रबन्ध करना होगा; कवि सम्मेलन रचने होंगे, वाद्य और सङ्गीत के जलसों का बन्दोबस्त करना होगा, कला और दस्तकारी के छोटे-बड़े प्रदर्शनों की योजना करनी होगी; गाँव-गाँव, नगर-नगर और मुहल्ले मुहल्ले में बच्चों के लिए विविध वस्तुओं के संग्रहालयों और अजायबघरों की रचना करनी होगी; बच्चों को अपने प्रदेश और प्रान्त की चप्पा-चप्पा जमीन का प्रत्यक्ष परिचय कराना होगा; नदी, पहाड़, तालाब, झरने, बन-उपवन, खेत-खलिहान, कल-कारखाने, उद्योग-धन्धे पशु-

पक्षी, पेड़ पौधे तात्पर्य यह कि मानव-जीवन और प्राणी-जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सभी प्राकृतिक और सामाजिक चीज़ों का उन्हें आँखों देखा परिचय कराना होगा! तभी उनके दिलों में इन सब चीज़ों के लिए मुहब्बत पैदा होगी और वे इनकी रक्षा में अपने-आप को मिटा देने की अन्तःप्रेरणा और शिक्षा पा सकेंगे।

बच्चों के उन्मुक्त विकास का यही तरीका हो सकता है। इसी में देश, समाज, परिवार और व्यक्ति सब का कल्याण है। जब हम इस दृष्टि से इस सारे प्रश्न का विचार करते हैं, तो देखते हैं कि हमारे सामने भगीरथ काम पड़ा है। और यह काम एक-दो आदमियों के बूते का नहीं है। राष्ट्र का काम तो राष्ट्र की संयुक्त शक्तियों के यत्न से ही हो सकता है। आज बाल-विकास का काम राष्ट्र से ऐसी संयुक्त चेष्टा की अपेक्षा रखता है। लेकिन राष्ट्र तो आज विभक्त है—वह संयुक्त चेष्टा का बल कहाँ से लाये? प्रश्न गम्भीर हैं, और विचारणीय है। इस प्रश्न को हल करने में हमें अपनी सम्पूर्ण शुभ शक्तियों का विनियोग करना होगा—बिना दृढ और अटल श्रद्धा के हम इस दिशा में आगे नहीं बढ पायेंगे।

हमारे राष्ट्र के सब रोगों का एक ही रामबाण इलाज है—और वह यह है कि राष्ट्र का जो बाल-मन है उसकी रक्षा और विकास का हम जी जान से सही-सही यत्न करें। जड़ की ठीक से रक्षा करने पर डाल-पात की रक्षा का प्रश्न अपने आप हल हो जाता है। अगर हम हिन्दू-मुस्लिम एकता चाहते है, अस्पृश्यता-निवारण चाहते हैं, ऊँच नीच और अमीर-गरीब के भेदभाव को मिटाना चाहते हैं, समाज में समता और बन्धुता स्थापित करना चाहते हैं, अज्ञान और दारिद्रय का संहार किया चाहते हैं, श्रम देवता की प्रतिष्ठा बढाना चाहते हैं, स्वदेशी और स्वराज्य की स्थापना करने को उत्सुक हैं, स्वावलम्बन और पुरुषार्थ का व्यापक वातावरण तैयार किया चाहते हैं, तो हमें चाहिए कि हम बच्चों की शरण में जायँ उनकी सेवा और उपासना करें उनको अपना गुरु बनायें और उनके तन-मन के विकास का जितना उत्तम प्रबन्ध कर सकें, करें और फिर निरपेक्ष भाव से देखें कि बच्चे अपने लिए किस दुनिया का निर्माण करते हैं और वह दुनिया कितनी पावन व पवित्र होती है।

यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि हमने अबतक अपने बच्चों की शक्तियों को पहचाना नहीं, और पहचान कर उसका ठीक-ठीक उपयोग किया नहीं। यह सच है कि हमारी गुलामी और गरीबी ने भी हमें यह सब करने से रोका, पर उसमें हमारा अपना कुसूर, हमारी अपनी कमजोरी भी कुछ कम नहीं रही। आज भी हमारी वह कमजोरी मौजूद है और इसीलिए हम सही दिशा में प्रगति नहीं कर पा रहे हैं। दूसरे देशों में ऐसा नहीं हुआ। पिछले महा युद्ध में और महा युद्ध के बाद भी मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी को, दबाने में अपनी ओर से कोई कसर नहीं रक्खी, फिर भी चूंकि—जर्मनी में प्राणवाली स्त्री-पुरुषों की विपुलता थी, वह दबा नहीं, बल्कि सिर्फ दो दशकों यानी बीस बरस की तपस्या और साधना के बाद—फिर भले वह तप और साधना आसुरी ही क्यों न रहे हों—वह ऐसा दबंग हो उठा कि आज सारी दुनिया उसके आतंक से आतंकित है और उसकी शक्ति से चकित व दिङ्मूढ।

इसकी तह में भी जर्मनी की बालोपासना ही मुख्य है। पिछले बीस बर्षों में जर्मनी ने अपने देश के नौनिहालों पर तन-मन और धनकी जितनी कुर्बानी की उतनी कदाचित् ही किसी एक राष्ट्र ने इन बर्षों में की होगी। अगर आज जर्मनी अपनी इस कुर्बानी पर नाज करता है, और जर्मनी का नेता विश्व के मँच पर निर्भीक होकर शेर की तरह दहाड़ता है, तो उसमें आश्चर्य क्या है?

हमारे पूर्वजों ने भी किसी समय बालोपासना का यह मन्त्र सिद्ध किया था, तभी उन दिनों हमारे देश में राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, शिवाजी, प्रताप जैसों की परम्परा पैदा हुई थी और लोगों ने जीवन में एक धन्यता का अनुभव किया था। यह धन्यता दुर्लभ नहीं है—पर इस की शर्त बड़ी कड़ी है—और वह है बालदेवता की अनन्य उपासना।

आज तो हम सब क्या अपने घरों में, क्या समाज में, और क्या राजदरबार में, सर्वत्र मिट्टी के पुतले बनकर भीगी आँखों से निर्जीव की तरह तमाशा भर देख रहे हैं। प्राणों के अविरत स्पन्दन का अनुभव तो शायद जीवन में कभी करते ही नहीं। फिर उन्माद कहाँ से लायें? जीवन, जाग्रति, बल और बलिदान की अदम्य भावना कैसे पायें?

बच्चों का विकास शून्य में नहीं होता। विकास तो विपुलता चाहता है। स्थान की विपुलता, साधनों की विपुलता, धन की विपुलता, जनकी विपुलता, सङ्गठन, शक्ति, संयोजन, आयोजन और प्रयोजन की विपुलता। बिना विपुलता के विकास सम्भव नहीं। प्रकृति ने तो हम पर दया करके हमें सब प्रकार की विपुलता दे रक्खी है, पर अपनी अज्ञानता और अकर्मण्यता के कारण हम उसका रञ्चमात्र भी उपयोग नहीं कर पा रहे। इसीका फल आज हम भुगत रहे हैं। अब अगर हम चाहते हैं कि आगे यह फल हमारे बच्चों को इस बुरी तरह न भुगतना पड़े, तो हमें चाहिए कि हम अपनी घोर निद्रा से जाग जायँ, सजग और सावधान हो जायँ, संयुक्त हो जायँ, और संघ-बद्ध होकर अपने बच्चों की सेवा में तन-मन धन से श्रद्धा पूर्वक लग जायँ। इसमें न सिर्फ हमारे परिवार के विकास की कुँजी है, बल्कि समाज और राष्ट्र के विकास का मूलमन्त्र भी यही है। यहीं हमें आरम्भ करना चाहिए क्योंकि यही सब आरम्भों का आरम्भ है।

अन्त में मुझे यही कहना है कि परिवार का बच्चों के साथ अटूट और घना सम्बन्ध है। जैसे हमारे परिवार हैं, वैसे ही हमारे बच्चे हैं,— जैसे परिवार होंगे, वैसे बच्चे बनेंगे, आत्मसुधार सब सुधारों का मूल है। अगर हम चाहते हैं कि हमारे घर, समाज या देश का कल्याण हो, तो हमें सबसे पहले स्वयँ कल्याण-मार्ग का आश्रय लेना होगा और दृढता-पूर्वक उसपर बढते रहना होगा। माता-पिता जितना ही अपना सुधार करेंगे, उतना ही बच्चों का सुधार होगा। सुधार-सुधार चिल्लाने से या सुधार के सम्बन्ध में लम्बे-चौड़े भाषण कहने और लेख लिखने से कदापि सुधार न हो सकेगा। अगर इस तरह सुधार हो सकता, तो अबतक कभी का सुधार हो चुका होता।

आइये, आज के दिन हम अपने बच्चों के हित के लिए अपने समाज और देश के उत्कर्ष के लिए, कम से कम इतना निश्चय तो करें ही कि हम:—

(१) घर में अपने बच्चों के साथ सम्पूर्ण सम्मान और प्रेम का व्यवहार करेंगे। उन्हें कभी, किसी भी हालत में, सजा, इनाम लालच या रिश्वत न देंगे।

(२) उन्हें अकारण या सकारण किसी भी दशा में अपमानित लांछित नहीं करेंगे। ऐसा कोई काम न करेंगे, जिससे उनमें हीनता या लघुता के भाव पैदा हों।

(३) उनके जीवन की आवश्यकताओं का शास्त्रीय अध्ययन करने में मन लगायेंगे और घर में उनके विकास की यथा सम्भव अनुकूलता कर देंगे।

(४) उनमें घुलने मिलने और उनकी आकांक्षाओं तथा अभिलाषाओं से परिचित होने की पूरी चेष्टा करेंगे और अपनी शक्ति भर उनकी सहायता करने में पीछे न हटेंगे।

(५) उनको हर तरह की विशालता और विपुलता के बीच रखने की प्रबलतम चेष्टा करेंगे और अपने जीवन की समस्त हीनताओं व सङ्कुचितताओं का उन्हें तनिक भी स्पर्श न होने देंगे।

(६) उनके जीवन को हर तरह स्वतन्त्र, स्वावलम्बी और कर्मठ बनाने की चेष्टा करेंगे।

यदि आरम्भ में हम इतना भी कर सके, तो निश्चय ही अन्त इसका अत्यन्त उज्ज्वल और मधुर होगा। ईश्वर करे, हममें यह बुद्धि और शक्ति आये और इस दिशा में हम प्रबल वेग से आगे बढें। सर्वनाश के लिए नहीं, नव-निर्माण के लिए! अधिक क्या!

बुल बुले !

[रचियता—'यात्री']

कवि............

हे बुद् बुद प्रियदर्शी, फिर भी
उब डुब उब डुब करने वाले !
किस मस्ती में तुम झूम रहे
अपने को यों भूले भाले ?

बहुरंगी टोप लगाये तुम
चञ्चल तरंग तुरंगों पर चढ
मृदु मन्द अनिल से खेल रहे
पीछे हट हैट आगे बढ बढ

ये मन्द अनिल औ लघु तरंग
जिनके बल पर तुम नाच रहे
लो इन्हें परख, फिर मत कहना
ये झूठ रहे ये सांच रहे !

है अपने जीवन की लघुता
अति लघुता का भी ख्याल तुम्हें ?
यह हंसी खुशी यह अलमस्ती
कर दे न कहीं बेहाल तुम्हें !

बुद् बुद............

हम क्षणिक, सत्य, पर, जीवन का
किंचित् भी हमको मोह नहीं
कुछ नफा नहीं, नुकसान नहीं
आरोह नहीं, अवरोह नहीं

आए औ इधर उधर देखा
नाचे खेले प्रस्थान किया !
हम पल भर के मेहमान, वृथा
तूने कवि हम पर ध्यान दिया !

जिन उन्मद प्रभुओं के आगे
मानवता सिसकी भरती है
खानों में, अतल समुद्रों में
दब मरती, डूबा करती है

जिनकी दृढ़ मुट्ठी में दबकर
कर रहे श्रमिक जन आर्तनाद
जो उधर देख उनको समझा
जिनको न आ रही मौत याद

नर में नारायण

[सोमेश एम० ए०]

: १ :

दो मित्र थे । दोनो बूढे । नाम था: दीनू भाई और मनू भाई । देहात के किसान । सादगी के पुतले । कुदरत की गोद में पले-पुसे । बरसों से उनके मन में काशी-विश्वनाथ के दर्शनों की लालसा चली आती, किन्तु बुढापे के शिकार होने तक भी उनकी वह साध ज्यों की त्यों बनी रही ।

दीनू गोरा, लम्बेकद, इकहरे बदन का । बड़ा दयालु और खुश मिजाज । गुस्से से कोसों दूर । धर्म के बन्धनों को पूरी तरह नहीं पाल पाता, किन्तु था वह शान्ति का पुजारी । अपने घरवालों तथा पड़ोसियों का हमदर्द—उनके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझने वाला । उसकी वाणी से अमृत झरता, आंखों से दया टपकती । तम्बाखू पीने की लत थी । छोड़ने की प्रतिज्ञा करता, पर आदत से लाचार हो फिसल-फिसल जाता । थोड़ी बहुत खेती-बाड़ी थी । उसी में अपने लड़के, बहु और स्त्री के साथ कस कर काम करता और भगवान् का नाम ले सन्तुष्ट रहता ।

मनूभाई कुछ सांवला, नाटे कद का, मोटा प्राणी था—स्वभाव का गम्भीर, मन का दृढ और धर्म का कट्टर पालनेवाला । वह न कभी शराब पीता, न तम्बाखू । दुर्व्यसन उसके पास फटकने भी न पाते । कुटुम्ब उसका बड़ा था— स्त्री, दो लड़के, बहुएँ, नाती, पोते लम्बी-चौड़ी खेती-बाड़ी । खुशहाल, पर माया का लोभी ।

एक दिन दीनू भाई मनू भाई से बोला:''—काशी-विश्वनाथ के दर्शन का संकल्प हम कब पूरा करेंगे, मनू भाई ?''

मनू जरा घबराया सा बोला—''अभी तो कठिन है, दीनूभाई इस साल मेरे पास रुपयों की बड़ी कमी है । नाती की शादी में बहुत सा रुपया खर्च होगया । रहा सहा मकान बनाने में लग गया । अभी तो काम पूरा भी नहीं हुआ । सोचा था तीन सौ में सब पूरा हो जायगा, पर यहाँ तो चार सौ लगने पर भी काम पूरा नहीं हुआ ।''

''पर अब हम इस बात को कब तक टालते रहेंगे ? बुढापा है । एक पाँव कब्र में लटकाये बैठे हैं । कौन जाने कल रहें, न रहें ।······पूस में चलें तो कैसा रहे ?''

''समय तो ठीक रहेगा । पर बनते हुए मकान को छोड़ मैं कैसे चल सकता हूँ ?''

''तुम्हारे लड़के अब समझदार हो गए हैं । वे सब कर लेंगे ।''

''उनसे काम नहीं सँभलेगा, दीनू भाई !''

'हमारे मरने के बाद भी तो वे काम चलावेंगे ही । फिर अभी से क्यों न उन्हें घर-गृहस्थी के काम की देख भाल करने दी जाय ?''

''उनका मुझे भरोसा नहीं । वे खर्चीली आदतों में पड़ गये हैं । शराब पीते हैं ।······इसीलिये मन नहीं मानता कि अधूरे काम को छोड़, कहीं जाऊँ । और फिर खाली हाथ भी तो बाहर नहीं निकल सकते !''

''तुम्हारे जैसे आदमी को पैसे की क्या चिंता ? एक बार दिल थाम कर सोचलो और चलो । अब इस इच्छा को ज्यादा टालना ठीक नहीं ।''

: २ :

मनू को अपने मित्र की बात जँच गई । सोचा—घरबार

की देख भाल तो लड़के जैसे-तैसे कर ही लेंगे। पर आत्मा की देख भाल तो हमें ही करनी होगी न ?

आखिर दोनों रवाना हुए। चलते समय मनू ने काफी रुपये साथ लिये। घर के सब लोगों को काम-काज और उनकी जिम्मेदारियाँ समझा दीं। तीर्थ करने जाते २ भी घर की चिन्ता उस पर बराबर सवार रही। दीनू भाई घर का कोना कोना टटोल कर ७५) इकट्ठे कर सका। घर के लोगों से कहता गया—"शान्ति से रहना। ईमानदारी को कभी मत भूलना।······घर के बारे में तुम जानों तुम्हारा काम। तुम लोग खुद समझदार हो, मैं अधिक क्या कहूँ ? भगवान तुम्हारी सहायता करेगा।"

दीनू का रास्ता तय होता, हल्के और शान्त मन से। ईश्वर की लगन में—उसके बच्चों की सेवा की धुन में। किन्तु मनू का मन घर की चिन्ताओं से भारी-भारी रहता। उसे मकान की याद आती। पैसों का ध्यान रहता। खेती के बनने बिगड़ने की चिन्ता रहती। इन झंझटों में भूला-सा वह आत्मा की चिन्ता न कर पाता।

\+ \+ \+

लगातार तीन चार सौ मील के सफर में लोग हर तरह से इन मुसाफिरों की सहायता करते रहे—श्रद्धालु, भक्त लोग। पर अब वे एक ऐसे प्रदेश में जा पहुंचे, जहाँ चारों ओर अकाल का दौर-दौरा था। लोग भूखा मरते—अन्न के अभाव में घर के ढोर-डंगरों को मार पेट की ज्वाला बुझाने लगे। वन के पेड़-पत्तों पर दिन कटते। उन नर-कंकालों को देख पत्थर का भी दिल पसीज उठता। एक साथ इतने मरते कि दफनाने वाला भी न मिलता। सब ओर हाहाकार सा मचा हुआ था। गाँव के गाँव वीरान पड़े थे—घास फूस की सूनी झोपड़ियाँ मूक भाषा में, उनमें रहने वालों की दुःखदर्द भरी, रोमाञ्चकारी कहानी सुनातीं।

चलते-चलते दीनू ने तम्बाखू जलाई। मनू नाराज हो बोल पड़ा—"तीर्थ यात्रा में भी तुम धर्म का पालन नहीं कर सकते ! अरे, अब तो छोड़ो इस बुरी गन्दी आदत को।"

"लाचार हूँ, मनू भाई ! यह तो मुझ से भी ज्यादा ताकतवर है। इसने मुझे जकड़ सा लिया है। ···अच्छा मैं जरा पास के गाँव में पानी पी आता हूँ। तब तक तुम चलो।"

वह एक झोंपड़ी के पास गया और आवाज दी, पर जवाब नहीं मिला। तब उसने दरवाजे की साँकल हाथ डाल कर खोली और अन्दर झाँक कर देखा—एक ओर एक सुकुमार लड़की और लड़का सिकुड़ कर निर्जीव-से पड़े हैं। चूल्हे के पास एक जवान किन्तु चेतनाहीन स्त्री सोई है। पास में एक बुढ़िया टिमटिमाती-सी आँखें खोले उसकी ओर ताक रही है—बोलने की कोशिश करने पर भी शक्ति काम नहीं देती। दूसरे कमरे में एक युवक दीनू को देख बोलने का प्रयत्न करने लगा—"काल···औ···र ···बी···मा···री···से···हमा···री···यह···हा-हा···लत हो···गई···है।-भू-ऊ-ख···से मे···रे ब···अ···च्चे···मर···र···र-हे ए···हैं···।" वह आगे नहीं बोल सका। हाँफने लगा। दम जवाब दे गया।

दीनू ने सब बात समझली। उसने अपने झोले से रोटी का एक टुकड़ा निकाला और बच्चों को दिखाया। बच्चे हसरत भरी निगाह से देखने लगे। छोटी बच्ची ने हाथ फैलाया। बच्चे का मन भी ललचाया। लेकिन ताकत कहाँ बची थी जो सरक कर भी रोटी का टुकड़ा ले लेते। दीनू ने उन्हें रोटी खिलाई। फिर बुढ़िया को देने लगा। उसने अपने लड़के युवक की ओर इशारा किया। बेटे और माँ दोनों को दीनू ने रोटी खिलाई। पास के कुंए से पानी ला उन्हें पिलाया। अपना घर समझ कर उनके घर की सफाई की। बिखरी हुई चीजों को ठीक से जमाया। धीरे-धीरे युवक भी उसकी सहायता करने आ पहुँचा।

अपने पास के आटे-दाल से खाना बनाते-बनाते दीनू ने उससे पूछा—"तुम्हारा क्या जरिया है ? खेती नहीं है क्या ? हल-बैल तो कहीं नहीं दीखते। सारा गाँव सुनसान पड़ा है, तुम्हीं कैसे बच रहे।"

युवक बोला—"इस साल बारिश एक बूंद नहीं हुई। घास-चारे का कोई बन्दोबस्त न हो पाया। एक-एक करके मेरे सभी बैल चल बसे। अनाज पैदा न हुआ। पुराना जो था, सो चुक गया। लगान देने को पैसे कहाँ से जुटते। जमींदार ने खेती निलाम करादी। कुछ दिन माँग कर खाया। देने वाले भीख भी कहाँ तक देते! उनके पास भी तो कुछ नहीं बचा। कुछ दिन पत्तों पर काटे। आखिर लाचार होगये। हाथ-पाँव जवाब दे गये। चार दिन से इन बच्चों के और हमारे मुंह में अन्न का एक दाना भी नहीं गया। पानी भी नहीं मिला। लाता कौन? इतने में तुम आये—भगवान् के दूत बन कर और हमें मौत के मुंह से बचा लिया। हम मर ही जाते, बाबा! एक-दो रोज जीकर भी तो वही होना है। तुम क्यों हम पापियों के लिये तकलीफ उठाते हो?"

: ३ :

दीनू अब बड़े पशोपेश में पड़ गया। वह क्या करे? मनू तो आगे बढ चुका होगा। न मालूम कहाँ तक पहुंचा होगा? पर वह इन लोगों को मँझधार में छोड़ कर कैसे जाय? मौत के मुंह से छीन, फिर मौत को कैसे सौंपदे? ...उसने तय कर लिया कि जब तक ये लोग अपने पाँव पर खड़े होने लायक न बन जायँ, वह आगे न बढ़ेगा। लेकिन यह होगा कैसे? जब तक इनके लिये बैल न खरीदे जायँ और इनका खेत न छुड़ाया जाय, तब तक तो यह सब किया कराया पानी में ही मिलने वाला है। ...लेकिन इसके लिये रुपये? साथ का खाना-पीना तो यहीं खतम हो जावेगा। अगर रुपये भी यहीं खर्च करदूँ तो फिर काशी कैसे पहुंचूंगा? मेरी मिन्नत कैसे पूरी होगी? यदि मिन्नत पूरी न कर सका, तो क्या भगवान् के सामने झूठा नहीं साबित होऊँगा? मेरी आत्मा कितनी नीचे गिर जायगी ऐसा करने से? ...लेकिन ...लेकिन ये लोग भी तो भगवान् के बन्दे हैं—उसी के अंश हैं! इनकी सेवा करने से भगवान् की सेवा और उपासना नहीं की जा सकती? दीन-दुखियों की सेवा-सहायता नहीं की जा सकती? दीन-दुखियों की सेवा सहायता नहीं की तो भगवान् फल-फूल चढाने से—तीर्थ करने से ही कैसे खुश होगा? ...इन लोगों की मदद करता हूँ, तो मिन्नत अधूरी रहती है। मिन्नत पूरी करता हूँ, तो ये लोग मौत के शिकार होते हैं। क्या करूँ भगवान्! इन्हें रोते-बिलखते छोड़ मैं तीर्थ कर भी लूँगा, तो कितना पुण्य कमा पाऊँगा?" बहुत सोच-विचार के बाद आखिर वह इसी नतीजे पर पहुँचा कि गरीबों की सेवा ही प्रभु की सेवा है।

उसी दिन वह दो बैल खरीद लाया शहर से और जमींदार को रुपया दे उनका खेत भी छुड़ा लिया उसने। फिर उस कुटुम्ब को सब तरह पेट पालने लायक बनाकर एक रात बिना कहे वह आगे बढ गया। बच्चे उसे दादा कहते। युवक और युवती उसे अपना जीवन-दाता मानते। बुढिया के साथ तो बूढ़े दीनू भाई की चार दिन में चार युग-सी मित्रता हो गई थी।

कुछ दूर जाकर दीनू ने सन्तोष की साँस ली। पर जेब टटोलने पर मालूम हुआ कि रुपये इतने भी नहीं थे कि वह काशी पहुंच सके। भगवान् की यही मरजी है—यह कह कर वह घर की ओर लौट पड़ा।

घर आने पर सब लोगों ने आश्चर्य से पूछा—"क्या काशी धाम कर आये? ...गंगा-जल कहाँ है?"

"काशी विश्वनाथ की इच्छा ही नहीं थी कि मैं उनके दर्शन करूँ। मेरे रुपये गफलत में कहीं गिर गये, और मुझे लौट आना पड़ा। मेरा मित्र मनू भाई तो भाग्यवान है। वह जरूर विश्वनाथ के दर्शन करेगा—मेरे हिस्से का पत्र-पुष्प भी वही चढा आयेगा।" दीनू हँसते-हँसते बोला।

इससे किसी को भी बुरा नहीं लगा। पत्नि अपने जीवन का सहारा पा फिर से फूली न समाई। बहू और बेटे को उसके चले जाने से ऐसा लगता था; मानो उनकी आत्मा

ही चली गई हो। उसके आ जाने से उनमें फिर नया जीवन आ गया। वे नये जोश से घर-बार के काम में जुट गये। दीनू ने देखा घर का सब काम व्यवस्था पूर्वक चल रहा है। कहीं कोई कमी नहीं। वह भी शांति से काम में लग गया। तीर्थ नहीं कर सकने का उसे जरा भी बुरा न लगा। वह ऐसे रहने लगा मानो कुछ हुआ ही न हो।

: ४ :

मनू भाई ने अपने मित्र का बड़ी देर तक रास्ता देखा। देखते-देखते उसकी आँखें पथरा गईं। पर दीनू का कहीं पता नहीं। एकाध बार वह सो भी लिया। आँख खुलने पर भी जब दीनू नहीं आया तो सोचा, शायद आगे निकल गया हो। रास्ते में नहीं तो प्रयाग या काशी में अवश्य मिलेगा। वह आगे बढा। रास्ते में कई यात्री केवल धर्म के शरीर तक पहुँच कर सन्तुष्ट रहने वाले उसे मिले, धर्म की आत्मा से उनका कोई नाता-रिश्ता न था। मनू भाई भी तो वहाँ तक न पहुंच रहा था। दुनियादारी उसका पिंड नहीं छोड़ रही थी। घर की चिन्ता का बोझ लिये वह बढ रहा था। यात्रियों के कार्यों की टीका-टिप्पणी भी मन ही मन करता चलता। पैसों की थैली! उसे भी वह समय-समय पर टटोलना न भूलता। ...इस तरह भगवान् की माया तक तो उसकी पहुंच थी, पर भगवान् तक नहीं।

प्रयाग पहुँच कर उसने संगम पर स्नान किया। पुरखों को श्रद्धाञ्जलि दी। बड़ी भक्ति, बड़ी श्रद्धा से ब्राह्मणों को दान दिया। वहाँ का पवित्र जल पीकर कृत-कृत्य हुआ। किले के पावन वट-वृक्ष की पूजा की। वहाँ से काशी गया। पाण्डे जी के साथ पञ्चकोशी की। शिवरात्रि के शुभ दिन विश्वनाथ के दरबार में पहुंचा। बड़ी भाड़। तिल रखने की भी जगह न थी। वह दूरी पर ऊँची जगह, फल फूलों का उपहार लिये शङ्कर की ओर तन्मय हो देखा किया—देखते-देखते उसे लगा जैसे दीनू भगवान के चरणों में माथा निवा रहा हो। चेहरे से उसके प्रकाश फूट रहा था। वह शांत, गम्भीर, प्रसन्न—शिव की भक्ति में तल्लीन। मनू सोचता—इतनी जल्दी दीनू यहाँ कैसे पहुंचा? मेरे बाद ही न वह रवाना हुवा होगा? उसके लिये वह दरवाजा रोक खड़ा रहा, खड़ा रहा, पर दीनू नहीं लौटा। आखिर वह भी शिव की शरण में गया। चन्दन, फल फूल चढाये। चरणामृत ले मतवाला हो उठा। फिर माँ अन्नपूर्णा की झाँकी देखी। देख कर गद्‌गद् हो गया। वहाँ भी दीनू उसे माँ के चरणों पर सिर गिराए दीखा।

मनू भाई ने काशी जी में दिल खोल कर दान-पुण्य किया। गंगा-जल खरीदा। काशी-विश्वनाथ का प्रसाद किया, और प्रसन्नता पूर्वक घर लौटा। न काशी में, न रास्ते में; कहीं भी दीनू से न मिल पाने का उसे दुःख रहा।

\+ \+ \+

रास्ते में वही गाँव उसे मिला, जहाँ दीनू भाई कुछ दिन रह गये थे। वह उसी झोंपड़ी के सामने पहुँचा, जिसके रहने वालों को दीनू ने मौत से उबारा था। उसे देखते ही एक खिली-सी बालिका दौड़ती उसके पास आई और "दादा, दादा!" कहती उसके कुरते का छोर पकड़ अन्दर ले गई। इतने में ही उसकी माँ एक सलौने बालक को गोद में ले आई और कहने लगी—"आओ, दादा! बैठो। आज हमारे मेहमान बनो। हमारी कुटिया पवित्र करो। हम गरीब आपकी क्या खातिर कर सकते हैं, दादा?"

मनू यह आव-भगत देख भौंचक-सा रह गया। युवती कहने लगी—'कुछ समय पहले बिलकुल तुम्हारे जैसे एक बूढ़े बाबा आये थे—गरीबों के दीनानाथ बन कर। उन्हीं ने हमें जिलाया और जीना सिखाया। हम अन्न बिना मर रहे थे। ईश्वर और मनुष्य को कोस रहे थे। परन्तु उन्होंने हमें जीने का उद्देश्य बतलाया। पशु से हमें मनुष्य

बनाया। सेवा और सहानुभूति का पाठ पढ़ाया। आज हम मनुष्य को मनुष्य— नहीं, प्रभु का साकार रूप समझने लगे हैं।" और वह मनू के लिए हाथ-मुंह धोने का पानी ले आई। उन्हें बैठाकर उनके सामने रोटी, दूध, मक्खन परोस बड़ी श्रद्धा से खिलाने लगी।

—"और, बाबा! एक दिन अपने दिल का सारा प्यार हम पर उड़ेल वे चुपके-चुपके कहीं चल दिये। हमें अपनी सेवा का मौका भी नहीं दिया।"

मनू खाते-खाते सोचने लगा—"मेरे जैसा बूढ़ा दीनू के सिवा और कौन हो सकता है! जरूर वही यहाँ आया होगा। शायद उसीने प्रभु को सच्ची तरह पूजना सीखा है–दीन दुखियों में! उसकी सेवा मंजूर भी की ईश्वर ने। पर मैं? क्या भगवान् ने मेरी सेवा……?"

: ५ :

कुछ दिनों बाद वह घर आया। देखा घर का सब काम बिखरा-बिखरा था। खेती-बाड़ी भी उसकी जुदाई के आँसू बन्द न कर पाई थी। लड़कों ने अन्धाधुन्ध खर्च किया था। गृहस्थी उजड़ी-सी दीखती थी। उसने लड़कों को डांटा—वे सामने आ गये। "भगवान्! यह सब मैंने क्या कमाया तीर्थ करके?"

मनू उड़ा-उड़ा-सा दीनू को मिलने गया। दीनू जुआर उफन रहा था। मित्र को देख मुसकराता पास आया और बोला—"राम राम, मनू भाई! तुम सही सलामत विश्वनाथ के दरबार में पहुँचे थे न?"

गंगा-जल की एक लोटी देते हुए मनू ने कहा—"भाई! मैं शरीर से वहाँ तक जरूर पहुंचा था, लेकिन क्या भगवान् ने मेरी पूजा स्वीकार की होगी?"

"प्रभु की दया है तुम पर, जो तुम्हें उनके दर्शन-लाभ हुए।"

"मेरा शरीर वहाँ तक गया, किन्तु मुझे शक है कि मेरी आत्मा वहाँ तक नहीं पहुंच पाई। किसी और की चाहे…!" मनू उदास हो बोला।

"कर्त्ता धर्त्ता सब भगवान् है, मनू भाई!"

"भैया दीनू, काशी से लौटते समय मैं उस झोपड़ी का मेहमान बना था, जहाँ तुम गये थे और तुमने……।"

दीनू ने सकपका कर पूछा—"बाल-बच्चे तो खुश हैं?" और बातचीत का सिलसिला बदल कर वह घर की बातों पर आगया।

पर मनू की आँखों के सामने उस झोपड़ी के वे श्रद्धालु लोग और काशी-विश्वनाथ और माँ—अन्नपूर्णा की शरण में बैठा हुआ प्रसन्नचित्त दीनू नाचने लगा।

उसने भली-भाँति समझ लिया कि धूप दीप-नैवेद्य में प्रभु की उपासना नहीं, नर की सेवा में नारायण की सच्ची सेवा, उपासना और आराधना का मूल-तत्व छिपा हुआ है।*

---

*महात्मा टालस्टाय की "Two old men" नामक कहानी के आधार पर।

हिन्दुस्तान में वस्त्र का उत्पादन और उसकी खपत

१९३९—४०	करोड़
१. कुल हिन्दुस्तानी मिलों से तैयार हुआ (बाहर भेजे गये माल के अतिरिक्त)	३७९ वर्गगज
२. करघों पर हाथ से बुना गया	१८० ,,
३. हाथ कते सूत से खादी बनी	१०२ ,,
४. हिन्दुस्तान में परदेश से सूती कपड़े का आयात	५६ ,,
६. हिन्दुस्तान को इस्तेमाल के लिए कुल कपड़ा हासिल हुआ	६१६ ,,

अमेरिका का स्वातन्त्र्य-युद्ध और वहां की राज्य व्यवस्था

[गिरिराज बी. ए. गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद]

[गतांक से आगे]

पार्लियामेंट में अमेरिका सम्बन्धी विचार— स्टाम्प एक्ट के पास हो जाने और उसके जारी करने के बीच के समय में इंगलैंड में मन्त्रीमण्डल बदल गया, दूसरा आदमी प्रधान मन्त्री हुआ। नये मन्त्रीमण्डल की सहानुभूति किसी अंश तक उपनिवेशों के साथ थी। इंगलैंड में जनता को स्टाम्प एक्ट की बाबत कुछ पता न था। सबसे पहले बादशाह, जार्ज तीसरे, को ही इसकी गम्भीरता मालुम हुई। उसने मन्त्रियों को लिखा—"अमेरिका की हालत जान कर दुःख होता है। इसका कहाँ अन्त होगा कहा नहीं जा सकता। पार्लियामेंट के सामने जितने प्रश्न हैं उनमें सबसे ज्यादा गम्भीर यह है। अतः इसे बड़ी शान्ति से विचार करने की जरूरत है।" पार्लियामेंट की बैठक दिसम्बर १७६५ में हुई। स्टाम्प एक्ट के पक्षपातियों ने कहा—"कर लगाने का अधिकार सिद्ध हो चुका है, व्यापार सम्बन्धी जितने कानून बनाये गये हैं वे अगर कर लगाने के अधिकार को नहीं बताते तो और क्या बताते हैं? हमने अपने उपनिवेशों को दूसरे देशों के उपनिवेशों की अपेक्षा कहीं ज्यादा आजादी दे रक्खी है। अब तक हम उनके रक्षण का खर्च बरदाश्त करते रहे हैं। किन्तु अब कर्ज ज्यादा हो जाने के कारण सारा खर्च नहीं बरदाश्त किया जा सकता, उनको जरूर इस हालत में रक्षण का सब खर्च नहीं तो उसका कुछ भाग सहन करना ही चाहिए। स्टाम्प एक्ट इसी खर्च को पूरा करने के लिए लगाया गया है।

स्टाम्प एक्ट स्थगित — इस मामले में पिट से भी सलाह ली गई। वह बीमार था, मगर फिर भी पार्लियामेंट की बैठक में आया। उसने बड़े जोर से कहा, "राजकीय स्वतन्त्रता (Poltical freedom) का अर्थ ही अपनी इच्छानुसार कर लगाना है। पार्लिमेंट को उपनिवेशों पर टैक्स लगाने का अधिकार नहीं है, हां कानून बनाने का इसे अधिकार है। कानून बनाने और टैक्स लगाने में जो फर्क है वही मूल बात स्वतन्त्रता की जड़ में है। उपनिवेश अपनी-अपनी सभाओं में अपने प्रतिनिधियों की सलाह अनुसार अब तक टैक्स लगाते आये हैं, अब इस पद्धति में क्यों परिवर्त्तन किया जाय। खुशी की बात है कि अमेरिका ने इस कानून का विरोध किया, क्योंकि यह गलत सिद्धांत पर बनाया गया है। इसको रद किया जावे और उपनिवेशों को बता दिया जाय कि सिवाय उनकी जेबों से पैसा निकालने के और दूसरी बातों में पार्लिमेंट को उन पर अधिकार है।" बर्क और उसके कई साथियों ने भी पिट का समर्थन किया और स्टाम्प एक्ट को रद करने की सलाह दी। इस तर्क-वितर्क का यह असर हुआ कि १७६६ में स्टाम्प एक्ट रद कर दिया गया; यह इसलिए नहीं कि पार्लिमेंट को उपनिवेशों पर कर लगाने का अधिकार नहीं है, बल्कि इसको अमल में लाने में बहुत ज्यादा कठिनाइयां हैं और इससे इङ्गलैंड के व्यापार को बहुत धक्का लगने की सम्भावना है। कर लगने के अधिकार को सिद्ध करने के लिए इसको रद करने की आज्ञा के साथ यह घोषणा भी की गई कि पार्लिमेंट को उपनिवेशों पर कर लगाने का अधिकार है।

दंगों में हुये नुकसान का मावजा— यह

समाचार जब अमेरिका पहुँचा तो वहां बड़ी खुशियां मनाई गई और स्टाम्प एक्ट के रद्द हो जाने के आनन्द में किसी ने भी नई घोषणा पर ध्यान न दिया। अंग्रेजी माल का जो बहिष्कार जारी था उसे बन्द कर दिया गया और बादशाह की जन्मगाँठ के दिन (Philadelphia) फिलाडलफिया वालों ने इंगलैंड के बने हुए कपड़े बनवाये और पुराने कपड़े गरीबों को दे दिए गए। कई उपनिवेशों में बादशाह और प्रधान मन्त्री पिट के बुत खड़े करने के प्रस्ताव पास किये गये और ग्राम सभाओं में बादशाह, प्रधान मन्त्री और मन्त्री-मण्डल का आभार माना गया तथा इस आशय के प्रस्ताव पास किये गये। किन्तु इस एक्ट के रद्द होने से पार्लिमेंट की नीति में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया था। अमेरिका में हालत हां ऐसी हो गई थी कि वहां न तो स्टाम्प ही भेजे जा सके थे और न कोई स्टाम्प बेचने वाला ही मिल सकता था। स्टाम्प एक्ट के रद्द करते समय गवर्नरों को आज्ञा दी गई थी कि जिन लोगों का स्टाम्प एक्ट विरोधी दङ्गों में नुकसान हुआ है उन्हें मुआवजा दिलवाया जाय। सिवाय एक-दो उपनिवेशों के और सब में इसका खूब विरोध हुआ और बड़ी मुशकिल से रुपया मंजूर किया गया। (Massachusetts) मेसेच्युसेट्स ने, जहां बहुत ज्यादा नुकसान हुआ था, मुआवजे का रुपया मंजूर करने से इन्कार कर दिया और फिर बहुत समय बाद बड़ी मुशकिल से मंजूर किया। किन्तु इसके साथ-साथ यह भी पास कर दिया कि दंगों के सम्बन्ध में किसी को किसी किस्म की सजा न दी जाय।

राजकीय स्थिति पर मेसेच्युसेट्स गवर्नर की राय—वहां के गवर्नर ने शाही अफसरों की स्थिति उपनिवेशों में बहुत खराब बतलाते हुए मन्त्री मण्डल को लिखा—"जब तक कार्यकारिणी कमेटी (Executive-council) को उपनिवेशों की सभायें (Legislative-council) चुनती रहेंगी और सब शाही अफसरों का वेतन उनके (उपनिवेशों की सभाओं) हाथ में रहेगा तब तक किसी भी कानून पर अमल कराना मुमकिन नहीं। इसलिए कार्यकारिणी कमेटियों का चुनाव बादशाह करे और शाही अफसरों के वेतन के लिए एक निश्चित रकम मुकर्रर कर दी जाय। उसमें से सबको वेतन मिलता रहे। उसको कम करने का अधिकार उपनिवेशों की सभाओं को न रहे। कई उपनिवेशों को विधानों में बहुत स्वतन्त्रता दी हुई है, इसलिए स्थायी तौर पर सब उपनिवेशों के प्रतिनिधियों की पार्लियामैंट बुलाकर सबकी राज्य-व्यवस्था एक सी कर दी जाय।"

फौजी जरूरतों का विरोध—मेसेच्युसेट्स सभा ने ओटिस (otis) को, जिसने स्टाम्प एक्ट के विरुद्ध प्रचार में बहुत काम किया था, अपना सभापति चुना। मगर गवर्नर ने उसे मंजूर न किया; इस पर सभा (Assembly) ने पुरानी प्रणाली को छोड़कर कार्यकारिणी कमेटी में उपनिवेश के मन्त्री और दूसरे कई जिम्मेवार अफसरों को नहीं रखा। इससे आपस में खेंचा तानी शुरु हो गई। पार्लिमेंट ने फौज की जरूरतें पूरा करने सम्बन्धी जो आज्ञायें उपनिवेशों के लिए जारी की थी, वह सभा के सभ्यों को बहुत बुरी मालूम हुई, और बोस्टन में इस प्रश्न पर गवर्नर के साथ बहुत झगड़ा हुआ। न्युयार्क ने तो उनको स्वीकार करने से ही साफ इन्कार कर दिया। डिकिंसन ने, जो एक वकील था, कहा कि अगर पार्लिमेंट फौज के लिए एक भी चीज देने के लिए हुक्म कर सकती है, तो जरूर उसे टैक्स लगाने का भी अधिकार है। यह कह कर उसने उन आज्ञाओं का खूब विरोध किया।

फौजी आज्ञाओं की अस्वीकृति—इङ्गलैंड में स्टाम्प एक्ट के हिमायतियों की राय यही रही कि अगर एक्ट पर दृढता पूर्वक अमल किया जाता तो जरूर उसमें सफलता प्राप्त होती। पार्लियामैंट के सब सभ्यों की, सिवाय दस बीस को छोड़कर कानूनी राय थी कि फौज का खर्च अमेरिका ही उठाये। अतः जब इंगलैंड में यह खबर पहुंची कि न्युयार्क ने फौज सम्बन्धी पार्लिमेंट की आज्ञाओं

को अस्वीकार कर दिया है तो देश में खूब जोश पैदा हुआ और पिट जो स्टाम्प एक्ट का विरोधी था कहने लगा स्थिति नाजुक है। उपनिवेशों के इस किस्म के बरताओं से उनके हिमायतियों को कुछ भी कहने की गुञ्जायश नहीं रहती।" उपनिवेशों के शाही अफसर एक मत थे कि कानूनों पर अमल कराने के लिए शाही फौज का होना निहायत जरूरी है और कम से कम गवर्नर और न्यायाधीशों को तो वेतन के मामले में उपनिवेशों की सभाओं का मुंह न देखना पड़े। इस प्रकार न्युयार्क की खुल्लमखुल्ला अवज्ञा को देखकर १७६७ में पार्लियामैंट ने निम्नलिखित तीन कानून पास किये।

(१) न्युयार्क की धारा सभा (Legislative Assembly) को स्थगित यानी उसकी बैठकों का होना बन्द कर दिया गया और गवर्नर को हुकम दिया कि जब तक फौज सम्बन्धी आज्ञा को स्वीकार न कर लिया जाय किसी भी कानून को मंजूर न किया जावे (२) एक कमेटी खूब अधिकार देकर नियमों के पालन कराने के लिए बनाई गई (३) शीशे, जस्त, रङ्गों, कागज और चाय की आमद पर महसूल लगाया गया। इससे जो आमदनी हो वह शाही अफसरों के वेतन पर खर्च हो और जो कुछ बचे वह उपनिवेशों के रक्षण पर काम में लाई जाय। व्यापार सम्बन्धी कानून पर अमल कराने के लिए इजाजत दे दी गई कि बिना महसूल दिये हुये माल की जांच करने के लिए घरों की तलाशी लेने के लिए वारँट जारी कर दिये जायें।

पार्लियामैंट का ख्याल था कि अगर सख्ती और दृढता से काम लिया गया तो कानूनों का पालन कराने में सफलता हो जायगी और उपनिवेशों पर काबू जम जायगा। किन्तु अब हालत कुछ और ही थी। स्टाम्प एक्ट के वक्त टैक्स के जो दो भाग अन्दरुनी (Internal) और बाहरी (External) किये गये थे उन्हें अब बालाये ताक रख दिया गया। १७६५ में बाहरी टैक्स का विरोध नहीं किया गया था, इसलिये पार्लिमैंट ने अब बाहरी टैक्स लगाये। यह तीन जो नये नियम बने उनसे अमेरिका में और भी अशान्ति फैल गई। शाही अफसरों पर उनके वेतन की मँजूरी देने को, जो उन पर दबाव था वह नये कानून से जाता रहा। यह अमेरिका वासियों को बहुत बुरा लगा। जब देश को किसी शत्रु का भय नहीं तो स्थायी-सेना क्यों रखी जाय? अतः सेना रखने का मतलब बस उपनिवेशों को अपने चँगुल में ही फँसाये रखना हो सकता है, यह बात उनके मन पर जम गई। ऐसा समझना, बिलकुल ठीक ही था, फौज के रखने का मतलब सोलह आने यही था। अतः जो नये प्रतिबन्ध लगाये गये थे वे अमेरिका के हक में न थे।

कानूनों के विरुद्ध देश में आंदोलन दंगे—

सबसे पहले मेसेच्युसेटस ने इन कानूनों का विरोध देश में करना शुरु किया और इनके सामने झगड़ा किया। वहां की सभा ने इन नियमों को गैर कानूनी ठहराया और इस आशय का एक प्रस्ताव भी पास कर दिया। उसने दूसरे उपनिवेशों से भी दरख्वास्त की कि वह भी इस तरह के प्रस्ताव पास करें और नये कानूनों को रद करने की संयुक्त मांग पेश की जाय और एक अर्जी बादशाह को भी भेजी जाय। अकस्मात् अब फिर इङ्गलैंड के मन्त्री-मण्डल में परिवर्त्तन हो गया और लार्ड नार्थ जैसा आदमी जो उपनिवेशों पर कर लगाने के पक्ष में था, प्रधान-मन्त्री हुआ और मन्त्री मण्डल में जो अमेरिका के साथ सहानुभूति रखने वाले सभ्य थे, सब निकल गये। अस्तु, उपनिवेश मन्त्री ने सब गवर्नरों को लिख दिया कि मेसेच्युसेट्स वाला प्रस्ताव किसी भी उपनिवेश की सभा में पास न होने पाये; और मेसेच्युसेट्स को पास किये हुये प्रस्ताव को रद करने को लिखा। वहां की सभा ने इसे रद करने से इन्कार कर दिया। ९२ के मुकाबले में कुल १७ ही सभ्य ऐसे निकले कि जो रद करने के पक्ष में थे। अतः वहां की सभा को बन्द कर दिया गया। इसी कारण से वर्जिनीया' मेरीलेण्ड, जार्जिया, उत्तरी केरोलिना और न्युयार्क की सभायें भी बन्द कर दी गईं। अब मामला काफी बढ गया और दोनों देशों में खूब खेंचातानी शुरु हो गई।

(क्रमशः)

हिन्दी परीक्षा मन्दिर

सम्पा० चन्द्रकान्त बाली शास्त्री प्रभाकर
श्रीराम निकेतन, मुल्तान सिटी

१. परिचयात्मक छन्द
२. उपन्यास······

हमने दीपक का अगला अङ्क परीक्षाङ्क निकालने का आयोजन किया है। लेखक महानुभावों से प्रार्थना है कि वे इस शुभ संकल्प में हमें पूर्ण सहयोग दें। —च

जिस प्रकार मानव शरीर अस्थि मांस मज्जा से संयोजित होकर बाह्य चर्म से ढका हुआ होता है और आत्मा ही उसकी मानवता को सार्थक करती है, वस्त्रालङ्कार उसको अलकृत करते हैं, पंगु आदि कायिक दोष उसे दूषित करते हैं; ठीक इसी प्रकार पद्य-काव्य-रूपी पुरुष सार्थक शब्द समूहरूपी अस्थि मांस मज्जा आदि से संयोजित रहकर छन्दरूपी बाह्य वस्त्र से सुन्दर हो उठता है और उपमा आदि अलंकारों से अलंकृत होता है। रस उसमें आत्मा का स्थानी होता है। छन्द का विकास कब हुआ है? इसका उत्तर बहुत गम्भीर है। इस समय वेद ही एक हिन्दू प्राचीन साहित्य माना जाता है। उसका अध्ययन (अग्नि मीले पुरोहितं यज्ञस्य) आदि मन्त्रों से गायत्री उष्णिक् आदि छन्दों का ज्ञान होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि छन्दः शास्त्र वैदिक कालीन अवश्य है, इससे भी अर्वाचीन हो हम नहीं कह सकते। कहा जाता है कि शेष का अवतार धारण करके पिंगल ऋषि ने भूमण्डल पर पदार्पण किया। कुछ समय इनकी जीवनचर्या उत्तम व्यतीत हुई। एक दिन नागारि गरुड़देव शत्रुत्व के नाते इनको खाया चाहते थे। 'परोपकाराय सतांविभूतयः' इस मत का मंडन करते हुए उन्होंने गरुड़ से अभ्यर्थना की कि हमें एक अत्युत्तम वेदांग 'छन्दः शास्त्र' का ज्ञान है। उसे पढ़कर भूमण्डल पर विस्तृत कर दीजिए। विष्णु-वाहन की स्वीकृति से शेष जी पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक छन्दशास्त्र लिखते गये और अन्त में समुद्र मार्ग से पाताल पधारे। यह बात कहां तक सत्य है? हम इसका निर्णय नहीं कर सकते। कोई बिना छन्दः शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किए काव्य रचना के आनन्द का आस्वादन करें, ऐसा असम्भव है। प्राचीन साहित्य का अवलोकन करें तो उस समय की साहित्य परम्परा हमें इस परिणाम के समीप पहुँचाती है कि रीति कालपर्यन्त छन्दः ही अधिक थे। यह एक ऐसी रसायनिक शक्ति है जो शीघ्र स्मरण कराने वाली और सानन्द प्रद होती है। अद्भुत हार्दिक प्रफुल्लता मयी रस की अनुभूति भक्ति कालीन तुलसी सूर आदि कवियों में जितनी पाई जाती है उतनी आधुनिक कवियों में नहीं। इसका प्रधान कारण यही है कि वह समय छन्दः शास्त्र का पूर्ण अध्ययन था।

वर्णों तथा मात्राओं की गति एवँ यति का पूर्ण ज्ञान जिससे हो उसे छन्द कहते हैं। इसका सम्बन्ध प्रायः पद्यों से होता है। यद्यपि कर्त्ता, कर्म, क्रिया के अनुसार वाक्य की योजना इनमें नहीं देखी जाती और साथ ही इनमें यथावश्यक शब्दों को भी विकृत कर दिया जाता है। छंदों के द्वारा पद्यों में इस प्रकार की मनोरञ्जकता का संचार हो जाता है कि वे केवल मनुष्यों को ही नहीं। अपितु पशुओं को भी वशीभूत कर लेते हैं। विवाहादि शुभावसरों पर महिलायें गद्य में गीत नहीं गातीं। शत वर्ष वयस्का वृद्धा अब भी भारत मां की गोद में प्रातःकाल यदि चक्की पीसती हुई दृष्टिगोचर होती है तो भी उसके दन्तविहीन मुख में मधुर छन्दः होते हैं। ससुर परिवार भी, आये हुये नवजामाता के चातुर्य का निरीक्षण छन्दों के द्वारा ही करते हैं। छन्दशास्त्र का अवलम्बन करके कवि बहुत बड़ी बात

को मनोमोहक रूप में छोटा करके वर्णन कर सकते हैं। जिस प्रकार सारा संसार विष्णु से व्याप्त है, ठीक इसी प्रकार मन भय जर सत गणों से पूर्ण छन्द शास्त्र ससार में व्याप्त है। लौकिक और वैदिक भेद से छन्द दो प्रकार के होते हैं। वेदाध्ययन अलौकिक वैदिक छन्दों में तथा रघुवशादि लौकिक में काव्याध्ययन लौकिक छन्दों में होता है। लौकिक छन्द मात्रिक और वर्णिक भेद से दो प्रकार का होता है। फिर इनके तीन भेद हो जाते हैं। सम, अर्धसम, विषम। जहां मात्रायों अथवा वर्णों का क्रम चारों पादों में समान हो वहां सम छन्दः होता है। प्रथम और तृतीय; द्वतीय और चतुर्थ पादों की वर्णिक अथवा मात्रिक समानता अर्धसम की व्यजंक होती है।

छन्द चित्र

मात्रिक — सम (विधाता), अर्धसम (दोहा), विषम (छप्पय) — साधारण, दण्डक

वर्णिक — सम (भजंगी), अर्धसम (पुष्पिताग्रा), विषम (…भक) — साधारण, दण्डक

छन्दों का एक तीसरा भेद भी आधुनिक समय में माना जाने लगा है। इसमें यति का नहीं, गति का बन्धन होता है। यह स्वछन्द मुक्तक कहे जाते हैं। साधारण रूप में ऐसे छन्द भी साहित्य क्षेत्र में आ रहे हैं जिनमें मात्रा और वर्ण समान समाहत हुये हैं। ये उभय छन्द कहे जाते हैं।

छन्द शास्त्र की कई एक आवश्यक बातें।

(१) चरण पाद पद छन्दः की चाल जो अपनी गति से यति तक पूर्ण प्रयाण करती है, उसे चरण पाद या पद कहते हैं।

(२) यति-जहां पर पाठक को रुकना पड़ता है, उसे यति के नाम से पुकारा जाता है।

शुभाक्षर— क ख ग घ च छ ज झ ड द ध न प श स तथा स्वर इनका प्रयोग छन्दों के आदि में न होना चाहिए। हां मांगलिक कार्यों में तथा दीर्घ कर देने पर इनकी अशुभता जाती रहती है।

—श्रीमती सूर्यश्री

वर्तमान हिन्दी उपन्यास

हिन्दी साहित्य के इतिहास में १९वीं शताब्दी का स्थान उल्लेखनीय है। अन्य साहित्यों की भाँति पद्य से आरम्भ होने वाले हिन्दी साहित्य में इस समय गद्य की व्यवस्थित प्रतिष्ठा हुई। अंग्रेजों के भारतवर्ष में आने पर एक ऐसी भाषा की आवश्यकता प्रतीत हुई, जिसमें सर्वसाधारण का व्यवहार सुचारु रूप से चल सके। मुशी सदासुखलाल, इंशा अल्लाखाँ, लल्लूलाल तथा सदल मिश्र ने इस गद्य की नींव डाली, राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह ने उसके दो विभिन्न मार्ग प्रदर्शित किए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उसे खड़ी बोली का सुबोध और सुसंस्कृत रूप देकर हिन्दी गद्य को निश्चित मार्ग पर चलाया और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उसे व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध किया।

हिन्दी गद्य की उत्पत्ति और विकास के साथ साहित्य में अनेक प्रगतियों का उदय और विकास हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सबसे पहले हिन्दी गद्य को विविध विषयों में विभक्त किया। पत्रिकाओं के सञ्चालन के साथ उन्होंने हिन्दी में मौलिक नाटकों की रचना की, बँगला और संस्कृत से उपन्यास और नाटकों का अनुवाद किया। आगे जाकर उनके अनुयायियों तथा बाद के साहित्य-

सेवियों ने साहित्य के विभिन्न अंगों की पुष्टि की।

हिन्दी में उपन्यास साहित्य का आरम्भ हरिश्चन्द्र काल में ही हुआ। सर्वश्री किशोरीलाल गोस्वामी, राधाचरण गोस्वामी तथा देवकीनन्दन खत्री उस समय के प्रारम्भिक उपन्यासकार थे। इनके उपन्यासों का प्रधान गुण था वाग्वैचित्र्य। रचयिताओं ने अपने ग्रन्थों की रचना करते समय इस बात का सबसे अधिक ध्यान रखा था कि जनता को अपनी ओर आकर्षित कैसे किया जाए! इसके लिए उपन्यासकारों ने नैतिकता का पूर्ण ध्यान न करके तोता-मैना के किस्सों की भाँति विलासिता तथा जासूसी इन्द्रजाल तक को अपनाया। इन उपन्यासों को पढ़ कर जनता को क्या मिला! इसका यथेष्ट उत्तर तो नहीं दिया जा सकता, किन्तु एक बात अवश्य है कि ऐसी पुस्तकों से मध्यम वर्ग में पढ़ने की रुचि पनपी। विशेष रूप से देवकीनन्दन खत्री की "चन्द्रकान्ता सन्तति" ने जनता को इतना आकर्षित किया, कि कई हिन्दी न जानने वाले लोगों ने भी उक्त कथा को पढ़कर अपने औत्सुक्य को शांत करने के लिए हिन्दी को सीखा। इस प्रकार हरिश्चन्द्र युग में उपन्यासों का प्रचार हुआ, किन्तु उन उपन्यासों में वास्तविकता कम थी, और कल्पना की उड़ान अधिक!

समय बीता, अंग्रेजी तथा बँगला साहित्य का प्रभाव हिंदी पर पड़ा। नाटकों के साथ अन्य भाषाओं के उपन्यासों के भी अनुवाद होने लगे। विशेष रूप से बँगला के उपन्यास हिन्दी में अनुवादित हुए। सर्व श्री बङ्किम चट्टोपाध्याय, प्रभातकुमार मुखोपाध्याय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हुआ और हिन्दी के लेखकों और पाठकों की आँखें खुलीं। कल्पना से हट कर वे यथार्थता की ओर अग्रसर हुए। आदर्शवाद के साथ यथार्थवाद ने साहित्य में स्थान पाया। इस अनुवाद युग ने हमारे उपन्यास साहित्य में उथल-पुथल मचादी। लेखकों ने अपना उत्तरदायित्व समझने की चेष्टा की। साथ ही मध्यम वर्ग के पाठकों में सुरुचि का सञ्चार हुआ, ठीक इसी समय मुंशी प्रेमचन्द का उदय हुआ।

प्रेमचन्द ने हिन्दी के उपन्यास साहित्य में नवजीवन का सञ्चार किया। उन्होंने साहित्य को कल्पना और आदर्श के साथ यथार्थता की ओर भी अग्रसर किया, उसे जीवन-सङ्गी बनाया। उन्होंने जीवन—जैसा होना चाहिए—का आदर्श ही दिखा के साथ उसका यथार्थ रूप—जीवन, जैसा कि वह है, दुःख-सुख, ईर्ष्या और द्वेष से युक्त—दिखलाया। उनको अपने इस उद्देश्य के लिए विषय भी सुन्दर मिल गया, उन्होंने "भारतीय ग्राम" को अपनी कथा-वस्तु का विषय चुना और उन्होंने अपने उपन्यासों में इसका निर्वाह भी सुन्दर रूप से किया है। 'सेवा सदन', 'रंग भूमि', 'प्रेमाश्रम', 'कर्म भूमि', 'गबन', 'कायाकल्प', 'निर्मला' तथा 'गोदान' उपन्यासों में उन्होंने प्रत्यक्षा-प्रत्यक्ष रूप से इसी विषय को अपना कर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि नागरिक जीवन कृत्रिम और खर्चीला है और ग्रामीण-जीवन स्वाभाविक, किन्तु शांतिपूर्ण है तथा नागरिक सभ्यता की वृद्धि के साथ हमारे देहाती-जीवन की सरलता, वास्तविकता और स्वाभाविकता नष्ट होती जा रही है। उनके अन्तिम उपन्यास "गोदान" में उनका ग्रामीण चित्रण अत्यन्त कारुणिक और मार्मिक बन पड़ा है।

प्रेमचन्द के पास ही उपन्यास साहित्य में जिस कलाकार के दर्शन होते हैं वे हैं श्री वृन्दावनलाल वर्मा। वर्मा जी ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में हमारे साहित्य में अद्वितीय स्थान रखते हैं। जो स्थान हिन्दी के नाटक-साहित्य में ऐतिहासिक नाटककार के रूप में स्व० श्री जयशंकर प्रसाद का है, वही स्थान उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द जी के बाद श्री वर्मा जी का है। वर्मा जी के उपन्यासों में "गढ़ कुण्डार", "विराटा की पद्मनी" आदि कृतियाँ काफी प्रसिद्ध हैं। ऐतिहासिक आधार होने पर भी वर्मा जी के उपन्यास केवल इतिहास नहीं बन गए हैं। ऐतिहासिकता की पृष्ठ-भूमि पर उन्होंने अपने उपन्यासों में कल्पना का सुन्दर पुट मिलाया है।

आधुनिक उपन्यासकारों में सर्व श्री उग्र, चतुरसेन शास्त्री, विश्वम्भर नाथ कौशिक, जैनेन्द्रकुमार, श्रीनाथसिंह, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, निराला, उषादेवी मित्रा के नाम सम्मुख आते हैं। श्री "उग्र" की ओजस्विनी भाषा तथा उनके आकर्षक विषय के कारण कुछ समय तक मध्यम वर्ग के समाज में उनकी काफी प्रसिद्धि हुई। सर्व श्री चतुरसेन शास्त्री तथा "कौशिक" कहानियों की भाँति उपन्यास क्षेत्र में भी काफी लोकप्रिय हुए, किंतु इधर कुछ देर से इनकी कोई नवीन रचना देखने में नहीं आई। श्री जैनेन्द्रकुमार ने 'परख' और 'सुनीता' के द्वारा उपन्यास जगत में प्रवेश किया। कुछ देर के लिए उनकी 'सुनीता' साहित्य क्षेत्र में आलोचना का विषय बनी रही। बीच में थोड़े विश्राम के बाद उनके 'त्यागपत्र' के दर्शन हुए! इसे लोगों ने पसन्द किया। अभी पिछले दिनों में इनका नया उपन्यास 'कल्याणी' प्रकाशित हुआ है।

श्री श्रीनाथसिंह के उपन्यासों का विषय सामाजिक है। उनका 'उलझन' इस विषय का पहला उपन्यास है, और इसमें वे अपने उद्देश्य के अनुसार सफल हुए हैं।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की काफी कृतियाँ देखने में आई हैं। वे हिन्दी के पुराने कहानीकार और उपन्यासकार हैं। अभी पिछले दिनों उनका एक नवीन उपन्यास 'दो बहनें' प्रकाशित हुआ है, जो हिदी के उपन्यासों में निश्चित स्थान रखता है। इस उपन्यास को पढ जाने पर लेखक की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि—जो एक सफल उपन्यासकार में आवश्यक गुण है—का भली प्रकार से पता लगता है।

सर्व श्री भगवतीचरण वर्मा तथा श्री निराला जी हिंदी के जाने-माने कवि हैं। इन दोनों कलाकारों ने उपन्यास भी लिखे हैं, किन्तु इन उपन्यासों को पढने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये दोनों कलाकार जितने सफल कवि हैं उतने सफल उपन्यासकार नहीं।

उषा देवी 'मित्र' थोड़े दिनों से उपन्यास-क्षेत्र में आई हैं। इनका 'पिया' उपन्यास हिंदी में आदर प्राप्त कर चुका है। अभी इनके विषय में इससे अधिक कुछ कहना न्यायसंगत नहीं कि इनमें सफल उपन्यासकार की क्षमता है।

इस प्रकार अन्य भी कई उपन्यासकार हैं जिनके उपन्यास हिंदी में प्रकाशित हो चुके हैं और हो रहे हैं। श्री अज्ञेय का 'शेखर' साहित्य में अपने ढग की सुंदर चीज है, ऐसा हम कह सकते हैं। अन्य भी कई उपन्यासकार हिंदी के प्रकाश में आ रहे हैं, इनको। देखते हुए आशा ही नहीं, विश्वास है कि हिंदी के उपन्यास साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है।

ऊपर हमने हिंदी के वर्तमान उपन्यास साहित्य का अति संक्षिप्त वर्णन करने का प्रयत्न किया है। आरम्भ से लेकर अब तक के उपन्यास-साहित्य को मुख्य रूप से हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) वाग्वैचित्र्य प्रवृत्ति (Romanticism full of sensation, adventure and thrills)

(२) ऐतिहासिक प्रवृत्ति (Historical Tendency)

(३) यथार्थ प्रवृत्ति (Realistic Tendency)

इनमें से प्रथम धारा में देवकीनन्दन खत्री को, द्वितीय धारा में वृन्दावनलाल वर्मा को तथा तृतीय धारा में मुंशी प्रेमचन्द को प्रतिनिधित्व प्रदान किया जा सकता है।

—श्री रामकृष्ण जी भारती शास्त्री, साहित्यरत्न बी०ए०

युद्ध के बाद भारत को औपनिवेशक स्वराज्य

भारत के सबम्न्ध में ब्रिटिश सरकार की योजना

अ—युद्ध के खत्म हो जाने के फौरन बाद चुने गये जनता के प्रतिनिधियों द्वारा भारत के लिये एक नया विधान तैयार करने के बारे में कदम उठाया जावे। यह विधान कौन से प्रतिनिधि तैयार करेंगे इसका उल्लेख आगे किया गया है।

आ—इस विधान को तैयार करने में भारतीय राज्यों का भी सहयोग प्राप्त किया जावे। किस प्रकार यह सहयोग प्राप्त किया जावे, यह बात आगे बताई गई है।

इ—सम्राट की सरकार इस प्रकार बनाये गये विधान को स्वीकार ,करने और उस पर अमल करने का विश्वास दिलाती है। लेकिन इस सम्बन्ध में शर्त्त यह होगी—

यदि कोई प्रान्त इस नये विधान को स्वीकार न करे तब उसे वर्त्तमान विधान पर ही अमल करने का अधिकार होगा। लेकिन बाद में यदि वह प्रांत इसमें सम्मिलित होना चाहे, तब ऐसा करने की उसे पूरी आजादी रहेगी।

नये विधान में सम्मिलित न होने वाले प्रांतों को यदि चाहें तब अपना अलग नया विधान बनाने की भी सम्राट सरकार इजाजत देगी। उन्हें वे ही अधिकार प्राप्त होंगे, जोकि भारतीय युनियन को दिये जावेंगे। उन्हें भी नीचे लिखे समान कायदों पर ही अमल करना होगा और (२) विधान बनाने वाली कमेटी और सम्राट की सरकार में एक सन्धि की जावेगी, जिस पर दस्तखत करने होंगे। इस सन्धि में उन समस्त बातों का उल्लेख रहेगा जोकि ब्रिटिश हाथों से भारत को जिम्मेवारी देने पर पैदा होंगी। इस में ब्रिटिश सरकार द्वारा दिये गये आश्वासनों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न जातियों और सम्प्रदायों की सुरक्षा के लिये उचित व्यवस्था की जावेगी। लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य उपनिवेशों से भारत का सम्बन्ध भविष्य में किस प्रकार का हो ऐसा कोई प्रतिबन्ध न रहेगा।

भारतीय देशी राज्य, इस नये विधान में आवश्यक होगा कि उन से की गई पहली सन्धियों पर पुनर्विचार होगा। क्योंकि नई परिस्थिति पैदा हो जाने से ऐसा करना आवश्यक है।

ई—यदि भारत के प्रमुख राजनैतिक दल मिलकर युद्ध समाप्त होने से पूर्व इस में किसी प्रकार का परिवर्त्तन कर लेने का निश्चय नहीं कर लेते, तब इस विधान बनाने वाली कमेटी का संगठन इस प्रकार होगा—

युद्ध कि समाप्ति के बाद नये किये गये प्रांतीय चुनावों का परिणाम ज्योंहि प्रकाशित होगा, तब प्रांतों की निचली धारा सभा के सदस्य अपने अनुपात के हिसाब से विधान निर्मात्री समिति का चुनाव करेंगे। इस विधान निर्मात्री सभा में कुल सदस्यों के १ १० सदस्य रहेंगे।

भारतीय राज्यों को भी अपनी कुल आबादी के अनुसार उसी अनुपात से जिस अनुपात से ब्रिटिश भारत में प्रतिनिधि चुने जावेंगे अपने प्रतिनिधि भेजने के लिये निमन्त्रित किया जावेगा। इन्हें भी ब्रिटिश भारत के सदस्यों के समान ही अधिकार प्राप्त होंगे।

उ—आज जिस नाजुक स्थिति में भारत है, जब तक वही स्थिति बनी रहेगी और भारत का अपना नया विधान तैयार नहीं होगा, तब तक भारत की रक्षा की सारी जिम्मेवारी का भार ब्रिटिश सरकार अपने ही कन्धों पर सम्भाले रहेगी। संसार के युद्ध प्रयत्नों में ही भारत को भी सम्मिलित किया जावेगा। लेकिन भारत की सैनिक और अन्य आवश्यक सामग्री की तैयारियों का भार भारत सरकार पर ही रहेगा, जो कि भारतियों के सहयोग से सारा कार्य करेगी। सम्राट की सरकार भारत के प्रमुख दलों के नेताओं का सहयोग भारत, ब्रिटिश साम्राज्य और संयुक्त राष्ट्रों की सलाहकार समितियों के लिये निमन्त्रित करती है। इस प्रकार के एक ऐसे कार्य को पूर्ति के लिए जोकि भारत की भविष्य की स्वतन्त्रता के लिए अत्यन्त आवश्यक है, रचनात्मक और क्रियाशील सहयोग देंगे।

दीपक के प्रकाश में—

एकता—यह साप्ताहिक भिवानी के उत्साही तथा निस्पृह जन-सेवकों के प्रयत्न से रामनवमी के शुभ अवसर पर भिवानी से आरम्भ हुआ है। युद्ध के कारण कागज व छपाई की मँगाई के इस जमाने में नया पत्र निकालने का साहस ही इस बात का प्रमाण है कि 'एकता' को जन्म देने वालों में कितना अदम्य उत्साह है। किन्तु पत्र के उद्देश्य-एकता को देखते हुए इसके संस्थापकों का यह शुभ प्रयत्न समयोपयोगी, अत्यन्त आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है, क्योंकि देश को आज कल एकता की जितनी आवश्यकता है, इतनी पिछली सदी में शायद कभी नहीं रही हो। आज घर-घर तथा गांव-गांव में एकता के संदेश को अ ली रूप देना चाहिए। पञ्जाब की हिन्दी जनता 'एकता' को अपनाए, प्रान्त में एकता स्थापित हो, जिससे पत्र अपने उद्देश्य में सफल हो—यही हार्दिक इच्छा है। श्रामुरलीधर दिनोदिया जैसे उत्साही युवक के सम्पादकत्व तथा श्री रूड़मलजी जैसे सेवा के प्रतीक व्यवस्थापक के द्वारा पत्र उन्नति करेगा, इसकी हमें आशा है। पत्र की सफाई, कागज अच्छा है। वार्षिक मू० ५), एक प्रति -)॥

लेखन-कला— श्री किशोरीलाल बाजपेयी द्वारा लिखित तथा 'हिमालय' एजेन्सी कनखल (यू० पी०) द्वारा प्रकाशित पुस्तक का यह दूसरा संस्करण है। छोटे आकार के चार अध्यायों में प्रकाशित प्रथम संस्करण में ही विद्वान् लेखक ने हिन्दी में लेख, निबन्ध आदि गद्य तथा पद्य लिखना सीखने के इच्छुकों तथा विद्यार्थियों के लिए बड़े सुन्दर, सरल ढङ्ग से लेखन-कला के मुख्य सिद्धांतों पर प्रकाश डाला था कि हिन्दी संसार ने उसे बहुत पसन्द किया तथा अपनाया। फलतः यह द्वितीय संस्करण सात अध्यायों में और भी परिवर्द्धित रूप में तैयार कर पुस्तक को नवीन लेखकों के ही लिए नहीं, साहित्य क्षेत्र में काफी आगे बढ़े लेखकों के लिए भी, उपयोगी बना दिया है। वाक्य रचना, भाषा की सजावट, शब्द-चिन्तन, भाषा तथा भावों का चिन्तन, लिपि विन्यास, कविता, कहानी, नाटक रचना आदि लेखन-कला सम्बन्धी महत्वपूर्ण विषयों का प्रस्तुत पुस्तक में बड़ी योग्यता पूर्वक प्रतिपादन किया गया है। हिन्दी में अपने विषय की हमारी दृष्टि में आने वाली यह सबसे सुन्दर पुस्तक है। आशा है सफल लेखक व कवि बनने के इच्छुक व्यक्ति इस पुस्तक से अवश्य लाभ उठावेंगे। मू० १)

१. तीस दिन मालवीय जी के साथ—लेखक—रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल नई देहली मूल्य १॥)। महामना श्री पण्डित मदन मोहन मालवीय हमारे देश के उज्ज्वल रत्न, महान् नेता तथा राष्ट्र-निर्माता हैं। उन्होंने इस देश तथा हिंदू जाति की लगातार साठ वर्ष तक अनथक सेवा की है। अतः उनके जीवन के इन साठ वर्षों का वर्णन देश की चहुँमुखी जागृति का इतिहास है। कुशल लेखक ने पूज्य मालवीय जी के इन ६० वर्षों के जीवन, उनके अलौकिक गुणों, अद्भुत कार्य शक्ति, स्वभाव, रहन-सहन तथा दिनचर्या का सजीव वर्णन उनके साथ कुछ दिन रह, उनके दृष्टि-पथ में बैठकर प्रत्यक्ष देख, सुन समझ कर किया है। युवक व जन-सेवकों के लिए इस पुस्तक में अपनी उन्नति, देश सेवा, जन-हित के लिए अनमोल शिक्षाएं, महान् प्रोत्साहन तथा काम की बातें मिल सकती हैं।

सम्पादकीय नोट—

अनाज की तंगी—

गत् महायुद्ध में भावों के बहुत बढ जाने—विशेषतः खाद्य-पदार्थों की महँगाई के कारण गरीब जनता को अपना गुजारा करना कठिन हो गया था। किन्तु मौजूदा युद्ध में अनाज के लिए जनता के सामने दूसरी ही विकट समस्या उपस्थित हो गई है। सरकार द्वारा यथा समय गेहूँ पर कण्ट्रोल-भाव-नियन्त्रण होने से उसका भाव तो न चढ सका, किन्तु जनता को किसी भी भाव में आज वह मिलना कठिन हो रहा है। अतः युद्ध के आतङ्क अथवा आपस की लूट-मार के भय से जनता में आज इतनी घबराहट तथा बैचनी नहीं जितनी जरुरत के लिए अनाज न मिलने के कारण हो रही है। मनुष्य-जीवन के आधार अन्न के कम, अशुद्ध, महँगा अथवा बिल्कुल न मिलने से लोगों में अशान्ति तथा घबराहट होना स्वाभाविक है। अतः क्या सरकार, क्या जनता सब का सर्व-प्रथम कर्त्तव्य है कि जनता की अन्न की जरुरत पूरी हो, इसकी पूरी व्यवस्था हो। बिना जनता तथा गवर्नमेंट के पारस्परिक सहयोग के—अकेली जनता अथवा गवर्नमेंट अन्न की समस्या का हल नहीं कर सकती। देश में वर्ष भर में गेहूँ की पैदावार एक करोड़ टन होने से तथा ९० लाख टन खर्च होने पर भी गेहूँ की यह किल्लत क्यों हुई ! यह प्रश्न विचारणीय है। भारत सरकार के व्यापार सदस्य के कथनानुसार १ लाख ८० हजार टन के लगभग गेहूँ व उसका आटा देश से बाहर चले जाने पर भी यहां ९ लाख टन गेहूँ देश की आवश्यकता से अधिक बचा रहना चाहिए था। इस दृष्टि से सरकार की भाव नियँत्रण नीति की त्रुटि तथा अनाज के व्यापारियों के, महँगे भाव में, बेचने के लोभ से, गेहूँ को छिपा लेने के कारण ही गेहूँ मिलना कठिन हो गया है, वास्तव में देश में गेहूँ का अभाव नहीं हुआ है। अतः सरकार अपनी भाव नियंत्रण नीति में आवश्यक सुधार करे और अपनी ओर से प्रत्येक स्थान पर अनाज देने का प्रबन्ध करे, बाहर अन्न भेजना बन्द करे. अनाज की फसलों को पानी, लगान आदि की कुछ सुविधाएं देकर उनकी पैदावार बढाने का जनता को प्रोत्साहन दे। इसी प्रकार जनता अन्य फसलों को कम कर अनाज की फसल अधिक करें, व्यापारी मुनाफे का लोभ छोड़कर अनाज को छिपाएँ नहीं, उसे कन्ट्रोल की दरों पर जनता को दें। इस प्रकार सरकार तथा जनता अन्न की समस्या को देश का मुख्य प्रश्न समझकर व्यवस्था करे तो अनाज की किल्लत सरलता से दूर हो सकती है।

घर-फूंक नीति —

आधुनिक युद्ध में रूस ने अपनी पीछे हटती सेना द्वारा अपने ही कल-कारखाने, रेलें, खान-पान तथा युद्ध की अन्य सामग्री जिसके शत्रु के अधिकार में पड़ने से उसे लाभ हो सकता है, नष्ट कर दुश्मन को नाकाम बनाने की अद्भुत नीति बरती है। रूस की इस आश्चर्य-जनक बलिदान-शक्ति तथा बहादुरी की नीति ने दुनिया को स्तब्ध कर दिया है। इस नीति को आज के युद्ध में कारगर समझ कर अन्य देशों ने भी अपनाया है। मलाया तक वर्मा में भी, सुनते हैं कि पीछे हटती ब्रिटिश फौजों ने यह 'घर फूंक नीति' अमल में लाई है। हिन्दुस्तान के सामने भी युद्ध का भीषण सङ्कट उपस्थित है अतः देशवासियों के लिए आज इस गम्भीर समस्या पर बिचार करना आवश्यक हो गया है कि शत्रु के आक्रमण के समय उसके मार्ग में रुकावट डालने के लिए अपने यहां भी काम की हरेक चीज को अपने हाथों नष्ट करना कहां तक उचित है? देश के नेताओं, व्यापारियों, व्यवसाइयों तथा साधारण जनता का इस सम्बन्ध में मत है कि भारतवर्ष की आज की हालत देखते हुए यहां 'घर-फूंक नीति' का प्रयोग लाभप्रद नहीं, क्योंकि यहां की स्थिति रूस से सर्वथा भिन्न है। यहां जनता का राज्य नहीं न अभी तक यहां की आम जनता में रूस की सी राष्ट्र-भावना आ पाई कि वह सहर्ष हर प्रकार के बलिदान को स्वीकार करे। फिर रूस की भांति यहां पैदावार के सब

शासन राज्य के हाथ में न होकर व्यक्तियों के हाथ में है जिनके लिए फिर से नष्ट सम्पत्ति तथा खाद्य सामग्री की क्षति पूर्ति करना आसान नहीं है। देश में आज कल खाद्य पदार्थों की कमी पहले ही अत्यधिक है जिससे जनता को बड़ी कठिनाई है। अतः 'घर फूंक नीति' को काम में ला खाद्य-सामग्री नष्ट करने से जनता को भोजन का जो कष्ट होगा, देश में जो गम्भीर स्थिति पैदा हो जावेगी, उसकी कल्पना करना कठिन है। अतः यहां की विशेष अवस्था को देखते हुए सरकार को भारत में 'घर फूंक नीति' को काम में नहीं लाना चाहिए।

स्कूलों का नया वर्ष और हिन्दी

पञ्जाब के सभी स्कूलों में वार्षिक परीक्षाएं समाप्त हो गई हैं तथा अप्रेल के अन्त में विद्यार्थी अगली कक्षाओं में प्रविष्ट होकर नये वर्ष की पढाई आरम्भ कर देंगे। अतः यही समय होता है कि जब नई कक्षाओं में प्रविष्ट होते समय विद्यार्थी के सामने प्रश्न उपस्थित होता है कि वह कौनसी भाषा ले — हिन्दी या उर्दू। इस समय यदि उसको हिन्दी पढने की प्रेरणा मिले हिन्दी के प्रति उसका कर्त्तव्य समझाया जावे, हिन्दी के गुणों को बतलाया जावे, तो उसका चुनाव हिन्दी के पक्ष में हो सकता है। अतः हिन्दी प्रचारक संस्थाओं तथा हिन्दी की उन्नति चाहने वालों के लिए यह सबसे अच्छा अवसर है कि वे प्रान्त भर में आंदोलन करें कि नई कक्षाओं में प्रवेश करते समय विद्यार्थी हिन्दी ही लें। 'नये वर्ष में हिन्दी लो' नारे को प्रान्त के प्रत्येक नगर व कस्बे तक पहुंचाने के लिए 'हिन्दी सप्ताह' मनाया जावे, सभाएं की जावें प्रभात फेरी लगाई जावें, पत्रों में लेख लिखे जावें, छात्रों व उनके संरक्षकों से मिलकर उन्हें नये वर्ष से अपने बालकों को हिन्दी दिलाने को विवश किया जावे। स्कूलों के संचालकों व हैडमास्टरों को प्रेरित किया जावे कि वे अपने स्कूलों में हिन्दी को अनिवार्य विषय बनावें तथा हिन्दी लेनेवाले विद्यार्थियों को सुविधाएँ दें। इस प्रकार, इन पन्द्रह दिनों में स्कूलों में हिन्दी को स्थान दिलाने के लिए जितना अधिक कार्य हो सकता है, उतना शेष सारे वर्ष में नहीं हो सकता। आशा है कि हिन्दी की उन्नति के इच्छुक सभी व्यक्ति 'नये वर्ष में हिन्दी लो' आन्दोलन को सफल बनाने के लिए भरपूर प्रयत्न करेंगे।

श्री स्वामी केशवानन्द जी की बीमारी

अ० भा: हिंदी साहित्य सम्मेलन के ३० वें अधिवेशन के लिये रात-दिन अनथक परिश्रम कर ३॥ मास में आशा से अधिक सफल बनाकर श्रीस्वामी केशवानन्दजी थकान न उतारने पाये थे कि भयँकर रोग ने आन दबाया और एक मास से अधिक समय तक बहुत बीमार रहे। श्री स्वामीजी के जीवन में यह सबसे लम्बी तथा कठिन बीमारी थी कि जिसके कारण उन्हें महीनों चारपाई की शरण लेनी पड़ी, अन्यथा इस कर्मठ सन्यासी को बीमारी में भी कभी बिस्तर पर पड़ना नहीं सुहाया, रुग्णावस्था तक में भी वे अपना स्वाभाविक कार्य—यहाँ तक कि लम्बी यात्राएँ तक करते रहे हैं। किन्तु इस बार, अत्यधिक परिश्रम व चिन्ताओं से थका शरीर तथा बड़ी आयु, रोग के आक्रमण का पहले के समान मुकाबला न कर सकी। फिर रोग २॥ मास पूर्व ही आपके शरीर में जड़ जमा चुका था। दिसम्बर के आरम्भ में आपको बुखार हुआ जिसका न तो कोई विशेष इलाज ही किया, न विश्राम ही लिया—सम्मेलन की तैयारी में दिन-रात रेलों में भ्रमण करते रहे। अतः पेट में तिल्ली बढ गई। बुखार में तिल्ली बढने का रोग आपको पुराना है। किन्तु उस समय इस ओर ध्यान देने का अवसर उन्हें कहां था। सम्मेलन कार्य में जुटे रहे; रोग दबा रहा, शरीर ने जबाब नहीं दिया तथा सम्मेलन सफलतापूर्वक समाप्त हो गया।

दो सप्ताह बाद, जनवरी के मध्य में कलकत्ता जाते हुए श्री स्वामी जी को पीठ में जोरका दर्द उठा, तो भावी खतरे की सूचना थी; किन्तु थोड़ी देर में दर्द शान्त होने के बाद उस ओर फिर कोई ध्यान नहीं दिया। फरवरी में सङ्गरिया चले जाने पर श्री स्वामी जी को यदाकदा वही दर्द उठता रहा, जिसे खान-पान में परिवर्त्तन से दबाकर सन्तोष कर लिया गया। तब भी विशेष ध्यान दे चिकित्सा न कराई, काम में ही लगे रहे। किन्तु रोग ने १९ फरवरी

को रात के १ बजे इतना भीषण प्रहार किया कि असहनीय दर्द के मारे ३ दिन तक श्री स्वामी जी को पल भर चैन न मिली। बाद में दर्द हल्का हुआ तो बहुत जोर की हिचकियाँ आने लगीं जो प्रतिक्षण आंतों को चीरती हुई मुंह तक आतीं। दर्द और हिचकियों के इस जबरदस्त आक्रमण ने श्री स्वामी जी के शरीर को बुरी तरह तोड़ दिया, शक्ति न छोड़ी। हिचकियाँ कुछ कम हुईं तो बुखार, कब्ज, दस्त, पेशाब की कमी, जलन—आदि रोगों ने आ घेरा। इस अवस्था में एक सप्ताह बीत गया किन्तु कोई व्यवस्थित इलाज न हो सका। दुर्भाग्य से उस समय स्कूल का वैद्य, संगरिया का सरकारी डाक्टर तथा चौटाले का डाक्टर भी—सब बाहर गये हुए थे। २६ फरवरी को चौटाले के डाक्टर के लौटने पर श्री स्वामी जी को चौटाला उनके पास ले जाया गया। वहाँ १२ दिन ठहरे। कुछ आराम हुआ; किन्तु संगरिया लौटने पर फिर बुखार तथा उसके साथ दूसरे रोग भी शुरू हो गये। अतः १८ मार्च को श्री स्वामी जी को श्री पं० ठाकुरदत्त वैद्य मुल्तानी के यहाँ शाहदरा-लाहौर ले जाया गया। अनुभवी वैद्य ने फौरन रोग को पहचानकर तिल्ली व ज्वर का इलाज आरम्भ कर दिया तथा ३ दिन में ही दवा से काफी आराम प्रतीत हुआ। अतः श्री स्वामी जी वैद्य जी की दवा लेकर वापिस संगरिया लौट आये। अब उनकी दवा तथा अनुपान से रोग शनैः शनैः दूर हो रहा है, शरीर में शक्ति आ रही है। आशा है १५ दिन में श्री स्वामी जी स्वस्थ हो जावेंगे। पञ्जाब प्रान्त, विशेषतः इस इलाके की जनता के परम सौभाग्य से श्री स्वामी जी इस लम्बी तथा कठिन बीमारी से छुटकारा पागये हैं। अतः उनके अलौकिक गुणों तथा महान् व्यक्तित्व का और भी लाभ इलाके की जनता को मिलेगा। समस्त जनता की हार्दिक शुभ कामनाएँ उन्हें स्वास्थ्य तथा चिरायु प्रदान करें।

Regd. No. L. 3700

मुद्रक एवं प्रकाशक श्री कुलभूषण द्वारा 'दीपक प्रेस' साहित्य सदन अबोहर पंजाब से प्रकाशित।

... के शिक्षा-विभागों द्वारा स्वीकृत।

मार्गशीर्ष-पौष १९९८
दिसम्बर-जनवरी
१९४१-४२

सम्मेलनांक

सम्पादक—तेगराम
वार्षिक मूल्य २)
एक अङ्क का ।)
इस अङ्क का ।।)

सम्मेलन का ३० वाँ अधिवेशन

निर्विघ्नपूर्ण समाप्त हुआ। एक छोटे स्थान पर इतना अच्छा प्रबन्ध होगा और इतने लोग उपस्थित होंगे, इसकी आशा नहीं थी। भोजन, निवास इत्यादि का कोई कष्ट न हुआ। स्वागत-समिति की, ...विशेषकर स्वामी केशवानन्दजी की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। जनता का हिन्दीप्रेम सराहनीय था। स्वयं सेवक उद्यमशील थे।

सम्मेलन में प्रतिनिधियों की संख्या अच्छी थी। पूना, हैदराबाद, मध्यभारत, बिहार, संयुक्तप्रांत, बङ्गाल, काश्मीर इत्यादि प्रांतों से प्रतिनिधि आये थे। साहित्य-सेवियों और लेखकों के दर्शन और परिचय से आनन्द हुआ। टण्डन जी और सम्पूर्णानन्द जी के कुशल नेतृत्व का सम्मेलन को सौभाग्य मिला। पञ्जाब में हिन्दी का प्रचार और दृढता और उत्साह से होगा, इसका विश्वास हुआ। कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुये और कई अच्छे भाषण हुये।

परन्तु सम्मेलन के अधिवेशन की प्रणाली बदली जाय, यह मेरी सम्मति है। खुला अधिवेशन पहले दिन हो जाय और फिर परिषदों की बैठक हो। परिषदों को कम से कम पांच-छ घण्टे का समय मिलना चाहिये। प्रत्येक परिषद् को अपने विषय पर प्रस्ताव उपस्थित करने का अधिकार हो। परिषद में निबन्धों का पाठ हो और यथावकाश उन पर विचार हो। सम्मेलन का खुला अधिवेशन फिर केवल अंतिम दिन हो जिसमें परिषदों से आये हुये प्रस्तावों पर विचार हो। इस प्रकार के संशोधन से यथार्थ में साहित्य की विवेचना हो सकती है, भावी कार्यक्रम पर विचार हो सकता है, साहित्य अथवा भाषा संबंधी समस्यायें सुलझाई जा सकती हैं।

व्यक्तिगत रूप से तो मुझे केवल यह कहना है कि मैं सम्मेलन के प्रतिनिधियों के सहयोग और कृपा, स्वागत-समिति की विविध सेवाओं, और एक अनुभव विहीन सभापति के प्रति सब की अनुकम्पा को कभी नहीं भूल सकता हूँ।

जौर्जटौन, प्रयाग २५-१-४२] —अमरनाथ झा

दीपक—वर्ष ७, संख्या २-३ दिसम्बर-जनवरी १९४१-४२

संख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	सम्मेलन का ३० वाँ अधिवेशन	श्री अमरनाथ झा	
२	स्वागत-गीत	,, उदयशङ्कर भट्ट	१
३	गीता की भूमिका	,, अरविन्द	२
४	श्री अमरनाथ झा का भाषण		५
५	स्वस्थ रहने के दस नियम	,, बृजभूषण मिश्र एम० ए०	९
६	विद्यार्थियों को पढ़ाते समय शिक्षक की मनोदशा	,, बृजभूषण मिश्र एम० ए०	१०
७	भारतीय राष्ट्र और उसकी भाषा	,, राजेन्द्रकुमार जैन	१२
८	मजदूर का जीवन (कहानी)	,, प्रो० रघुराजसिंह	१३
९	क्या हम सोचते हैं ?	,, रामनारायण उपाध्याय	१५
१०	धन्य हैं गरीब लोग	,, धननारायण कपूर	१६
११	अमेरिका का स्वातँत्र्य युद्ध और उसकी राज्य-व्यवस्था	,, गिरिराज बी० ए०	१७
१२	राष्ट्र-भाषा और पञ्जाब की स्थिति	,, पं० ठाकुरदत्त शर्मा	२५
१३	फलों की सेवन-विधि	,, डा० सुरेन्द्रप्रसाद	२९
१४	दान की जगह काम	,, प्रभुदयाल विद्यार्थी	३२
१५	खादी ही क्यों ?	,, काशीनाथ त्रिवेदी	३३
१६	मिल के कपड़े क्यों नहीं ?	,, काशीनाथ त्रिवेदी	३४
१७	सफल सम्मेलन	,, सम्पादक 'हिन्दी मिलाप'	३५
१८	सम्मेलन के लिए उपयोगी सुझाव	,, सम्पूर्णानन्द जी	३६
१९	अबोहर सम्मेलन	,, श्रीमन्नारायण अग्रवाल	३७
२०	अबोहर सम्मेलन कुछ आप-बीती	,, नरदेव शास्त्री	३८
२१	सम्मेलन का अबोहर अधिवेशन	,, के० पी० दीक्षितः—	४२
२२	अबोहर-अधिवेशन पर एक दृष्टि	,, भागीरथप्रसाद दीक्षितः—	४३
२३	सम्मेलन का कोढ़—कवि सम्मेलन	,, किशोरीदास बाजपेयी	४६
२४	हिन्दी परीक्षा मन्दिर—अपनी बात : हिन्दी साहित्य में आलोचना का स्थान : अलङ्कारों की मौलिकता		५०
२५	अबोहर सम्मेलन का नेपथ्य	,, विद्याधर शास्त्री एम० ए०	५३
२६	हि० सा० स० के ३० वें अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव		५४
२७	अबोहर अधिवेश का संक्षिप्त विवरण		६१
२८	दीपक के प्रकाश में—(समालोचना)		७१
२९	सम्पादकीय नोट—अबोहर सम्मेलन : अगला अधिवेशन मैणी साहब में		७२

नोटः—सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्तावों की पृष्ठ संख्या ४९ से ५२ गलत छप गई है, कृपया इन्हें ५५ से ५८ पढ़ें।

'दीपक' के नियम

१—'दीपक' हर अंग्रेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२—'दीपक' का वार्षिक मूल्य डाक व्यय व विशेषांक सहित केवल २।।) है। एक प्रति ४ आने, विदेश से ४)।

३—'दीपक' में प्रकाशनार्थ लिखे जाने वाले लेख अधूरे न हों, पृष्ठ के एक ओर ही संशोधन के लिये इधर उधर जगह छोड़ कर सफ़ाई से लिखे हों, विस्तार में चार पृष्ठ से अधिक न हों। भाषा उनकी सरल व शैली रोचक हो जिससे साधारण योग्यता वाले व्यक्ति भी जिनके हितार्थ 'दीपक' प्रकाशित हुआ है, उन्हें पढ़ व समझ सकें।

४—'दीपक' का मुख्य उद्देश्य ग्राम-सुधार, समाज-उत्थान, शिक्षा व राष्ट्र-भाषा-प्रचार द्वारा जनता-जनार्दनमें जीवन-जागृति पैदा करना है। अतः धार्मिक ईर्ष्या, साम्प्रदायिक विद्वेष पूर्ण उपरोक्त उद्देश्य के विपरीत कोई लेख न छप सकेगा।

५—लेख घटाने-बढ़ाने, संशोधन करने तथा प्रकाशित करने या न करने का अधिकार संपादक को होगा।

६—'दीपक' के ग्राहकों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा पता और ग्राहक नम्बर साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिये, अन्यथा जवाब देर से मिलेगा। ३ मास से कम समयके लिये पता बदलवानें के लिये डाकखानेसे प्रबंध करें।

७—अस्वीकृत लेख डाक खर्च भेजने पर ही लौटाये जा सकेंगे अन्यथा नहीं।

८—जिन सज्जनों को किसी मास का 'दीपक' न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछ ताछ करके बाद में हमारे पास लिखना चाहिये।

८—लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक व मूल्य तथा प्रबन्ध विषयक पत्र मैनेजर 'दीपक' के पते से और परीक्षा सम्बन्धी लेख व पत्र श्री चन्द्रकान्त शास्त्री श्रीराम निकेतन मुलतान-सिटी के पते से आने चाहियें।

स्तंभ-सूची

१ जीवन-चर्चा
२ पुस्तकालय
३ नवीन-शिक्षा
४ राष्ट्र-भाषा
५ हमारे गाँव
६ देहाती-साहित्य
७ खेती-बाड़ी
८ उद्योग-धंधे
९ पशु-पालन
१० स्वास्थ्य-साधना
११ हमारा आहार
१२ महिला-मंडल
१३ बाल-मंदिर
१४ हिन्दी परीक्षा मन्दिर
१५ प्रकृति और विज्ञान
१६ सामयिक चर्चा
१७ सम्पादकीय नोट

कृपालु लेखक-लेखिकाओं से नम्र निवेदन है कि वे 'दीपक' के लिये कुछ लिखने से पहिले एक बार हमारे स्तंभों की सूची देख लें। इन स्तंभों के अतिरिक्त भाव-पूर्ण किन्तु सात्विक कविता और कहानियों के लिये भी 'दीपक' के कुछ पृष्ठ 'रिज़र्व' हैं सरल भाषा में लिखे गये व्यवहारिक लेख 'दीपक' के श्रद्धापात्र होंगे।

'दीपक' के लिए चलता पुस्तकालय कमेटी का सहयोग

ग्राहक संख्या कम होने तथा कागज का भाव दिनपर दिन बढते रहने से 'दीपक' का घाटा भी प्रतिमास बढता जा रहा है। ऐसी स्थिति में, अधिक समय तक घाटा सहते रहने की सामर्थ्य न देख सञ्चालक 'दीपक' का प्रकाशन ही बन्द करने का विचार कर रहे थे। 'दीपक' के इस सङ्कटकाल में चलता पुस्तकालय कमेटी साहित्य सदन, अबोहर के सदस्यों ने 'दीपक' का जारी रहना अत्यावश्यक समझ कर उन सब ग्रामों में जहाँ चलते पुस्तकालय की ओर से पुस्तकें वितरण की जाती हैं, 'दीपक' की एक-एक प्रति वर्ष भर के लिए चलता पुस्तकालय कमेटी की ओर से जारी करने का निश्चय किया है तथा सौ रुपये की नकद सहायता भी दी है। चलता पुस्तकालय कमेटी की यह सामयिक सहायता 'दीपक' के लिए प्राणदायक ही सिद्ध होगी। हम चलता पुस्तकालय कमेटी के परम कृतज्ञ हैं कि उन्होंने साहित्य सदन की एक अत्यन्त उपयोगी प्रवृत्ति को चालू रखने में सहायता दी है।

चन्दा न भेजने वाले उन सैंकड़ों ग्राहकों से

हम क्या कहें कि जो वर्षों से लगातार 'दीपक' को पढ रहे हैं, किन्तु कई बार लिखने, स्वयं उनकी सेवा में पहुँचने पर भी उन्होंने अभी तक अपना पिछला चन्दा नहीं दिया है। इनमें अबोहर इलाके के गाँवों तथा मण्डियों के ही अधिकांश वे सज्जन हैं जो श्री स्वामी केशवानन्द जी के परम श्रद्धालु तथा साहित्य सदन के परम हितैषी हैं। किन्तु वास्तव में ये ही 'दीपक' को इस सङ्कटापन्न स्थिति को पहुँचाने में सहायक हुए हैं। इन सब की ओर पिछले वर्षों का लगभग ३॥ सौ रुपया चन्दा शेष है। अतः अब हम इस बात के लिए विवश हुए हैं कि अगले मास से उनके नाम 'दीपक' में क्रमश: प्रकाशित करें। क्या हम आशा करें कि वे अपना शेष चन्दा शीघ्र भेजने की कृपा करेंगे?

ग्राहकों से क्षमा-याचना

'दीपक' का नवम्बर का नववर्षांक निकालने के बाद बिना पूर्व सूचना दिये, दिसम्बर, जनवरी का अङ्क हम समय पर पाठकों को न दे सके। ३॥ मास में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन की तैयारी करनी थी। पहले हमें आशा थी कि ठीक समय पर हम दिसम्बर, जनवरी के अङ्क दे सकेंगे। किन्तु बाद में हम लोगों पर तथा प्रेस कर्मचारियों पर काम का इतना अधिक दबाव आ पड़ा कि 'दीपक' के ये अङ्क समय पर निकालने बिलकुल कठिन हो गये। ठीक समय पर पाठकों को 'दीपक' न मिलने से जो कठिनाई हुई उसके लिए हार्दिक क्षमा माँगते हुए हम 'सम्मेलनांक' के रूप में दिसम्बर-जनवरी अङ्क सेवा में प्रेषित कर रहे हैं। अगला अङ्क भी फरवरी-मार्च का सम्मिलित अङ्क निकाल कर हम 'दीपक' की कमी पूरी करदेंगे तथा फिर प्रति मास ठीक समय पर 'दीपक' निकलता रहेगा। आशा है पाठक हमारी इस विवशता के लिए क्षमा करके 'दीपक' के प्रति पूर्ववत् कृपा-दृष्टि रखेंगे।

'दीपक' की पृष्ठ-संख्या घटी

'दीपक' अपने पैरों पर खड़ा भी नहीं हुआ था, कि युद्ध के कारण छपाई के साधनों—विशेषतः कागज का मूल्य बढ गया जिससे 'दीपक' का खर्च भी बढा। अपनी शक्ति के अनुसार जहाँ तक हो सका, हम इस बढे हुए खर्च को सहन करते रहे, किन्तु कागजों के मूल्य के बढने की कोई सीमा नहीं रही, कई गुना अधिक हो गया। ऐसी स्थिति में हम विवश हो गये कि 'दीपक' की पृष्ठ संख्या कम करें। अतः जनवरी १९४२ से 'दीपक' की पाठ्य सामग्री की पृष्ठ संख्या ३२ करदी गई है। किन्तु ज्योंही कागज का मूल्य कम हुआ अथवा 'दीपक' की आय बढी, हम फौरन इसकी पृष्ठ संख्या बढादेंगे। आशा है कृपालु पाठक इस विशेष स्थिति का ध्यान कर इतने ही पृष्ठों में सन्तोष करेंगे।

—प्रबन्धक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग (हिन्दी विश्वविद्यालय)

नवम्बर मास की हिन्दी परिचय तथा कोविद परीक्षाओं का परीक्षाफल

हिंदी कोविद परीक्षा

प्रथम श्रेणी

केन्द्र—

अबोहर श्री किशोरीलाल शर्मा

दिल्ली कु॰ सुशीला देवी, कृष्णाकुमारी जैरत, उमा भटनागर, जगदम्बा भटनागर, जनक दुलारी, सुशील कुमारी भारद्वाज, सावित्री कपूर ।

मट्टन शम्भोनाथ

रावलपिंडी लाजवती भार्गव, रामस्वरूप शर्मा

लाहौर राजकुमारी खन्ना, द्रौपदी देवी, आशाराम,

शिमला ठाकुरदेवी, बिमला देवी, लीलावती खोसला

श्रीनगर इन्दिरा देवी

द्वितीय श्रेणी

दिल्ली सत्यवती मेहरा, फूलोदेवी खन्ना

रावलपिंडी ओम् प्रकाश जेतली, गङ्गादेवी भार्गव

लाहौर कुमारी शकुन्तला, फूलारानी, कोमला पल्ली कृपा नन्दन

शिमला सरस्वती देवी ठाकुर, शान्ति देवी, शांता देवी शर्मा, सरोजकुमारी जोशी, कृष्णाकुमारी

श्रीनगर लम्बादर लंगू, त्रिलोकीनाथ तिकू

तृतीय श्रेणी

दिल्ली यशोदारानी माथुर, कुमारी ओम्प्यारी, कांता देवी जैन

प्रयाग सन्त सम्पूर्णसिंह 'शील'

मट्टन प्रेमनाथ धोतदार

रावलपिंडी गार्गी शर्मा, रामकिशन अग्रवाल

लाहौर चित्रानन्द शर्मा, महेन्द्रलाल शर्मा हुंडू, विद्या व्यास, सुदर्शन कुमारी मेहन

केन्द्र—

शिमला सरला देवी, सुवीरमती, शकुन्तला देवी, कौशल्या देवी, लीलावती, कृष्णा देवी लीलावती, कुन्ती देवी, राजकुमारी

श्रीनगर प्रेमनाथ डेबी, कुमारी भगवती रैणा

हिंदी परिचय परीक्षा

प्रथम श्रेणी

जम्मू शक्तिदेवी, शङ्करदत्त साठे

रावलपिंडी मेहता राधाकृष्णदत्त, शांता कुमारी, शांता पोपली, लीलावती, शांतिदेवी, श्रीनन्द कोल, रोहिणीनन्दन दुबे

सारनाथ महानाम

श्रीनगर नन्दलाल बातल

द्वितीय श्रेणी

जम्मू कृष्णादेवी बाली, इन्द्रजीत कौल

मट्टन श्रीनाथ पण्डिता, शम्भूनाथ शेर

रावलपिंडी लाला सांईदास भाटिया, कमला चावला, सन्तोषकुमारी चावला, सरोज नांगिया, कौशल्या शर्मा, कृष्णाकुमारी कालड़ा, भागवन्ती, भूपालसिंह रावत

श्रीनगर टीकालाल माम, शोभाशङ्कर महू, पृथ्वीनाथ कौर

तृतीय श्रेणी

जम्मू दयावती

मट्टन जगन्नाथ पण्डिता, प्रेमनाथ किच्लू, काशीनाथ काच्चूर, विश्वानाथ काच्चूर, अर्जुननाथ तिकू

रावलपिंडी नानकचन्द्र सैगन, देवीदास वर्मा

श्रीनगर गोपीनाथ वोरा, अमरनाथ कौर

—दयाशंकर दुबे, परीक्षा मन्त्री

Approved for use in Schools in the Punjab, U.,P., C.,P., Bihar, Bombay, Orissa, Sindh. Kotah, Baroda, Bikaner & J & K. States.

सत्यम् :: शिवम् :: सुन्दरम्
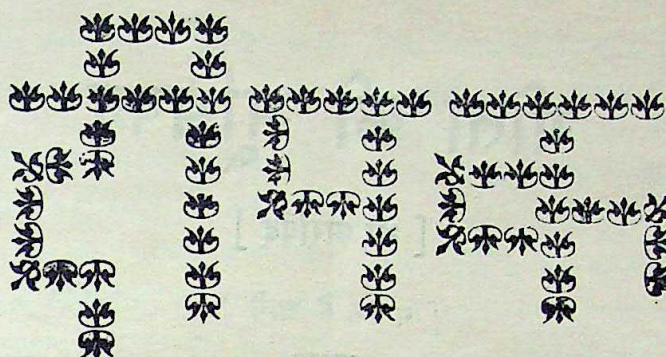
सम्पादक— तेगराम

[हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की सम्पत्ति तथा पञ्जाब में राष्ट्रभाषा प्रचार करने वाली प्रमुख सँस्था— साहित्य सदन, अबोहर का मुखपत्र]

मार्गशीर्ष पौष	१९९८	वर्ष ७, सँख्या २–३ पूर्ण सँख्या ७४–७५	दिसम्बर १९४१ जनवरी १९४२

*स्वागत-गीत—

—उदयशंकर भट्ट

स्वागत, स्वागत सदय बन्धुवर ! स्वागत हे साहित्य-दिवाकर !!

स्वागत बरद पुत्र हिन्दी के, दीप्ति राष्ट्र माँ की बिन्दी के
बिजय-घोष साहित्य-सृष्टि के, हे जलधर पीयूष-वृष्टि के
आओ, आओ, स्वागत बुधवर ! स्वागत, स्वागत, सदय बन्धुवर !!

जीवन में अनुरक्ति जगाओ, जीवन जीवनशक्ति जगाओ
इस बसुधा को स्वर्ग बनाओ, हे कवि ! ऐसे गीत सुनाओ
हे साहित्य-सुमन के मधुकर ! स्वागत, स्वागत, सदय बन्धुवर !!

सत्य असत्य न एक करें हम, नीर—क्षीर—विवेक करें हम
यति से विरति हमें सिखलाओ, लेखकवर ! सत्पथ दिखलाओ
हो माँ का मस्तक उन्नततर ! स्वागत, स्वागत, सदय बन्धुवर !!

हो स्वतन्त्र यह देश हमारा, और समुन्नत प्यारा प्यारा
भर दो इतनी अभिलाषाएँ, वर दो हम सब बलि बलि जाएँ
बलिदानों का दिवस मनोहर, स्वागत, स्वागत, सदय बन्धुवर !
स्वागत, हे साहित्य दिवाकर !!

*यह स्वागत-गान सम्मेलन के अबोहर-अधिवेशन पर २७–१२–४१ को गाया गया था।

गीता की भूमिका

[श्री अरविंद]

[गतांक से आगे]

पात्र

गीतोक्त ज्ञान के पात्र हैं पांडवश्रेष्ठ महावीर इन्द्रतनय अर्जन। जिस प्रकार वक्ता को अलग करके गीता के उद्देश्य और निगूढ अर्थ को पाना कठिन है, उसी प्रकार पात्र को अलग कर देने से भी उसके अर्थ की हानि होती है।

अर्जुन श्रीकृष्ण के सखा थे। जो लोग श्रीकृष्ण के समकालीन थे, एक ही कर्मक्षेत्र में उतरे थे, उनका मनुष्य शरीरधारी पुरुषोत्तम के साथ अपने-अपने अधिकार और पूर्वकर्म भेद के अनुसार नानारूप सम्बन्ध स्थापित हुआ। उद्धव श्रीकृष्ण के भक्त थे, सात्यकि उनके अनुगत सहचर और अनुचर थे; राजा युधिष्ठिर उनकी मन्त्रणा के अनुसार चलने वाले आत्मीय और बन्धु थे, किन्तु जैसी घनिष्टता श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन की हुई वैसी और कोई नहीं कर सका। एक उमर के दो पुरुषों में जितना भी मधुर और निकट सम्बन्ध हो सकता है वह श्रीकृष्ण और अर्जुन में विद्यमान था। अर्जुन श्रीकृष्ण के भाई थे, उनके प्रियतम सखा थे, उनकी प्राणप्रिया बहिन सुभद्रा के स्वामी थे। चतुर्थ अध्याय में भगवान् ने कहा है कि इस घनिष्ठता के कारण ही उन्होंने गीता के परम रहस्य को सुनने के लिये अर्जुन को पात्र रूप से वरण किया था।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥

"इस पुरातन गुप्त योग को आज मैंने अपना भक्त और सखा जानकर तुझ से प्रकट किया। कारण, यह योग ही जगत् का श्रेष्ठ और परम रहस्य है।" अठारहवें अध्याय में भी गीता के केन्द्रस्वरूप मूल मन्त्र को व्यक्त करने के समय इस बात की पुनरुक्ति हुई है।

सर्व गुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमति ततो वक्ष्यामि ते हित॥

"अब मेरी परम और सबसे गुह्यतम बात को सुन। तू मुझे अत्यन्त प्रिय है, इसी कारण मैं तेरे निकट इस श्रेष्ठ मार्ग की बात को प्रकट करूँगा।" इन दोनों श्लोकों का तात्पर्य श्रुति के अनुकूल है, जैसा कि कठोपनिषद में कहा गया है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य—
स्तस्यैष आत्म्य वृणुते तनूस्वां॥

"यह परमात्मा दार्शनिक की व्याख्या द्वारा भी लभ्य नहीं है, मेधाशक्ति द्वारा भी नहीं, विस्तर शास्त्र-ज्ञान द्वारा भी नहीं। भगवान् तो जिन्हें वरण करते हैं उन्हीं को लभ्य होते हैं, उन्हीं के निकट परमात्मा अपने शरीर को प्रकट करते हैं।" अतएव जो भगवान् के साथ सखा

आदि मधुर सम्बन्ध स्थापित करने में समर्थ होते हैं, वे ही गीतोक्त ज्ञान के पात्र हैं।

इसके अन्दर एक और अत्यन्त प्रयोजनीय बात निहित है। भगवान् ने अर्जुन को एक ही शरीर से भक्त और सखा कह कर वरण किया है। भक्त अनेक विध होते हैं। साधारणतया किसी को भक्त कहने से जो बात मनमें उठती है वह है गुरु शिष्य का सम्बन्ध। उस भक्ति के मूल में प्रेम है सही, किन्तु प्रायः वाध्यता, सम्मान और अन्धभक्ति ही उसका विशेष लक्षण होता है। परन्तु सखा सखा का सम्मान नहीं करता, वह तो उसके साथ क्रीड़ा-कौतुक, आमोद-प्रमोद और स्नेह-सम्भाषण करता है; क्रीड़ा के लिये उसका उपहास और तिरस्कार भी करता है, गाली और अपने सखा पर जोर-जुल्म भी करता है। सखा हर समय अपने सखा की आज्ञा से बन्धा हुआ नहीं होता, यद्यपि वह उसकी ज्ञान गरिमा और अकपट हितैषिता पर मुग्ध होकर उसके उपदेशानुसार चलता है सही, किन्तु अन्धरूप से नहीं; वह उसके साथ तर्क करता है, अपने समस्त सन्देहों को उसे जनाता है, बीच-बीच में उसके मत का प्रतिवाद भी करता है। सखा सम्बन्ध की पहली शिक्षा है भय का विसर्जन। प्रेम ही उसकी पहली और अन्तिम बात होती है। जो लोग इस जगत् को माधुर्यमय, रहस्यमय प्रेममय और आनन्दमय लीला समझ कर भगवान् को लीला के सहचर रूप मे वरण करके सखा सम्बन्ध में बांध सकते हैं, वे ही हैं गीतोक्त ज्ञान के पात्र। जो भगवान् की महिमा, प्रभुत्व, ज्ञान गरिमा और भीषणत्व को हृदयंगम करके भी उससे अभिभूत न होकर उनके साथ हँसते-हँसते खेलते रहते हैं, वे ही हैं गीतोक्त ज्ञान के पात्र।

सखा सम्बन्ध में क्रीड़ा के नाते और सब सम्बन्ध अन्तर्भूत हो सकते हैं। गुरु शिष्य सम्बन्ध यदि सखा भाव में प्रतिष्ठित हो तो वह अत्यन्त मधुर होता है। ऐसे ही सम्बन्ध की स्थापना गीता के आरम्भ में अर्जुन ने श्रीकृष्ण के साथ की थी। "तुम मेरे परम हितैषी बन्धु हो, तुम्हारे सिवा मैं और किस की शरण जाऊँ? मैं हत-बुद्धि हूँ, कर्त्तव्य के भय से भीत हूँ, कर्त्तव्य के सम्बन्ध में संदिग्ध हूँ, तीव्र शोक से अभिभूत हूँ। तुम मेरी रक्षा करो, उपदेश दो, मैं अपने लौकिक और पारलौकिक मंगल को, समस्त भार को, तुम पर छोड़ता हूँ।" इस भाव के साथ अर्जुन मानव-जाति के सखा और आश्रय के निकट ज्ञान प्राप्त करने आये थे। इसके अतिरिक्त भ्रातृसम्बन्ध और वात्सल्य भाव भी सखा भाव के अन्दर सन्निविष्ट होता है। जो उमर में बड़े और ज्ञान में श्रेष्ठ हैं वे अपने से छोटी उमर वाले तथा अल्प ज्ञानी सखा को मातृवत् स्नेह करते, उनकी रक्षा करते, उनका यत्न करते, उन्हें सदा अपनी गोद में रख कर विपद और अशुभ से बचाते रहते हैं। जो लोग श्रीकृष्ण के साथ सख्य भाव स्थापित करते हैं उनके निकट श्रीकृष्ण अपने मातृ रूप का भी प्रकाश करते हैं। सख्य भाव के अन्दर जिस प्रकार मातृप्रेम की गम्भीरता आ जाती है, उसी प्रकार दाम्पत्य प्रेम की तीव्रता और उत्कट आनन्द भी आ सकता है। सखा सदा अपने सखा के सान्निध्य की प्रार्थना करते और उनके वियोग से दुःखी होते हैं; उनके शरीर के स्पर्श से पुलकित होते तथा उनके लिये प्राण तक दे देने में आनन्द अनुभव करते हैं। दास सम्बन्ध भी सख्य की क्रीड़ा के अन्तर्भूत हो जाने से अत्यन्त मधुर हो जाता है। ऊपर कहा गया है कि जो पुरुषोत्तम के साथ जितना ही मधुर सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं, उनका सख्य भाव उतना ही प्रस्फुटित होता है और वे गीतोक्त ज्ञान की पात्रता को उतना ही प्राप्त करते हैं।

कृष्ण-सखा अर्जुन महाभारत के प्रधान कर्मी हैं, और गीता में जिस कर्मयोग की शिक्षा दी गई है वही उसकी प्रधान शिक्षा है। ज्ञान, भक्ति और कर्म—ये तीन मार्ग एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। गीतोक्त कर्ममार्ग की शिक्षा यह है कि ज्ञान-प्रवर्तित कर्म में भक्ति द्वारा प्राप्त शिक्षा का प्रयोग करके भागवत उद्देश्य की पूर्ति के लिये भगवान् के साथ युक्त होकर उन्हीं के आदेश अनुसार कर्म

करना। जो संसार के दुःख से डरते हैं, वैराग्य रोग से पीड़ित हैं, भगवान् की लीला से उदासीन होना तथा इस लीला को छोड़ कर अन्तर की गोद में छिप कर रहना चाहते हैं, उनका मार्ग स्वतन्त्र है। वीरश्रेष्ठ महाधनुर्धर अर्जुन की इस प्रकार की कोई इच्छा नहीं थी, उनका ऐसा कोई भाव नहीं था। श्रीकृष्ण ने किसी शांत सन्यासी अथवा दार्शनिक ज्ञानी के निकट इस उत्तम रहस्य को प्रकट नहीं किया था; किसी अहिंसापरायण ब्राह्मण को इस शिक्षा के पात्र स्वरूप वरण नहीं किया था; इस अतुलनीय ज्ञान लाभ के उपयुक्त आधार चुने गये थे एक महापराक्रमी, तेजस्वी क्षत्रिय योद्धा। जो संसार युद्ध में जय अथवा पराजय होने पर दोनों ही अवस्था में अविचलित रह सकते हैं, वे ही इस शिक्षा के गूढ़तम रहस्य में प्रवेश कर सकते हैं। "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः" यह आत्मा बलहीन पुरुषों को नहीं मिलता। जो लोग मुमुक्षत्व की अपेक्षा भगवान् को पाने की आकांक्षा का पोषण करते हैं, वे ही भागवत-सान्निध्य के स्वाद को पाकर अपने को नित्य-मुक्त-स्वभाववान् उपलब्ध करने तथा मुमुक्षत्व को अज्ञान का अन्तिम आश्रय जान कर उसका त्याग करने में समर्थ होते हैं। जो तामसिक और राजसिक अहंकार को त्याग कर सात्विक अहंकार से भी बद्ध रहना नहीं चाहते, वे ही गुणातीत हो सकते हैं। अर्जुन ने क्षत्रिय धर्म का पालन कर राजसिक वृत्ति को चरितार्थ किया है, फिर भी उन्होंने सात्विक आदर्श को ग्रहण करके रजःशक्ति को सत्वमुखी किया है। ऐसा पात्र ही गीतोक्त शिक्षा का उत्तम आधार है।

अर्जुन तत्कालीन महापुरुषों में श्रेष्ठ नहीं थे। उस काल में आध्यात्मिक ज्ञान व्यासदेव का श्रेष्ठ था, उस युग का हर प्रकार का सांसारिक ज्ञान भीष्मपितामह का श्रेष्ठ था, ज्ञानतृष्णा राजा धृतराष्ट्र और विदुर की श्रेष्ठ थी, साधुता में और सात्विक गुण में धर्मपुत्र युधिष्ठिर श्रेष्ठ थे, भक्ति में उद्धव और अक्रूर श्रेष्ठ थे तथा स्वभावगत शौर्य और पराक्रम में बड़े भाई महारथी कर्ण श्रेष्ठ थे। फिर भी जगत्-प्रभु ने अर्जुन को ही वरण किया था, उन्हीं के हाथों में अचला जयश्री और गांडीव आदि दिव्य अस्त्रों को देकर उन्हीं के द्वारा सहस्र २ जगद्विख्यात योद्धाओं का संहार करके युधिष्ठिर का निष्कंटक साम्राज्य अर्जुन के पराक्रम द्वारा उपलब्ध दान रूप से स्थापित किया था। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने अर्जुन को ही गीतोक्त परम ज्ञान के लिए एक मात्र उपयुक्त पात्र चुना था। अर्जुन ही हैं महाभारत के नायक और प्रधान कर्मी, इस काव्य का प्रत्येक अंश उन्हीं की यशोकीर्ति की घोषणा करता है। यह पुरुषोत्तम या महाभारत रचियता व्यासदेव का अनुचित पक्षपात नहीं है। अर्जुन का यह उत्कर्ष सम्पूर्ण श्रद्धा और आत्मसमर्पण का फल है। जो लोग पुरुषोत्तम पर सम्पूर्ण श्रद्धा रख कर, कोई दावा न कर अपने शुभ और अशुभ, मंगल और अमंगल, पाप और पुण्य के समस्त भार को उनके अर्पण करते हैं, अपने प्रिय कर्म में आसक्त न होकर उनके आदेशानुसार कर्म करने के लिये तैयार रहते हैं, अपनी प्रिय वृत्ति को चरितार्थ न कर उनके द्वारा प्रेरित वृत्ति को ग्रहण करते हैं, स्वप्रशंसित गुण का आग्रह के साथ आलिंगन न कर उनके दिये हुए गुण और प्रेरणा को उन्हीं के काम में प्रयुक्त करते हैं, वे ही श्रद्धावान अहंकार रहित कर्मयोगी पुरुषोत्तम के प्रियतम सखा और शक्ति के उत्तम आधार होते हैं, उनके द्वारा जगत् के विराट् कर्म निर्दोष रूप से सम्पन्न होते हैं। इसलाम धर्म के प्रणेता हजरत मुहम्मद इसी प्रकार के श्रेष्ठ योगी थे। अर्जुन भी इसी प्रकार आत्म-समर्पण करने में सदा सचेष्ट थे। यही चेष्टा थी श्रीकृष्ण की प्रसन्नता और प्रेम का हेतु। जो लोग सम्पूर्ण आत्म-समर्पण की दृढ चेष्टा करते हैं वे ही हैं गीतोक्त शिक्षा के उत्तम अधिकारी। श्रीकृष्ण उनके गुरु और सखा होकर उनके इहलोक और परलोक के समस्त भार को ग्रहण करते हैं।

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति

श्री अमरनाथ झा का भाषण

अबोहर में हुए सम्मेलन के ३०वें अधिवेशन के सभापति पद से श्री प्रो० अमरनाथ झा ने राष्ट्र-भाषा हिन्दी तथा उसके साहित्य की मौजूदा स्थिति का दिग्दर्शन कराने वाला एक महत्वपूर्ण भाषण दिया। स्थानाभाव से हम उसे यहाँ पूर्णरूप से न देकर उसके आवश्यक अंश ही दे रहे हैं। सं०

सम्मेलन के सभापति के आसन पर बिठाकर जो आपने मेरा सम्मान किया है, उसका मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूँ? यह आसन तो विद्यावृद्ध, वयोवृद्ध, आजन्म उपासकों का है। मैं तो केवल राष्ट्रभाषा के महारथियों का अनुयायी हूँ। यदि मैंने फिर भी आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य की है तो इस कारण से कि मैं हिन्दी को राष्ट्रभाषा समझता हूँ, मैं समझता हूँ कि समस्त देश में ग्राह्य होने की क्षमता इसी में है, और इसके प्रचार और अनुशीलन से देश में ऐक्य हो सकता है। हमारे देश की संस्कृति इसी के द्वारा सुरक्षित रह सकती है। प्राचीन समय में देश के एक कोने से दूसरे तक संस्कृत का प्रचार था। जिस प्रकार यूरोप में लैटिन अन्तर्राष्ट्रीय भाषा थी, वैसे ही संस्कृत यहाँ सब प्रदेशों की भाषा थी। मुगल-साम्राज्य में फारसी का आधिपत्य उत्तरीय भारत पर हो गया, परन्तु देशी भाषाओं की फिर भी उन्नति होती रही और विदेशी भाषा मनोभाव अथवा संस्कृति पर अधिकार न करने पाई। इतना अवश्य है कि शहर में रहने वाले, राज्य के कर्मचारी फारसी लिखने-पढने लगे, परन्तु यह भाषा सार्वजनिक नहीं हो पाई। मुगल साम्राज्य के अनेक मुसलमान विद्वान् संस्कृत और हिन्दी के पण्डितों और कवियों का सम्मान करते थे और उनमें से कई की हिन्दीकृति हम अब भी आनन्द और आदर के साथ पढते हैं। हिन्दी के ग्रन्थ उस समय बिहार, संयुक्तप्रांत, विदर्भ, बुंदेलखंड, बघेलखंड, अवध, राजस्थान और पञ्जाब में लिखे गये। दक्खन के प्राचीन मुसलमान कवियों के काव्य में यदि दस शब्द फारसी के हैं तो ९० शब्द एतद्देशीय हैं। आरम्भ के उर्दू-कवियों ने हिन्दी के शब्दों और छन्दों का प्रयोग किया। इधर सत्तर-अस्सी वर्ष से जो हम में राष्ट्रीयता और आत्मगौरव का भाव आ गया है और हम समझने लगे हैं कि हम सभी एक हैं, हमारा देश एक है, भारत एक अविभाज्य राष्ट्र है, इसका बहुत अंश में श्रेय अँगरेजी को है। सन् १८८६ ई० में जब कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ, उस समय अँगरेजी ही एक ऐसी भाषा थी, जिसको सब प्रतिनिधि समझ सकते थे। अब भी अन्तर्राष्ट्रीय काम के लिये इस भाषा का ज्ञान आवश्यक है और हम में से कुछ को तो अँगरेजी सीखनी ही पड़ेगी। परन्तु किसी देश में अन्य देश की भाषा का प्रधानता का कोई अधिकार नहीं है, और इसलिए हमको चाहिए कि हम अपनी भाषा को ही इस योग्य बनायें कि इसके द्वारा हमारा सभी प्रकार का काम उचित रूप से चल सके।

\+ + ×

संग्रहालय—सम्मेलन ने जो कुछ काम पिछले तीस वर्षों में किया है वह कम नहीं है, बहुत सराहनीय है। कई अच्छे ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है, हिन्दी का प्रचार हुआ है, भारतवर्ष की भाषाओं में हिन्दी आदर का स्थान पा गई है। यह सब होते हुए भी एक अंश अपूर्ण रह गया है—हमारा संग्रहालय अभी तक सन्तोषजनक नहीं हो पाया है। इस कार्य्य में हमें समस्त देश के हिन्दी प्रेमियों के सहयोग की आवश्यकता है। भारत सरकार से हमारा साग्रह निवेदन है, कि जैसे इङ्गलैंड की सभी प्रकाशित पुस्तकें बोडलियन और ब्रिटिश म्यूजियम में भेज दी जाती हैं, वैसे ही इस देश में ऐसा विधान हो जाय जिसके अनुसार हिन्दी के सभी प्रकाशित ग्रन्थ और पत्र हमारे संग्रहालय में पहुँच जायें।

\+ + +

विश्वविद्यालयों में हिन्दी—कुछ लोग यह कहा करते हैं कि भारतवर्ष के वि-श्वविद्यालयों से देशीय भाषाओं की कोई सेवा नहीं हुई है और उनमें अँगरेजी के प्राधान्य के कारण मातृभाषा का प्रेम लोप हो गया है। और भाषाओं का तो यहाँ प्रसंग लाना अनावश्यक है, परन्तु हिन्दी के विषय में यह आक्षेप सर्वथा मिथ्या और निर्मूल है।

\+ + +

वैज्ञानिक परिभाषा—अभी कुछ दिन हुए सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड आफ एज्युकेशन (Central Advisory Board of Education) ने वैज्ञानिक परिभाषा के विषय पर विचार किया था और उसका विवरण भी अब प्रकाशित हो गया है। समाचारपत्रों में कुछ भ्रम फैला हुआ है जिसका संशोधन आवश्यक है। इस बोर्ड के सामने प्रश्न यह था कि समस्त देश के लिए एक ही वैज्ञानिक परिभाषा हो सकती है कि नहीं। इस बोर्ड के सदस्यों में उर्दू और फारसी के समर्थकों की संख्या बहुत थी। यही कारण था कि उपसमिति ने देश का "हिन्दुस्तानी" और "द्राविडी" भाषाओं में विभाग कर दिया। सौभाग्यवश समिति के अधिवेशन में मैं इसका संशोधन "सांस्कृतिक" और "फारसी-अरबी" के रूप में करने में सफल हुआ और इसी रूप में समिति का मत प्रकाशित हुआ है। सम्भव है कुछ का मत यह हो कि फारसी-अरबी को स्थान नहीं मिलना चाहिए, परन्तु मेरी यह सम्मति नहीं है। इस देश में अभी भी बड़ी जन संख्या ऐसी है जो संस्कृत से अनभिज्ञ हैं, जिनके धार्मिक और साहित्यक ग्रन्थ अरबी और फारसी में हैं और जिनकी इन भाषाओं के प्रति वही भक्ति और श्रद्धा है जो हमें संस्कृत के प्रति है। ऐसी स्थिति में यही निर्णय समीचीन है कि नये वैज्ञानिक शब्द संस्कृत से और अरबी-फारसी से लिये जायें, जिनकी रुचि संस्कृत से है वे संस्कृत परिभाषा का प्रयोग करें, और अन्य फारसी-अरबी का। संस्कृत में जो शब्द विद्यमान हैं अथवा जो संस्कृत के सहारे बनाये जा सकते हैं उनका तो व्यवहार करेंगे ही, रहा और शब्दों की बात, उन्हें हम अवश्य ग्रहण करेंगे, चाहे वे किसी भाषा के भी हों।

× + ×

हिन्दी-साहित्य—हमारा साहित्य उच्चकोटि के और साहित्यों की बराबरी कर सकता है। जहाँ सूरदास की भावपूर्ण कबिता हो, कबीर के गूढ और सादी भाषा के पद हों, तुलसी के ग्रन्थरत्न हों; जहाँ केशव और पद्माकर का लालित्य और पद-विन्यास हो; जहाँ बिहारी का रस और मीरा की तल्लीनता हो; भूषण का जहाँ शौर्य्य हो और नन्ददास की भक्ति हो; उस साहित्य का किसे गौरव नहीं होगा ? जिसमें मलिक मुहम्मद जायसी, अबदुर्रहीम खानखाना, 'रसखान', गुलामनबी, उस्मान, नूरमुहम्मद, मुन्शी अजमेरी जी इत्यादि मुसलमानों की उत्कृष्ट रचनायें हों उससे कौन पुलकित न होगा ? देव की सरस कविता,

नेह के दीवाने हरिश्चन्द्र के पद, लाला सीताराम के सुन्दर अनुवाद, श्रीधर पाठक के पद, रत्नाकर की सुरीली बीन, सत्यनारायण के करुणा के स्वर, प्रेमघन की विविध शैली के पद्य, किस सुकवि-समाज को प्रभावित नहीं करेंगे ? अलङ्कार के ग्रन्थ, युद्धों की गाथा, सर्वसाधारण के उपयुक्त भजन और गीत, प्रचुरता से हमारे साहित्य में हैं।

हिन्दी-साहित्य में एक विलक्षणता है जिसका उल्लेख आवश्यक है। हमारे ज्ञान में बहुत कम ऐसी भाषायें हैं जिनमें महिलाओं ने इतनी रचना की हो जितनी हिन्दी में। धार्मिक काल में स्त्रियों ने साहित्यिक सुन्दर रचनायें कीं और रीतिकाल में भी कई उच्चकोटि की कवयित्री हो गई हैं। एक योग्य विद्वान् ने लिखा है कि रीतिकाल में स्त्रियों ने अपने अनुकूल विचारधारा तथा रचनाशैली पाकर स्तुत्य कार्य किया है। आधुनिक काल में तो लेखिकाओं की संख्या बहुत बढ़ी है।

परन्तु फिर भी कुछ अंगों की पूर्ति आवश्यक है। वैज्ञानिक पुस्तकों की अब भी कमी है। मैं जानता हूँ कि पिछले पन्द्रह-बीस वर्ष में कई अच्छी पुस्तकें लिखी गई हैं। पर फिर भी अभी कई ऐसे विषय हैं जिन पर पुस्तकों की आवश्यकता है और विज्ञान तो इतना प्रगतिशील और उन्नतिशील है कि इसके प्रति अंग पर नई-नई पुस्तकों की रचना अभीष्ट है, जिनमें नये आविष्कारों और खोजों का समावेश हो।

दूसरी कमी इतिहास और जीवन-चरित की है। इनमें भी काम हो रहा है, परन्तु इतिहास के विद्वान् अभी यथेष्ट संख्या में हिन्दी में अपने ग्रन्थ नहीं लिखते हैं। यह सत्य है कि अँगरेजी में लिखने से उनकी ख्याति और देशों में होती है और उनका प्रचार अच्छा होता है। मैं नहीं चाहता कि वे अँगरेजी में लिखना छोड़ दें. पर साथ ही हिन्दी में लिखना उनका कर्तव्य है।

चरित्र-लेखन कला में हमने अभी यथेष्ट उन्नति नहीं की है, तथापि सेठ घनश्यामदास बिड़ला का "बापू" और बनारसीदास जी चतुर्वेदी का "सत्यनारायण" और "भारतभक्त एंड्रूज" विशेष उल्लेखनीय हैं। परन्तु जो और पुस्तकें लिखी गई हैं उनमें अधिकांश बहुत कम ऐसी हैं जिनमें लेखक ने स्वयं परिश्रम से, अन्वेषण करके, चरित्र लिखा हो। जीवन-चरित्र केवल वृतान्तों का संकलन और एकत्रीकरण नहीं है। जन्म, अध्ययन, विवाह, सन्तान, और मृत्यु का वर्णन पर्याप्त नहीं है। लेखक का कर्तव्य है कि पाठकों के सामने एक सजीव मूर्ति उपस्थित करे। जिस प्रकार कुशल चित्रकार बाह्य रूप, वेशभूषा से अन्तर्हित आत्मा को देख और दिखा सकता है वैसे ही जीवन-चरित में—सफल-जीवन-चरित में—चरित्र-नायक से पूर्ण परिचय हो जाता है। ऐसी पुस्तकें हमारे यहाँ कम हैं।

समालोचना साहित्य का एक विशेष अंग है। खेद है कि हमारे समालोचकों में बहुत कम ने संस्कृत अथवा हिन्दी के काव्यविषयक ग्रन्थों का अवलोकन किया है। हमारी समालोचनायें किसी सिद्धान्त पर निर्भर नहीं रहती हैं। यह सत्य है कि "पुराणमित्येव न साधु सर्वम्" और पुराने सिद्धान्त केवल पुराने होने के कारण आदरणीय नहीं। तथापि जब हम देखते हैं कि प्रगतिशील यूरोप में अब भी एरिस्टोटेल, हारेस, लौंजाइनस इत्यादि के सूत्रों की कसौटी पर आधुनिक काव्य भी जाँचा जाता है, तो कोई कारण नहीं कि हम भी विश्वनाथ, मम्मट, राजशेखर, दंडिन, भामह, जगन्नाथ के मत का अनुसरण क्यों न करें और साहित्य की विवेचना उनके सिद्धान्तों के सहारे क्यों न करें।

एक और विषय है जिसकी चर्चा मैं डरते हुए करता हूँ—वह यह कि हिन्दी के प्रधान ग्रन्थों का अनुवाद और भाषाओं में होना चाहिए। विदेश में संस्कृत का आदर विद्वानों ने तभी किया जब यूरोपीय भाषाओं में, इटालियन, फ्रेंच, जर्मन, अँगरेजी में संस्कृत पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित हुए। हिन्दी के प्रति और तो और

हमारे देश में ही बड़ा भ्रम फैला हुआ है। इस देश के पढे लिखे लोग भी हिन्दी को "मुर्दा जवान" कहने का साहस करते हैं और हिन्दी का वर्णन यों करते हैं—"वह भाषा जिसमें कभी कुछ मजहबी नज्में लिखी गई थीं।' इन अज्ञों के लिए और अन्य देश वालों के लिए हमें चाहिए कि अपनी प्रधान पुस्तकों का अनुवाद प्रकाशित करायें।

हमारे पत्रों की संख्या कम नहीं है और इनमें कई उच्च श्रेणी के हैं। पत्र-पत्रिकायें हमारे साहित्य-निर्माण में बहुत काम कर रही हैं। हमारे सम्पादकों की सम्पादनकला प्रशंसनीय है। परन्तु इनमें से अधिक पत्रों की आर्थिक दशा अच्छी नहीं है। हिन्दी-प्रेमियों को चाहिए कि इनके ग्राहक बनें, और यह विशेष प्रबल होना चाहिए कि इनमें विज्ञापन प्रकाशित हों। केवल ग्राहकों के अवलम्बन पर पत्र चलना कठिन है।

× × +

हिन्दी और हिन्दुस्तानी—इधर कई वर्ष से साहित्य क्षेत्र में एक अनावश्यक झगड़ा छिड़ा हुआ है। इस झगड़े से परस्पर मनोमालिन्य फैल गया है, वैमनस्य बढ गया है, वैयक्तिक आक्षेप होने लगे हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में तो यह झगड़ा कभी उठना ही न चाहिए था। और जहाँ चाहे ये झगड़े हों, इस सम्मेलन में तो कोई भ्रम व स्थान ही नहीं है। हिन्दी कोई नई भाषा गढी नहीं जा रही थी। हिन्दी चन्दबरदाई के समय से स्वाभाविक उन्नति कर रही है, इसका रूप लेखकों द्वारा निर्धारित हो चुका है। रामचरितमानस में अनेक फारसी और अरबी के शब्द हैं। बिहारी की सतसई में बहुत से फारसी शब्दों का समावेश है। जो शब्द व्यवहार में स्वाभाविकतया आ जाते हैं उनके बहिष्कार का प्रयत्न हिन्दी में नहीं हुआ था। हिन्दी का जन्म संस्कृत से है। जो कोई गम्भीर विषय पर हिन्दी में लिखेगा उसके लिये संस्कृत-शब्दों का प्रयोग अनिवार्य है। जो नये वैज्ञानिक शब्द निर्माण हिन्दी में होंगे वे संस्कृत से ही लिये जा सकते हैं। यदि हम आशा करते हैं कि हिन्दी अहिन्दी प्रांतों में समझी जाय और व्यवहृत हो तो केवल वही हिन्दी सर्वग्राह्य होगी जो संस्कृतमयी होगी और जिसमें उन प्रान्त वालों को कुछ परिचित शब्दों और संस्कृति की झलक मिलेगी। जो कोई उर्दू जानता है और हिन्दी जानता है वह तो इसको नहीं मानेगा कि दोनों भाषायें एक हैं।

मैं इस झगड़े में नहीं पड़ा चाहता कि दोनों में से कौन सी भाषा अच्छी है, परन्तु इतना तो अवश्य कहूंगा कि जो इन दोनों का एक समझता है उसमें आत्म-प्रतारणा की बड़ी क्षमता है।

× × +

परन्तु यह भी मैं कहना चाहता हूं कि यदि उच्चकोटिके साहित्य में, गम्भीर भावों के प्रकट करने में, वैज्ञानिक और दार्शनिक विवरण में, संस्कृत के शब्दों का प्रचुरता से व्यवहार आवश्यक है, जहाँ तक जनता का सम्बन्ध है हमारी चेष्टा यह होनी चाहिए कि भाषा सरल हो। जन-साधारण से हम यह आशा नहीं कर सकते कि उनमें क्लिष्ट संस्कृत-शब्दों के समझने की योग्यता हो। समाचार-पत्रों की भाषा, लोकोक्तियों की भाषा और गीतों की भाषा तो ऐसी होनी चाहिए कि वह सद्यःहृदयङ्गम हो। ग्राम-साहित्य की भाषा ललित साहित्य की भाषा से भिन्न होगी। यदि हिन्दी का ही दूसरा नाम "हिन्दुस्तानी" है तो मुझे इस शब्द के व्यवहार में कोई आपत्ति नहीं है और जैसा कि मैं कह चुका हूँ, उर्दू से मुझे प्रेम है। पञ्जाब और संयुक्त-प्रांत में तो मैं चाहता हूँ कि बच्चा-बच्चा देवनागरी और फारसी दोनों लिपि सीखे।

+ × ×

काश्मीर, पंजाब और हैदराबाद में हिन्दी—काश्मीर और पञ्जाब में हिन्दी की दशा शोचनीय है। काश्मीर में तो आशा है कि वहाँ की उदार सरकार हिन्दी

को कालक्रम से वही स्थान शिक्षा-पद्धति में दे देगी जो उसने उर्दू को दिया है। वहाँ की जनता की मातृभाषा तो काश्मीरी है, परन्तु जिस कारण से—संस्कृति की रक्षा के कारण—उर्दू को स्थान मिला है, उसी कारण से हिंदी को भी स्थान मिलना न्यायसंगत है। परन्तु पञ्जाब में तो हिन्दी-प्रेमियों को बहुत अड़चनें हैं। हिन्दी पठन-पाठन के लिए न केवल पूर्ण स्वतन्त्रता ही होनी चाहिए, इसकी पुष्टि के लिए शिक्षा-विभाग को यथोचित उदारता और सहानुभूति दिखानी चाहिए। कचहरियों में देवनागरी लिपि में हिन्दी अर्जियाँ ग्राह्य होनी चाहिएँ। इस विषय में संकीर्णता और दुराग्रह उचित नहीं है। हैदराबाद-राज्य में भी हिन्दी को बड़ी कठिनाइयाँ हो रही हैं, यद्यपि वहाँ की हिन्दी-प्रचार-सभा की परीक्षाओं में २५०० विद्यार्थी सम्मिलित हो चुके हैं और तीस-चालीस संस्थाओं-द्वारा हिन्दी की सेवा हो रही है। हिन्दी की गणना वहाँ की मुल्की जबानों में नहीं है। हैदराबाद की सरकार से हिन्दी प्रचार-सभा ने जो प्रार्थना की थी वह केवल इतनी कि हिन्दीभाषियों की प्रारम्भिक शिक्षा हिन्दी में हो, मध्यम वर्ग में हिन्दी ऐच्छिक रूप में पढने की आज्ञा मिले, स्कूल लिविङ्ग सर्टीफिकेट, और उस्मानिया मैट्रिक्युलेशन, में हिन्दी लेने की आज्ञा हो, और उस्मानिया यूनिवर्सिटी में हिन्दी-विभाग खोला जाय। यह भी प्रार्थना की गई थी कि यदि हिन्दी पढाने का सरकारी स्कूलों में प्रबन्ध न हो सके, तो जिन स्कूलों में हो सकता है उनको आर्थिक सहायता दी जाय। हम हैदराबाद हिन्दी-सभा के इस वाक्य से पूर्णरूप से सहमत हैं—"इसका मुतालिबा इस मुल्क में बसने वाले दो-तीन लाख हिन्दी बोलने वालों के लिए इनकी तालीमी जिन्दगी व मौत का सवाल है और कम्यूनिके में जिस सरसरी तौर से इनको खारिज अज बहस करने की कोशिश की गई है वो इस वफादार तबके के लिए बेहद बेचैनी का बायस है।" हिन्दी के प्रति और अन्य प्रकार की वहाँ उदासीनता है। इस वर्ष के सम्मेलन का अधिवेशन वहाँ न होने पाया। हम आशा करते हैं कि वर्तमान हैदराबाद कौन्सिल के सभापति, हमारे प्राचीन और प्रिय मित्र नवाब साहब छतारी हिन्दी प्रचार-सभा की प्रार्थनाओं को स्वीकार कर अपनी न्यायपरायणता का प्रमाण देंगे।

स्वस्थ रहने के दस नियम

१. सूर्योदय के पहले उठो, प्रातर्विधि से निवृत्त हो आत्मचिन्तन करो।
२. एक घंटा टहलो या २० मिनट डट कर व्यायाम करो।
३. स्वादिष्ट, मित व सर्वांगपूर्ण आहार केवल दो बार करो।
४. प्रकृति के तत्त्वों से दिन में एक बार ही सही, अवश्य दोस्ती करो।
५. पन्द्रह दिन में १ दिन या एक समय उपवास करो।
६. चाय, शराब, अफीम, बीड़ी, आदि व्यसनों से दूर रहो।
७. आगमन (खान-पान) एवं विसर्जन (मल-मूत्र-त्याग) की क्रियाओं पर सदा ध्यान रक्खो।
८. इन्द्रिय-निग्रह में सजग रहो।
९. ईश्वर पर विश्वास रख प्रसन्न रहो।
१०. नियमित काम और आराम करो।

—बृजभूषण मिश्र एम० ए०

विद्यार्थियों को पढ़ाते समय शिक्षक की मनोदशा

[बृजभूषण मिश्र एम० ए०]

मनुष्य के अनेक प्रकार के धन्धों में शिक्षक का धन्धा सर्वोत्तम है। ब्राह्मण (ब्रह्मविद्या, आत्मज्ञान प्राप्त व्यक्ति) के ६ कामों में पढने और पढाने का कार्य प्रथम स्थान रखता है। यह कार्य साधारण नहीं। यह बड़ी कठिन तपस्या है। इसके लिए, कठिनाई को भोगने के लिए, आत्मा से साक्षात्कार करने वाले ब्रह्मज्ञानी ही चुने गए हैं। विश्व-कल्याण की भावना जिनमें कूट-कूट कर भरी थी. वे तत्वेत्ता फिर इस दुस्तर कार्य को करने से इन्कार कैसे करते ?

घर में साधारणतः छोटे बचों के पढाने का समय वह रखा जाता है जब शिक्षक (बहुधा माता) सारे कामों से फुर्सत पा आराम करने की इच्छा रखती है। प्रातः ५ बजे से ११ बजे दोपहर तक विविध कार्यों में लगे रहने के बाद उसके लिए आराम आवश्यक है। किन्तु यही समय बहुधा बचों को पढाने को दिया जाता है। उस समय बचा भी कुछ उनींदा सा रहता है। शिक्षक की मनोदशा तो इस कार्य से बिलकुल विपरीत होती है। उसका ध्यान पढाने की ओर नहीं रहता। ऐसी परिस्थितियों में बचों को न पढाना ही उचित है। उस समय यदि पढाने का भार लिया जावेगा तो परिणाम निम्नलिखित होगें:—

(१) बच्चे को जो बात अच्छी तरह, बिस्तार से समझानी चाहिए, शिक्षक पूरा समय देकर उसे न समझा सकेगा। कम शब्दों में अधिक अर्थ भरा जाता है जिसको ग्रहण करना छोटे बचों की मानसिक सीमा के परे होता है।

(२) अतः वह बात समझ में न आने के कारण बचा उस विषय के प्रति आकर्षित नहीं होता। जब तक आकर्षण न पैदा किया जा सके, बच्चे की शिक्षा अधूरी है। बिना रुचि या चाव पैदा किये कोई चीज जबरन पढाना बच्चे पर जोरोजुल्म हैं, अत्याचार है।

(३) अतः किसी विषय को समझ न सकने के कारण वह पूछे गए प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाता, परिणाम स्वरूप शिक्षक खीझता है और मारपीट तक की नौबत आ जाती है। इस प्रकार सुकुमार कुसुम-कली खिलने के पहले ही मुरझा जाती है। बच्चे को पढने की ओर आकर्षण के स्थान पर घृणा हो जाती है।

(४) पढने से घृणा होने पर वह शिक्षा से जी चुराने लगता है। और यदि यही दशा रही तो फिर सारी उम्र तक वह घृणा बनी रहती है। मेरे एक मित्र हैं जिन के पिता बचपन में हिन्दी पढाते समय उन्हें बहुत डाँटा करते थे। फल यह हुआ कि वे अँग्रेजी आदि का खूब अच्छा ज्ञान रखते हुए भी आज हिन्दी पढने व लिखने से दूर भागते हैं। कितनी भारी हानि हुई उस बेचारे की!

(५) इस प्रकार किसी पढाये विषय में जब बच्चे की ओर से उत्तर नहीं मिलता तो शिक्षक का उत्साह मारा जाता है और वह विवेक छोड़कर डाँटने व मारने लगता है। शिक्षक एक तो पहले ही थके-माँदे थे, फिर बच्चे की नासमझी (पर वास्तव में शिक्षक की ही)। ये दोनों बातें मिलकर उसके आराम में बाधा डालती हैं। इसमें दोनों गए, माया मिली न राम। न शिक्षा ही हुई और न आराम मिला। खीझ एवं मनोद्वेग अलबत्ते हाथ लगा।

इसलिए बचों को उस समय पढाना चाहिए जब शिक्षक खूब ही तरोताजा हो।

बच्चों के पढ़ाने में शिक्षक को बच्चे की ओर अनन्त प्रेम रखना चाहिए। जब तक विद्यार्थियों के प्रति शिक्षक का प्रेम न होगा तब तक पढ़ाई ठीक न होगी। हृदय-हृदय को आकर्षित करता है। ईश्वर की इन विचित्र कृतिकलियों को देखकर यदि शिक्षक प्रेमविभोर नहीं हो जाता तो वह हृदयहीन व्यक्ति शिक्षक होने के योग्य नहीं है। जो प्रकृति की कृतियों से समुल्लसित न हो उस नीरस को शिक्षा देने का अधिकार नहीं। विद्यार्थी के प्रति समवेदना, स्नेह, कली खिलाने की तीव्र अभिलाषा की स्थिति शिक्षक में होनी चाहिए।

यदि शिक्षक इस मनोदशा से विद्यार्थियों को पढ़ाता है तो उसकी विजय निश्चित है। एक प्रकार की चीजों में सामञ्जस्य व एकता रहती है। जब शिक्षक का हृदय सहानुभूति, स्नेह आदि दैवी गुणों से लबालब होता है तो विद्यार्थी स्वयमेव शिक्षक की ओर आकृष्ट होते हैं। यह आकर्षण आत्मिक होता है।

आत्मिक आकर्षण के फलस्वरूप शिक्षक विद्यार्थी को तुरन्त अपने अनुकूल कर शिक्षा को ग्रहण करने योग्य बना लेता है। वह शरीर, मन एवं आत्मा—सब उपादानों से शिक्षक की बातों का अधिक से अधिक ध्यान रखता है, उसका कहना मानता है, उसे (शिक्षक को) प्रसन्न करने की चेष्टा करता है। यह शिक्षक की विजय है। अँधा चाहे दो आँखें। शिक्षक चाहे विद्यार्थियों से विद्या के प्रति प्रेम।

जब शिक्षक और शिक्षार्थी में स्नेहपूर्ण आत्मिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, फिर बाकी की बातें स्वयमेव आ जाती हैं। प्रणयिनी प्रणयी के पास जिन भावों को लेकर अभिसार करती है वे ही भाव लेकर, उसी विनम्रता से शिक्षक को भी विद्यार्थी के पास जाना चाहिए। प्रेमी से मिलने के पूर्व श्यामा सुन्दर से सुन्दर वस्त्र धारण करती है, सजावट-शृङ्गार करती है, प्रेमी को आकर्षित करने का प्रयास करती है और उस पर अपना सब कुछ न्यौछावर कर देती है, छल-कपट का नाम तक नहीं लेती। इसी प्रकार शिक्षक को विद्यार्थी के पास सुन्दर, स्वच्छ, आकर्षक वस्त्र धारण कर जाना चाहिए। क्या पढ़ाना, कैसे पढ़ाना, संक्षेप में अधिक से अधिक ज्ञान कराना, अपना सर्वस्व ज्ञान समर्पित कर देना आदि शिक्षक का अकथित कर्तव्य हो जाता है।

जब शिक्षक विद्यार्थी को पढ़ाने जाता है तो उसे भी विद्यार्थी की हैसियत में होना चाहिए। दूसरे शब्दों में उसे ग्रहणशील होना चाहिए। शिक्षक विद्यार्थियों से अनेक बातें सीख सकता है और विद्यार्थी तो शिक्षक से सीखता ही है। ऐसी परिस्थिति में यदि शिक्षक ग्रहणशील न हुआ तो उसका विकास रुक जाता है। प्रणयी और प्रणयिनी के अथवा किन्हीं भी अन्य प्राणियों के पारस्परिक सम्बन्ध के अन्तर्गत आदान-प्रदान की भावना गुप्त वा प्रकट रूप में मौजूद रहती है। यहां भी शिक्षक को उसी भावना से अभिप्रेत होना चाहिए।

यदि शिक्षक ने मनोद्वेग प्रकट किया; क्रोध, घृणा, बड़प्पन दिखलाया, तो बच्चे या तो उनसे सम्बन्ध विच्छेद कर देंगें या उनसे अपने को अत्यन्त तुच्छ समझ लेगें। ये दोनों दशाएँ घातक हैं।

इसलिए शिक्षक को अपने विद्यार्थी को पढ़ाते समय अपने को व विद्यार्थी को उचित मनोदशा में ही रखना चाहिए। बालक अधखिली कली है। उसके विकास के लिए, हास्य आवश्यक है। शिक्षक ही विद्यार्थियों के विकास का स्रोत है। अतः उसे सदा प्रसन्नचित्त, स्नेह-परिपूर्ण, आकर्षक एवं बराबरी की भावनाओं से भरा रहना चाहिए, तभी भारतवर्ष की भावी सन्तान का कल्याण होगा।

भारतीय राष्ट्र और उसकी भाषा

[राजेन्द्रकुमार जैन]

"यों तो साहित्य-सम्मेलन के सभी अङ्ग अपने अपने स्थान पर अत्यन्त आवश्यक और प्रधान हैं, किन्तु मुझे यह अनुभव करते हुए गर्व होता है. कि इस महान भारतवर्ष के ओर-छोर से आनेवाले आप महानुभावों को जिस शक्ति ने यहां आने के लिए बल पूर्वक प्रेरित किया है, वह 'राष्ट्रभाषा' ही है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमारे भारतवर्ष ने उस समय से एक राष्ट्र के रूप में अपनी सत्ता बना रक्खी है, जब से सभ्यता और संस्कृति का जन्म हुआ। इतिहास का प्रकाश जिस युग तक पहुंचते २ धुंधला पड़ जाता है, उस अत्यन्त प्राचीन युग में भी, भारत एक प्राकृतिक एकता तथा राष्ट्रीयता के सूत्र में बँधा हुवा था। आप अमल-धवल हिमालय की उन्नत चोटी को निहारिए, सिन्धु नदी का नाद सुनिए, गङ्गा-यमुना, गोदावरी और ईरावती के हृदय में झांकिये, अथवा कुमारी अन्तरीप की परिक्रमा दीजिए, क्या आप सचमुच कल्पना कर सकेंगे कि भारत एक राष्ट्र नहीं है? और क्या आप यह भी कल्पना कर सकेंगे कि यह राष्ट्र सदा से मौन रहा है? नहीं, हमारा राष्ट्र सदा से जीवित है और हमारा राष्ट्र सदा से एक भाषा में ही बोलता रहा है, हँसता रहा है, रोता रहा है, गर्जता रहा है और गाता रहा है। तब वह भाषा क्या थी और आज वह भाषा क्या है? इसका उत्तर मुझ से नहीं, आप स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से सुनिए:—

"हमारे व्यावहारिक और भावात्मक जीवन में जिस भाषा का सम्बन्ध सदा से चला आ रहा है वह पहले चाहे जो कुछ कही जाती रही हो, अब हिन्दी कही जाती है। इसका एक २ शब्द हमारी सत्ता का व्यंजक है, हमारी संस्कृति का संपुट है, हमारी जन्म-भूमि का स्मारक है, हमारे हृदय का प्रतिबिम्ब है, हमारी बुद्धि का वैभव है। देश की जिस प्रकृति ने हमारे हृदय में रूप-रङ्ग भरा है, उसी ने हमारी भाषा का भी रूप-रङ्ग खड़ा किया है। यहां के वन, पर्वत, नदी, नाले, वृक्ष, लता, पशु, पक्षी इसी हमारी बोली में अपना परिचय देते हैं और अपनी ओर हमें खींचते हैं। इनकी सारी रूप-छटा, सारी भावभंगी हमारी भाषा में और हमारे साहित्य में समाई हुई है। यह वही भाषा है जिस की धारा कभी संस्कृत के रूप में बहती थी, फिर प्राकृत और अपभ्रंश के रूप में **इधर हज़ार वर्ष से इस वर्तमान रूप में जिसे हिंदी कहते हैं**— लगातार बहती चली आ रही है। यह वही भाषा है जिस में उत्तरीय भारत के बीच चन्द और जगनिक ने वीरता की उमंग उठाई; कबीर, सूर और तुलसी ने भक्ति की धारा बहाई; बिहारी, देव, पद्माकर ने शृङ्गार रस की वर्षा की; भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण, मिश्र ने आधुनिक युग का आभास दिया और आज आप व्यापक दृष्टि फैलाकर सम्पूर्ण मानव-जगत् के मेल में लाने वाली भावना भर रहे हैं। हजारों वर्ष से यह दीर्घ परम्परा अखण्ड चली आ रही है। ऐसी भव्य परम्परा का गर्व जिसे न हो, वह भारतीय नहीं।"

हिन्दी ही हमारे देश की ऐतिहासिक परम्परा के विकास से मेल खाती है और इसे व्यक्त करती है। इसका समृद्ध साहित्य, अपार और अक्षय शब्द-भण्डार, पठन-पाठन की सरलता, लोक-प्रियता तथा देशव्यापी प्रचार इसे राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित भी कर चुका है, पर

राष्ट्रीयता के विरोधी राष्ट्रभाषा की सुलझी हुई समस्याओं को भी उलझा रहे हैं। हमारे वर्तमान राष्ट्रीय जागरण के इन ५० वर्षों में, हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के रूप में देश के कोने कोने में मान्यता मिली है। इसे हम हिन्दुस्तानी भी कहने को तैय्यार हैं यदि उसका व्याकरण वही हो जो हिन्दी का है और उस में से वे तत्सम तद्भव और देशज शब्द जो प्रचलित हैं छांट छांट कर निकाले न जायें तथा अप्रचलित अरबी फारसी शब्द न ठूंसे जायें।

[अबोहर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ३०वें अधिवेशन पर हुई राष्ट्र-भाषा परिषद् के स्वागताध्यक्ष पद से पढे भाषण से।]

मजदूर का जीवन

[प्रो० श्री रघुराजसिंह]

(कहानी)

शरद ऋतु थी। कालिज के लान में हम सब बैठे हुए परीक्षा सम्बन्धी चर्चा कर रहे थे। एकाएक एक मित्र ने आकर व्याकुलता पूर्वक कहना शुरू किया—'दद्दा! जल्दी चलो, एक घटना हो गई।' उनके चेहरे से ही घटना की गम्भीरता प्रकट होती थी। अस्तु, बिना कुछ पूछे हम सब उनके साथ हो लिये। रास्ते में जब उन्हें स्वयं स्मरण हुआ तो, घटना का संक्षिप्त वर्णन कर दिया। हम सब ने सुना और सुनकर शीघ्र पहुँचने की उत्कण्ठा से कुछ दौड़ने लगे।

शहर की बढ़ती हुई जन संख्या, व्योपार का दौर दौरा, और अन्य उद्योग धन्धों की वृद्धि को वह प्राचीन नगरी अपने छोटे आँचल में न समा सकी। अस्तु, निकट के गाँव, वहाँ की गरीब और असहाय जनता को रुपये की जगह पर पैसे देकर खाली करा लिये गये। जहाँ मस्त ग्रामीण बालक अपने पशुओं के साथ स्वच्छन्द घूमा करते थे, जहाँ पर प्रभु की मूक सृष्टि अपनी उदर-पूर्ति करने के बाद सन्तोष से जुगाली करके बैठी रहती थी। वह स्थान, वे खेत देखते-देखते इम्प्रवमेंट ट्रस्ट की संरक्षता में चौरस किये जाने लगे। नलों का जाल बिछने लगा। हजारों मनुष्य वहाँ काम करते नजर आने लगे। सुन्दर-सुन्दर बंगलों के नक्शे तैयार किये जाने लगे। जहाँ आने में हैटधारी बाबू पहले अपना अपमान समझते थे, अब वे वहाँ आ आकर अपने भावी भव्य महलों की कल्पना में घण्टों घूमा करते। एक ओर, आज जिनका घर बार सब कुछ छिन गया था वे गरीब ग्रामीण मजूर कातर निगाहों से इन सबको देखते और आह खींचते। न्याय और शक्ति के द्वारा प्राप्त ऐसे ही एक स्थान में कुछ मजदूर एक गहरी नाली

खोद रहे थे। रात को काफी गहावट हो चुकी थी। रेत-प्रधान वह भूमि अपनी खड़े रहने की सहिष्णुता को खो चुकी थी। रुपयों से जेबों को भरने वाले इञ्जिनियर्स वहाँ थे, पर उन्हें काम के बोझ के आगे कुछ देखने का अवकाश ही कहाँ था? ठेकेदारों को भी काम बन्द कर देने की चाह कहाँ थी? और फिर रोज कुंआ खोदकर पीने वाले उन मजदूरों के पास कल के लिये शेष ही क्या था जो वह एक रोज बिना काम किये बैठ सकते।

खुदाई शुरू हुई। अपनी २ माताओं और पत्नियों की सुख और सन्तोष की भरी निगाहों के सामने से आज वे फिर रोज की भांति अपनी जीविका से संघर्ष करने चले। उन्हें क्या ज्ञात था कि उनकी यह आज की विदाई आखिरी विदाई है। त्याग और तपस्या की मूर्ति उन नारी-हृदयों को क्या मालूम था कि उनके हृदय के टुकड़े आज फिर आकर उनसे न मिल सकेंगे। २० फीट गहरी नाली फावड़ों की चोटें अधिक न सह सकी।

एक क्षण में उसने नीचे गिरकर उस दल को अपने में छिपा लिया। १० प्राणियों के इस प्रकार दब जाने पर चारों ओर कोलाहल मच गया। अङ्गुल संकेत से, खड़े हुए दूसरे मजदूरों को उन्हें निकालने का हुक्म हुआ— आठ मजदूरों का दूसरा दल अपने उन साथियों को निकालने आगे बढ़ा। एक-दो कुदाली चलाने के बाद सच्ची संवेदना के फल स्वरूप वह दल भी देखते २ वहीं दफना दिया गया। एक बार फिर हाहाकार मच गया। इस बार किसी को नीचे उतरने का साहस न था। भीड़ काफी जमा हो चुकी थी, पर अलग विरक्त सी खड़ी केवल उपायों द्वारा ही अपने कर्त्तव्य का पालन कर रही थी।

हम लोग भी वहाँ पहुँच चुके थे। मेरे अन्दर कुछ देर तक तुफान चला। स्वार्थ और कर्त्तव्य का सङ्घर्ष चला। अन्त में पास पड़े हुए एक फावड़े को उठा लिया। चारों ओर से न, न की आवाज आई। पर वह व्यर्थ थी। मैं दूसरे ही क्षण नीचे था। एक सेकेंड में आने वाले मृत्यु के क्षणों की कल्पना मस्तिष्क में दौड़ गई। खोदना शुरू किया। मेरे जाते ही मेरे कालिज के कुछ मित्र नीचे उतरे। हम लोगों के जाते ही पुलिस वालों की चिन्ता बढ़ी— गिरती हुई दीवार को तख्ते लगा कर रोकने की कोशिशें होने लगीं। कुछ सिपाही नीचे उतरे।

उस दिन अठारह मृत शरीरों को निकाल २ कर बाहर रखा था। उनके अन्दर से काले काले रक्त की धारायें निकल रहीं थीं। आशा सुप्त हो चुकी थी। एक भी मजदूर में प्राण शेष न थे। ओह! उनकी मातायें, पत्नियां वहीं पछाड़ खा-खा कर उनके ऊपर गिर रही थीं। बालकों का करुण-क्रन्दन हृदय

के टूक-२ किये दे रहा था। पर उन्हें धैर्य कौन बंधाता ? ट्रस्ट की असावधानी पर झुंझलाहट पैदा होती। पर क्या वह उन बिलखते प्राणियों को सन्तोष पहुँचा सकती थी, जिनका कि आज सर्वस्व ट्रस्ट और ठेकेदारों की लापरवाही का शिकार हो चुका था।

कुछ दिनों बाद अखबार में पढ़ा — मृत व्यक्तियों के परिवारों को ५०)५०) देकर ट्रस्ट ने उनपर दया की है ? पढ़कर वेदना की अव्यक्त लहर अंतस में दौड़ गई। भारत और अन्य देशों का चित्र सामने नाचने लगा, विचार उठा कि यदि इस प्रकार किसी धनी व्यक्ति की मृत्यु होती तो क्या उसके प्राणों का मूल्य इतना ही होता। पर आज यहाँ इन दीन असहाय निराश्रितों की मृत्यु भी कितनी सस्ती है। भारत तेरे लालों का जीवन मिट्टी के मोल का भी नहीं।

उस बात को आज वर्षों हो गये. वहाँ का सारा दृश्य ही अब बदला हुआ है। रम्य बंगलों की कतारें उपेक्षा पूर्वक आज उन झोंपड़ियों पर अपनी निगाहें फेंक रही हैं। धन और अभिमान से चूर कितने भद्र व्यक्ति आज वहाँ विलास-क्रीड़ा करते हैं पर उन्हें क्या पता कि उनके इन विलास-भवनों के नीचे कितनी करुण कथाएं, कितने आर्तनाद और कितनों के आंसु छिपे हैं।

क्या हम सोचते हैं ?

[रामनारायण उपाध्याय]

जब हमारे यहां बिजली की जगमगाहट होती है, तब क्या हम सोचते हैं कि कइयों की कोठरियों में भयंकर अन्धकार छाया हुआ होता है ?

जब हम सुबह-सुबह ही उठकर नाश्ता करते होते हैं, तब क्या हम सोचते हैं कि इस नाश्ते के कुछ कण-जितना भोजन पाने की टोह में अनेक व्यक्ति दूर कहीं चल दिये होते हैं।

जब हम लम्बी रातों में ऐशोआराम में मशगूल रहते हैं, तब क्या हम सोचते हैं कि पास ही कहीं कुछ लोग, भीगी आँखों, सन्ध्या को सवेरा करते हैं ?

जब हम आज आवश्यकता न होने पर भी, इकट्ठे हुए सैकड़ों रुपयों को धरती में गाड़े रहते हैं, तब क्या हम सोचते हैं कि कुछ लोग, उसका सौवां-हजारवां हिस्सा मात्र जीवन भर में पाने के लिए लोगों के आगे हाथ पसारे रहते हैं ?

जब हमारे यहाँ बड़े-बड़े भोजों के विराट आयोजन होते हैं, तब क्या हम सोचते हैं कि उसकी जूठन भर पाने के लिए न जाने कितनी आँखें, लालायित-सी हो, न जाने कबसे बाट जोहती रहती हैं ?

जब हमारे यहां चाय में शक्कर या मिठाई में घी, तनिक-सा भी कम हो जाने पर असन्तोष हो उठता है, तब क्या हम सोचते हैं कि अनेक व्यक्ति सूखी रोटी या दलिया पा लेने पर ही सन्तोष की साँस ले उठते हैं ?

('जीवन साहित्य')

धन्य हैं गरीब लोग

लेखक— धननारायण कपूर

धन्य हैं वे लोग जो गरीब हैं, क्योंकि बहुत से रोगों और पापों से गरीबी ने उनकी रक्षा करली है। तुम गरीब हो तो क्यों डरते हो, दुखी क्यों होते हो ? दुनियां में गरीबों की ही तादाद तो सबसे ज्यादा है, इसलिए इस प्रजातंत्र के युग में अब जो राज्य होगा उसमें बहुमत गरीबों का ही होगा, यानी वह गरीबों का ही राज्य होगा। तुम्हारे घबराने व बेचैन रहने का कारण सिर्फ इतना ही है कि तुम अपनी शक्ति को भूले हुए हो, अपनी शक्ति को पहिचानो।

हजारों ऐसे गरीब हो चुके हैं, जिन्होंने अपने समय में संसार भर में हलचल मचादी थी। दुनिया में अब तक न जाने कितने सेठ पैदा होकर मर गए। क्या कोई उनका नाम जानता है ? पर गरीबी में जीवन बिताने वाले पाणिनि व तुलसीदास का नाम संसार में अमर है। संसार के अधिकांश महापुरुष गरीबी में ही पले और चमके थे। महात्मा बुद्ध और महात्मा गाँधी यद्यपि राज घराने व अमीरी में पैदा हुए, लेकिन उन्होंने गरीबी के लिए राज और दौलत को ठुकरा दिया। अतः अमीरी रहते हुए नहीं बल्कि गरीबी अपनाने के बाद ही उनकी प्रतिभा चमकी, वे उच्च और महान बन सके। इससे स्पष्ट है कि राज और दौलत से भी बड़ी है यह गरीबी। अरे इसे पाकर तुम पछताते हो कहते हो हम क्या कर सकते हैं, हम तो गरीब हैं। बस, तुमने अपनी शक्ति को अभी पहचाना नहीं, तभी ऐसे हीनता के विचार प्रकट करते हो। लानत भेजो उस अमीरी पर जो न जाने कितने लोगों का गला काटकर और रोटी छीनकर पनपी फिर भी अपने उपासकों को सुखी न बना सकी। सुखी बनाना तो दूर रहा उसने उन्हें और ज्यादा दुख, पाप और चिंता के गड्ढे में धकेल दिया है। दौलत ही तो अमीरों के दुराचार, दुर्व्यसन और रोगों का कारण है। क्या तुम इस तरह के अमीर बनना पसन्द करोगे ? नहीं, नहीं कभी नहीं। पाप की मूल इस अमीरी को अपने पास फटकने तक न दो। अगर संयोग से दौलत आभी जाय, तो दीन दुखियों की सेवा में लगादो ऐसा करने से न केवल तुम दौलत के साथ आने वाली मुसीबतों से ही बच जाओगे बल्कि पुण्य और यश भी प्राप्त करोगे। इसीलिए तो हमारे पूर्वज कह गए हैं !

पानी बाढे नाव में, घर में बाढे दाम। दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम॥

परन्तु मेरा मतलब यह नहीं है, कि तुम हमेशा खाने और कपड़े के मोहताज बने रहो। मेहनत करना छोड़ हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाओ और कहो कि हमें धन कमाने से क्या मतलब। तुम अपने जीवन व उन्नति के साधनों से इतने लापरवाह हो जावो दूसरे तुम्हारा हक छीनते रहें और तुम अपनी उन्नति की कोशिश ही न करो। नहीं, यह तो आलसीपन है, निकम्मापन है। सरासर पाप है। आलसी किसी चीज के पाने का हकदार नहीं। जो अपनी उन्नति के लिए यत्न न करेगा, हमेशा गिरा रहेगा। दूसरे का आश्रित, गुलाम और समाज में तुच्छ ही समझा जाता रहेगा। अतः जितनी हो सके मेहनत करो, लेकिन उसका फल किसी दूसरे को न लेने दो। अगर तुम्हारे पास कोई चीज जरूरत से ज्यादा आजाय तो उसे व्यर्थ खर्च न करो ऐश आराम में न उड़ाओ न उसे जोड़कर पापकी मूल अमीरी को बुलवा भेजो। उस रुपये को दीन दुखियों की सेवा में लगादो। जरूरत से ज्यादा रुपया कमाना पाप नहीं है, पाप है उसे सिर्फ अपने ही स्वार्थ में लगाना। सबसे अच्छा गरीब वह है जो ईमानदारी से ज्यादा से ज्यादा कमाता है और ज्यादा से ज्यादा दान करता है। ऐ अमीरो अगर तुम चाहो तो तुम भी बड़ी आसानी से सब से अच्छे गरीब बन सकते हो।

अमेरिका का स्वातन्त्र्य-युद्ध और वहां की राज्य व्यवस्था

[गिरिराज बी. ए. गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद]

[गतांक से आगे]

अमेरिका का पता चलाना—कोलम्बस के अमेरिका का पता लगाने से पहले के इतिहास पर गतांक में सरसरी नजर डाली जा चुकी है अब हम यह देखेंगे कि किस तरह से इस भू-खण्ड का पता चला, कौन-कौन-सी जातियों ने यहाँ अपनी बस्तियाँ बनाईं और किस तरह अँगरेज उन सब पर बाजी ले गये। यूरोपवासियों को बिलकुल ख्याल तक भी न था कि दूर पश्चिम में कोई मुल्क है। अगर उन्हें एशिया का जल-मार्ग मालूम करने की जरूरत न होती तो शायद लम्बे समय तक अमेरिका का पता ही न चलता। यूरोप का एशिया के साथ व्यापार तो बहुत काल से जारी था, किन्तु उस समय एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप में बहुत ही कम आदमी आते-जाते थे। मार्को पोलो (Marco polo) और कुछ साहसी प्रवासियों और पादरियों के वृतान्तों से यूरोपवासियों को वहाँ का कुछ पता था। उनका ख्याल था कि एशिया धन-दौलत का घर है। अतः यूरोप के व्यापारी एशिया तक व्यापार को बढा कर वहाँ की धन-दौलत से मालामाल होना चाहते थे। मगर उस समय व्यापार के जो तीन मार्ग थे वे तीनों खुश्की के थे और बहुत लम्बे थे। अतः माल के लाने-ले जाने में काफी देर लगती थी। दूसरे, कई देशों में से माल के गुजरने के कारण चुंगी खूब देनी पड़ती थी और रास्ते में डाकुओं का भी भय रहता था। इस लिए सोचा जाने लगा कि अगर जलमार्ग मालूम हो जाय तो इन सब आफतों से पीछा छुटे। अतः १३०० शताब्दि के बाद जल-मार्गों के नकशे खूब तैयार होने लगे थे और १४०० में तो कुतुबनुमा के आविष्कार के बाद समुद्र की मुसाफरी भी बहुत होने लगी थी।

पुर्तगाल (Portugal) के राजकुमार हेनरी को जल मार्ग मालूम करने का बहुत शौक था, और नये-नये देशों की खोज करके वहां ईसाई धर्म को फैलाने की उसकी बहुत प्रबल इच्छा थी। उसने नक्शे बनाने वालों और मल्लाहों के लिए एक स्कूल जारी किया। इस प्रकार उसके पास दूर-दूर से इस कार्य में रुचि रखने वाले आदमी जमा होने लगे। उन्हीं में से एक कोलम्बस भी था। उस समय की विचारधारा के अनुसार वह मानता था कि पृथ्वी गोल है। अतः वह पश्चिम दिशा की ओर जाकर एशिया का जल मार्ग जरूर मालूम कर लेगा। इस कार्य के लिये वह कई राजाओं के पास मदद के लिये गया, किन्तु किसी ने भी उसकी मदद न की। आखिर स्पेन के राजा ने उसकी सहायता की। वह ३ अगस्त १४९२ को तीन छोटे जहाजों और सौ मल्लाहों के साथ पश्चिम की ओर रवाना हुआ, १२ अक्तूबर को भामा (Bahamas) टापुओं में से एक में पहुँचा। आस पास के टापुओं पर, जो कि आज कल वैस्ट इंडीज (WestIndies) के नाम से मशहूर हैं, कुछ समय में घूम-फिर कर वह यूरोप वापस आया। वह तो यही समझा कि मैं पूर्व में पहुँच गया हूँ और यह टापु एशिया के ही हैं। इस तरह, उसने एशिया के जल मार्ग की खोज में अमेरिका का पता चलाया। मरते दम तक उसे तो यही विश्वास रहा कि यह एशिया के ही टापु हैं। इसी खोज में वह चार बार गया। तीसरी बार वह दक्षिण अमेरिका के उत्तरी किनारे पर पहुँचा और चौथी बार

मध्य अमेरिका के किनारे पर; किन्तु उसकी तकदीर में एशिया पहुँचना न था। एशिया तथा इसके जल मार्ग की खोज का सौभाग्य तो वास्को-डि-गामा (Vasco de-Gama) को प्राप्त हुआ।

स्पेन की बस्तियाँ—१५ वीं और १६ वीं शताब्दियों में पुर्तगाल और स्पेन ही दो देश शक्तिशाली थे। इन ही की समुद्री शक्ति अधिक थी। इङ्गलैण्ड को तो उस समय कोई पूछ भी न करता था और किसी को स्वप्न में ख्याल भी न था कि यह देश भविष्य में सबको पराजय कर सकेगा और इसी का सिक्का सारे संसार पर बैठेगा। पोप की सत्ता उस समय खूब बढी हुई थी। सब राजा उसका लोहा मानते थे। यह दोनों देश भी रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के अनुयायी थे। दोनों आपस में लड़कर न मरें, इसलिये पोप ने एक लाईन खेंच दी थी और कह दिया था कि जो देश लाईन के पश्चिम में हों वे स्पेन के और जो पूर्व में हों वे पुतुगाल के। इसी न्याय से उत्तरी अमेरिका स्पेन के पास गया और हिन्दुस्तान पुतुगाल के। स्पेन के बादशाह ही की सहायता से कोलम्बस ने अमेरिका का पता लगाया था, इसलिये पहले पहल स्पेन की ही वहाँ बस्तियाँ बनीं। मैक्सीको (Mexico) और फ्लोरिडा (Florida) पर स्पेन ने अधिकार कर लिया और कैनेडा (Canada) तक सारे समुद्र-तट पर अपना अधिकार जमा लिया। इन बस्तियों के बसाये जाने का इतिहास यहाँ देना सम्भव नहीं। स्पेन की मान्यता थी कि नई बस्तियाँ देश के ही लाभ के लिये हैं अतः इनसे जितना फायदा उठाया जावे कम है। जिन चीजों की स्पेन देश को जरूरत थी उनके पैदा करने की सुविधा दी गई और जो वहां मौजूद थी उन्हें पैदा करने पर रोक लगादी गई। इन बस्तियों से सोना, चाँदी, नील, कोको, सूखे कीड़े जो रङ्ग बनाने में काम आते थे और दूसरी इसी प्रकार की चीजें स्पेन भेजी जाती थीं, और इनके बदले में स्पेन से ऐशो-आराम की चीजें आती थीं। यह सब व्यापार एक कमेटी की देख-रेख में होता था। अतः बहुत ही कम आदमी स्पेन से बस्तियों में गये थे। कमेटी का अङ्कुश होने पर भी बस्तियों के स्पेन निवासी बहुत से कानून, जो उनके प्रतिकूल थे, तोड़ते रहते थे। बादशाह ने अपने मित्रों को बहुत सी दैनिक-व्यवहार की चीजों; जैसे नमक, तम्बाकू, पारा, बारूद के व्यापार के सर्वाधिकार दे रखे थे। यह सब खराबियाँ होते हुए भी उपनिवेश खुशहाल थे। वहाँ बड़े-बड़े गिरजाघर, स्कूल और विश्व-विद्यालय बन गये थे और अच्छे-अच्छे साहित्यकार और कलाकार भी पैदा हो गये थे। शुरू-शुरू में यहाँ के प्राचीन निवासियों के साथ स्पेन वालों के कुछ झगड़े हुए, किन्तु १६०० तक लगभग २०००० स्पेन निवासियों के आधीन ५०००००० देसी हो गये और आपस में नौकर और मालिक का सम्बन्ध हो गया।

स्पेन की शक्ति का ह्रास—पोप की आज्ञा के विरुद्ध यूरोप की दूसरी जातियाँ अमेरिका में किस तरह से पहुँचीं, इसको समझने के लिये यूरोप की १६वीं शताब्दी के इतिहास पर नजर डालनी जरूरी है। १६वीं शताब्दी में पश्चिम में स्पेन की और पूर्व में पुर्तगाल की खूब तूती बोली और इन दोनों देशों ने खूब रुपया कमाया। उस समय किसी भी देश में इतनी हिम्मत न थी कि पोप की आज्ञा का उलंघन करे, इसलिये जो जल-मार्ग इन दोनों देशों के कब्जे में थे, कोई दूसरा देश इनकी आज्ञा बिना उनका उपयोग नहीं कर सकता था। अतः अन्य देशों के द्वारा हिन्दुस्तान का रास्ता उत्तर से पश्चिम की ओर जाकर मालूम करने की बहुत कोशिशें की गईं, किन्तु सफलता न मिली। अमेरिका में अपनी बस्तियाँ बनाने के लिये कुछ साहसिक समुद्री डाकुओं ने खूब प्रयत्न किये, किन्तु कुछ हाथ न आया। हाँ, स्पेन के इक्के-दुक्के जहाजों को ये लोग घेर कर लूट जरूर लेते थे। हाकिंस (Hawkins), ड्रेक (Drake) और वाल्टर रेले (Walter Releigh), जिन्होंने इङ्गलैंड की जल-सेना को जन्म दिया और जिन्होंने स्पेन के हाथों से गुलामों के व्यापार को छीनने और अमेरिका में बस्तियाँ बसाने की खूब जी तोड़ कोशिशें कीं, उस समय समुद्री-

लुटेरे ही कहलाते थे। अन्य राज्यों में उस समय इतनी ताकत न थी कि वे स्पेन से, पोप की आज्ञा के विरुद्ध टक्कर ले सकते।

एक ओर पोप की सत्ता खूब बढ़ी हुई थी, दूसरी ओर उसके नाश के बीज बोये जा रहे थे। जरमनी में मार्टिन ल्युथर ने अंजिल का खूब अच्छी तरह से अध्ययन करके पोप और उसके साथियों की पोल खोलनी शुरू करदी और १५१७ में जब पोप के प्रतिनिधि जरमनी में मुक्ति-पत्र बेचने आये तो उसने खुल्लमखुल्ला कहना शुरू कर दिया कि अंजिल में कहीं भी नहीं लिखा है कि मुक्तिपत्रों के खरीदने से आदमी को मुक्ति मिल जाती है। पोप और उसके साथी ऐशो-आराम का जीवन व्यतीत करने के लिये यह सब ढोंग रचते हैं। उसने पादरियों की ऐसी सब मनघड़ंत बातों का विरोध करना शुरू कर दिया और अञ्जील का लेटन (Latin) से जरमन में अनुवाद भी कर डाला। इस तरह से ईसाई धर्म में प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदाय बन गया।

आर्मडा की हार—वैसे तो सब देशों में ल्युथर (Luther) के अनुयायी बन गये थे और हालैंड, जरमनी और फ्रांस में दोनों सम्प्रदायों में खूब जोर का वाद-विवाद भी होता रहता था, किन्तु सिवाय इङ्गलैण्ड के कहीं भी बादशाहों ने पोप का सामना नहीं किया। हेनरी आठवें ने अपनी शादी के मामले में पोप से कुछ सहायता न मिलती देखी तो उसने पार्लियामेंट की मदद से देश का पोप से सम्बन्ध तोड़ दिया और स्वयम् ही धर्म के क्षेत्र में भी सर्वसत्ताधीश बन गया। उसने प्रोटेस्टेण्ट और रोमन कैथोलिक सम्प्रदायों के बीच का एंग्लिकन (Anglican) नाम का एक दूसरा नया सम्प्रदाय स्थापित किया। इस प्रकार अन्य देशों की अपेक्षा इङ्गलैंड में प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदाय के लोग ज्यादा हो गये। पोप ने हेनरी की शादी गैर-कानूनी घोषित करदी और इङ्गलैण्ड को नीचा दिखाने, और अपनी सत्ता कायम रखने के लिये उसने स्पेन और फ्रांस के बादशाहों को इङ्गलैण्ड पर चढाई करने के लिये कहा। आखिर १५८८ में स्पेन ने आर्मडा (Armada) नाम का एक बहुत बड़ा जहाजी बेड़ा इङ्गलैण्ड को जीतने के लिये रवाना किया। कुछ अँग्रेज़ी जल-सेना की बहादुरी से, किन्तु अधिकतर दैवप्रकोप, यानी एक बहुत जोर के तूफान की सहायता से यह भारी बेड़ा तीतर-बीतर हो गया और बुरी तरह हार खाकर कुछ जहाज टूटी-फूटी अवस्था में स्पेन पहुँचे। इस हार से स्पेन की जल-शक्ति को भारी धक्का लगा और उसकी अजय जल-सेना का भय जाता रहा। हालैंड भी उसकी अधीनता से निकल गया। इंगलैंड की जल-शक्ति बढने लगी, किन्तु स्पेन की ताकत को तो डच लोगों ने ही खाक में मिलाया।

फ्रांसीसियों की बस्तियाँ—जब स्पेन का भय जाता रहा तो फ्रांसीसियों (Franch) ने भी अमेरिका में अपनी बस्तियाँ कायम करने की सोची। अब देश की स्थिति भी इसके लिये अनुकूल थी। १६वीं शताब्दी में तो वहाँ अन्तर विग्रह और धार्मिक झगड़े ही होते रहे, किन्तु १७वीं शताब्दी के आरम्भ से ही वहां की केन्द्रीय सरकार शक्तिशाली बन गई और राज्य को विस्तार देने का ख्याल करने लगी। व्यापारी कम्पनियां व्यापार को बढाने और नये-नये भागों की खोज करने के लिये स्थापित करदी गई। स्पेन वालों को अमेरिका से खूब धन-दौलत खेंच कर लाते देख कर, इन कम्पनियों ने भी वहां जाकर अपने भाग्य की परीक्षा करने का विचार किया। अमेरिका की पोस्तीनें मशहूर हो चुकी थीं और उनकी खूब मांग थी। फ्रांसीसियों ने कैनेडा (Canada), नोवास्कोशिया (Novascotia), सुपीरियर (Superior), मीशीगन (Michigan), ह्यरोन (Huren) आयर (Eire) और ओनटारियो (Ontario) सरोवरों के आसपास के इलाके, और लूसीयाना (Louisana) न्यूओर्लियंस Neworleans तक अपने कब्जे में कर लिये और वहां के मूल निवासियों की मदद से पोस्तीनों का व्यापार करना शुरू किया और खूब धन कमाया, तथा सब जगह

अपने किले बना लिये। किन्तु न्युबर्न्सविक New Bornswick और नोवास्कोशिया को छोड़ कर अन्य उपनिवेशों में अँग्रेजो के मुकाबले में फ्रांसिसी बहुत ही कम तादाद में वहां गये। १७६३ में उनकी कुल आबादी ४०००० थी। कई कई-स्थानों पर तो वे इक्के-दुक्के ही रहते थे। बहुत से प्रलोभन देने पर भी लोगों ने वहां जाना पसन्द नहीं किया। ह्यूजनाटो (Huguenots), (फ्रेंच प्रोटेस्टेएट) को जाने की इजाजत नहीं दी गई। वे तो शायद वहां चले जाते क्योंकि उनको फ्रांस में खूब सताया जाता था। खेती और दूसरे धन्धों को छोड़कर फ्रांसिसी रुपये के लालच में पोस्तीनों के व्यापार में ही रहे और बहुत ही कम लोगों ने काश्त करनी शुरू की।

हालैंड की बस्तियाँ—यद्यपि डच लोगों ने ही स्पेन की नाविक शक्ति को नष्ट किया था, किन्तु इन्होंने अपना व्यापार पूर्व की ओर बढाया और फिर पुर्तगेजों को पूर्व के टापुओं से निकालकर उन पर अपना कब्जा कर लिया, जो आज तक डच इस्टइंडिज (Dutch East Indies) नाम से उनके पास हैं। अमेरिका के जल मार्गों पर तो इन्होंने चौकी पहरा रखकर स्पेन के जहाजों को लूटने का ही काम जारी रखा। पूर्व के छोटे रास्ते की तलाश में हडसन (Hudsen) नाम के नाविक ने डेलावेयर (Dela ware) की खाड़ी और हडसन नदी का पता लगाया। १६२३ तक उनकी बस्तियां डेलावेयर से लेकर कौड के रास (Cape cod) तक फैल गईं।और न्युअम्स्टर्डम (New Amsterdam) जो अँग्रेजो के पास आने के बाद में न्युयार्क (Newyork) बना, खूब उन्नति करने लगा। डच लोगों ने बस्तियों में रहना पसन्द नहीं किया। वे बस्तियों के पास से व्यापार में ही लगे रहे। स्पेन की तरह से डच लोग यही समझते थे कि बस्तियाँ तो देश के लाभ के लिए ही हैं। बस्तियों में ऊन और रुई के कपड़े बनाने की मना ही कर दी गई। खेती-बाड़ी का काम करने के लिए वहाँ हब्शियों (Negraoes) को भेजना स्वीकार कर लिया। इनकी बस्तियों में जैसे जैसे समय बीतता गया अँग्रेजों की आबादी बढती गई। १६३२ में स्वीडन वालों (Swedes) ने अपनी बस्तियाँ डेलावेयर (Delaware) की खाड़ी के पास बनाई। किन्तु १६५५ में डच लोगों ने उनको जीत लिया। जब चार्ल्स दूसरा इङ्गलैण्ड का बादशाह हुआ तो वह भाग जहाँ डच लोगों की बस्तियां थी, उसने अपने भाई को १६६४ में दे दिया। एक जहाजी बेड़ा वहाँ भेजा गया, डच लोगों ने किसी तरह का मुकाबला किए बिना ही अँग्रेजों की सत्ता को स्वीकार कर लिया। तब ही चार्ल्स के भाई के नाम पर न्युअम्स्टर्डम (New Amsterdam) का नाम न्युयार्क (New york) हुआ।

अँग्रेजों की बस्तियाँ—स्पेन की शक्ति घट जाने पर फ्रांस अमेरिका में खूब पैर फैलाने लगा। इङ्गलैंड यह बरदाश्त नहीं कर सका। हाक्न्स, ड्रेक और रेले ने कई बार अमेरिका में अपने पाँव जमाने की कोशिशें कीं, किन्तु कुछ न बन सका। १७ वीं शताब्दी के आरम्भ में ही इङ्गलैण्ड ने भी अपना ध्यान उधर दौड़ाया और ५०, ६० साल में ही पूर्वी किनारे पर अपनी बस्तियाँ बना लीं। इनके नाम यह हैं—मेसेच्यूसेट्स (Masschusettes) कनेक्टिकट (Connecticut) न्यूहेम्पशायर (New-Hampshire) और रोडआइलैन्ड (Rhode-Island) यह सब न्यूइङ्गलैण्ड (New England) के नाम से मशहूर है। न्यूयार्क, (New york) न्यूजर्सी (New gersey) पेनसिलवेनिया (Pennsylvania), मेरीलैण्ड (Mary land) डेलावेयर (Delaware); वर्जिनिया (Virginia); उत्तरी और दक्षिणी कैरोलीना (North & south-Carolina) और जार्जिया (Georgia) यह बस्तियाँ किस तरह बनीं इनके बसाने में क्या-क्या मुश्किलें पेश आईं, और किस तरह से उनका सामना किया गया, यह सब बातें यहाँ बतलाना इस लेखमाला की मर्यादा का उलंघन करना होगा। इन १३ रियासतों का इतिहास बहुत ही संक्षेप में बताने के लिए भी कम से कम १३ लेखों की

तो जरूरत है ही। जो इसमें दिलचस्पी रखते हों वे A History of Colonial America by O. P. chit wood पढ़ें। यहां तो इतना ही बता देना काफी है कि आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक कारणों से यह उपनिवेश स्थापित हुये और यह तीनों कारण भी हर एक उपनिवेश के स्थापित होने में इतने ओत प्रोत हुये थे कि किसी उपनिवेश के स्थापित होने के लिए कोई सा भी एक कारण बताना असम्भव है। इतना ही कहा जा सकता है कि उत्तर के उपनिवेश, जो न्यूइङ्गलैण्ड के नाम से प्रसिद्ध है, धार्मिक कारणों से स्थापित हुए और दक्षिण के व्यापार वृद्धि के ख्याल से।

स्पेन वालों की तरह अँग्रेज भी उपनिवेशों से माला-माल होना चाहते थे और ख्याल करते थे कि अमेरिका में सोना-चांदी भरा पड़ा है। किन्तु जब वे यहां आकर आबाद हुये तो यह भ्रम भ्रम ही सिद्ध हुआ। फिर भी उन्होंने बस्तियों को, देश के लिये कच्चा माल भेजने, देश में तैयार किया हुआ माल इनमें बेचने, बेकार आदमियों को रोजी दिलाने, और आवारागर्द व हट्टे-कट्टे फकीरों से देश को छुटकारा दिलाने के लिये देश के लिये उपयोगी समझा। औद्योगिक क्रांति से पहले भी, जमींदारी पद्धति के नष्ट हो जाने; मठों को तोड़ डालने, और बहुत सी काश्त की जमीनों को भेड़ों के लिये चरागाहें बना देने से बहुत से आदमी बेकार हो गये थे। ऐसे आदमियों को उपनिवेशों में रोजगार मिला। धार्मिक विचारों के कारण जब सख्तियां की जाने लगीं तो कुछ धर्म भीरू आदमी देश छोड़ कर हालैंड चले गये, किन्तु वहां के रीति-रिवाज और भाषा उन्हें पसन्द नहीं आई। इंगलैंड वे वापिस आ नहीं सकते थे, इसलिये उन्होंने अमेरिका जाना पसन्द किया। इसी तरह जब रोमन कैथोलिकों पर भी सख्तियां होने लगीं तो उन्होंने भी उपनिवेशों में ही जाना ठीक समझा। जब चार्ल्स दूसरा गद्दी पर आया तो अपने सहायकों की सहायता करने का सबसे आसान तरीका उसने अमेरिका में ही उन्हें जमीनें देने का समझा। कई बस्तियां इस तरह से भी बढ गईं।

राज्यव्यवस्था—राज्य ने बस्तियां बनाने के लिये धन से किसी की भी मदद नहीं की। बादशाह सिर्फ कम्पनियों को अधिकार-पत्र दे देता था और बता देता था कि कहां से कहां तक उन्हें जमीन दी गई है। राज्य-व्यवस्था की जिम्मेवारी बहुत हद तक वहां जाने वालों को ही दे दी जाती थी। किन्तु आहिस्ता-आहिस्ता सब बस्तियां शाही बस्तियां बन गईं, और बहुत मामूली फेर-फार के अतिरिक्त सबका शासन विधान एक ही प्रकार का हो गया। उपनिवेश की राज्य-व्यवस्था के लिये दो सभायें थीं। एक तो प्रतिनिधि सभा जिसको लोअर हाउस (Lower House) कहते थे। इसमें प्रजा के प्रतिनिधि होते थे। इस सभा को कानून बनाने और कर लगाने का अधिकार था; किन्तु बादशाह की मञ्जूरी लेनी पड़ती थी। दूसरी सभा गवर्नर और सभ्यों की थी। इन सभ्यों को बादशाह नियुक्त करता था। यही सभा प्रबन्धकारिणी सभा भी थी, और हाईकोर्ट (High Court) भी। उपनिवेशों का आपस में कुछ सम्बन्ध न था। हरएक स्वतन्त्र था और सीधा इङ्गलैंड के आधीन था।

हबशियों द्वारा खेती कराना —सब बस्तियां कृषि प्रधान थीं और कच्चा माल पैदा करती थीं। करीब-करीब सब की एक सी पैदावार थी। जमीन बहुत उपजाऊ थी। मेरीलैंड और वर्जिनिया में तम्बाकू खूब पैदा होता था और अधिकांश बाहर भेजा जाता था। चावल और नील उत्तरी और दक्षिणी कैरोलीना (Carolina) में होते थे और खूब ही बाहर भेजे जाते थे। इन चीजों की खेती के लिए बड़ी-बड़ी जमीनें थीं। इस लिए खेती के लिए आदमियों की जरूरत सदैव बनी ही रहती थी। शुरू-शुरु में गोरे आदमी आये। ये अमरिका आने के किराये के बदले में खेतियों पर पाँच से सात साल काम करते थे। जमीदार उनका खाना-पीना और कपड़े इत्यादि देता था इसके बाद यह आजाद हो जाते थे। मगर इनसे काम नहीं चला। बाद में अफरीका से हबशियों को पकड़कर लाने लगे और यह हबशी जमीदार की मिलकीयत ही हो गये।

हबशियों को लाने का व्यापार स्वयँ एक बड़ा लाभप्रद व्यापार था। उपनिवेश अपनी जरूरत की लगभग सब चीजें पैदा कर लेते थे और खेती इत्यादि के लिए जो साधन सामग्री चाहती थीं उसे भी वे वहीं तैयार कर लेते थे। इसके अलावा पोस्तीनों का भी व्यापार होता था। इनकी युरोप में खूब माँग थी। जहाजों के लिए लकड़ी यहाँ के जङ्गलों से खूब इङ्गलैण्ड भेजी जाती थी। वैस्टइंडिज (West Indis) में भी तम्बाकू, शकर और शराब बाहर भेजने के लिए तैयार होती थी। लकड़ी के पीपे तैयार करने के वास्ते लकड़ी भी यहीं से जाती थी।

उपनिवेशों का व्यापार और इंगलैंड की नीति —

इङ्गलैंड की नीति यह थी कि उपनिवेश ऐसी चीजें पैदा न करें कि जिससे दोनों में मुकाबला शुरु हो जाय। अर्थात् ऐसी चीजें पैदा करें कि जिनकी इङ्गलैंड को जरूरत हो। इसी ख्याल से चुङ्गी की दरें तैयार की गईं जिसके अनुसार जहाजी लकड़ी, कच्चा लोहा; तम्बाकू, नील, चावल और वहाँ की खास पैदावार इङ्गलैंड भेजना बहुत फायदेमन्द था। यह नीति दक्षिण के उपनिवेशों के लिए तो ठीक थी, किन्तु मध्य और उत्तर के उपनिवेशों को अनुकूल न थी। दक्षिणी यूरोप को उत्तर और मध्य वाले अनाज, माँस, लकड़ी और मछली भेजते थे। और इनके बदले में वहां से शराब और फल लेते थे और इनको इङ्गलैंड में बेचकर उसके बदले में वहाँ का तैयार किया हुआ पका माल खरीदते थे। वैस्टइंडिज (West Indis) को अपना माल भेजकर वहां से शकर, शीरा और फल लेते थे। फलों को इङ्गलैण्ड बेचकर वहां से अपने लिए पक्का माल लेते थे। शीरे से शराब बनाकर उसे अफरीका भेजते और वहाँ से गुलाम लाकर वैस्टइण्डिज (West Indis) वालों को देते थे और उनके बदले में शराब बनाने के लिए शीरा और नकद रुपया लेते थे इसी तरह से व्यापार करके सारे उपनिवेश आनन्द से जीवन व्यतीत करते थे।

मूल निवासी और यूरोप की जातियां —

अब तक यह नहीं बताया गया कि जब यूरोप की जातियाँ अमेरीका गईं तो वहां के वासियों का उनके साथ कैसा वर्ताव था, किस तरह से उन्होंने मूल निवासियों को अपने आधीन किया हर एक उपनिवेश बसाने के समय उनको कैसे २ अनुभव हुए और किस तरह से थोड़े से आदमी बिलकुल अपरिचित आदमियों में रह सके। इन सब बातों का यहां वर्णन करना न तो जरूरी ही है और न स्थान ही है। हां, इतना बता देना आवश्यक है कि सामान्यत: दोनों का एक दूसरे के साथ क्या व्यवहार रहा। आरम्भ में जब यूरोप वाले अमेरीका पहुंचे तो तो उनके साथ वहाँ के आदमियों ने अच्छा वर्ताव किया और आपस में समझौते कर लिए और आराम से रहने लगे। किंतु गोरों ने सुलह-सन्धियों के अर्थ निकालने में खेंचातानी करना शुरू की, और देशी आदमियों से लड़ने लगे। हर एक झगड़े के बाद फिर प्रतिज्ञाएं व सन्धियाँ होतीं, किन्तु गोरखे फिर उन्हें तोड़ते और आपस में झगड़े होते रहते। अमेरीकावासी सैंकड़ों जातियों में बँटे हुए थे। मैक्सीको (Mexico) को छोड़ कर उनकी कुल आबादी १०००००० से ज्यादा न थी, किन्तु उनमें ५९ भाषाएँ बोली जाती थीं। अत: आपसमें इतने फिरके होने और आबादी बहुत बिखरी हुई होने के कारण सदैव यूरोप वासियों की ही जीत होती थी। देशियों की लड़ाई की रीति दूसरी तरह की थी। वे कभी आमने सामने होकर नहीं लड़ते थे। वे तो अचानक छापे मार आदमी की गरदन काटकर ले आते थे। यही उनके लड़ने का ढङ्ग था। यूरोप वाले इनको पश्चिम की ओर धकेलते जाते थे। जब यूरोप की कई जातियां अमेरीका में पहुँच गईं, और एक दूसरे की ताकत को कम करने के लिए लड़ने लगीं, तब उन्होंने मूल निवासियों को अपना मित्र बनाना शुरू किया। इस प्रकार यूरोप वालों की चालों में आकरये आपस में लड़ने लगे और उनकी संख्या बहुत ही कम

हो गई। स्पेन वासियों ने शुरू-शुरू में तो इनसे झगड़े, किए किन्तु जब अपनी स्थिति को मजबूत बना लिया तो उनका नाश करने की बजाय उनके साथ मिल-जुलकर रहने लगे। अब तक मध्य अमेरीका, मैक्सीको और दक्षिण अमेरीका में उनकी नसलें मौजूद हैं। फ्रांसीसियों ने भी इनके साथ मेल-जोल कायम किया और उनसे शादियां भी कीं। कैनेडा में वायाज्यूर्स (Vayageurs) जो बहुत बहादुर और साहसी हैं, फ्रांसीसी और देसियों का ही खून उनकी नसों में बहता है। अँग्रज़ों ने उनसे किसी तरह का सम्बन्ध नहीं रखा और सदा इनको आपस में लड़ाकर इनका नाश ही करते। अतः अँग्रेजी बस्तियों में तो मूल निवासी बिलकुल नेस्तनाबूद ही हो गए। अँग्रेजी बस्तियां सब अलीघनी (Alleghany) पर्वत के पूर्व में हैं। इसलिए पहाड़ों के कारण देशियों को पश्चिम की तरफ जाने को स्थान नहीं रहा। अगर यह जातियां आपस में एक होकर बाहर से आने वालों का सामना करतीं तो अमेरीका का इतिहास आज कुछ और ही होता। १७६३ तक मूल जातियों की कुल ६ जातियां रह गईं थीं और वे लारेंस (Lawrence) और मिसिसीपी (Mississipi) नदियों की नादियों में रहती थीं।

ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना—अमेरिका में स्पेनवासियों, फ्रांसीसियों, डचों और अँग्रेजों ने उपनिवेश बनाये। किन्तु १७६३ तक मैक्सीको और लूसीयाना को छोड़कर बाकी पर अँग्रेजों ने कब्जा कर लिया और उसका मुकाबला करने वाला वहां कोई भी न रहा। १५८८ में स्पेन को हराकर इङ्गलैण्ड ने समुद्र पर अपना प्रभुत्व बड़ी चालबाजी से जमाया स्पेन की शक्ति को बरबाद करने के लिए उसने हालैण्ड को उससे लड़ा दिया और जब हालैंड बहुत शक्तिशाली होता दिखाई दिया, तो उसके मुकाबले में फ्रांस को खड़ा कर दिया। किन्तु जब फ्रांस की भी ताकत बढ़ने लगी तो इसे दबाने के लिए प्रश्या Prussia जरमनी की पीठ ठोंकी और इसे ढीला कर दिया। किन्तु जब जरमनी ने अपने उपनिवेश स्थापित करने की इच्छा प्रकट की तो फ्रांस की बगल में बाहें डालकर उसका मलियामेट करना चाहा। १९१४ की लड़ाई में तो इस उद्देश्य में कुछ कामयाबी नजर आई किन्तु बहुत जल्दी ही उसने फिर सिर उठा लिया। आज की जो स्थिति है वह पाठकों को पता ही है। आगे क्या होगा, इस सम्बन्ध में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

अपने उपनिवेशों के साथ व्यापार के नये-नये कानून जिनका जिक्र आगे किया जायगा, बनाकर इङ्गलैंड ने हालैण्ड का जलशक्ति को बहुत कमजोर कर दिया। यूरोप में जितनी भी लड़ाइयां १४८९ से लेकर १८१५ तक हुईं उनके कारण और बाह्य-स्वरूप कुछ भी क्यों न हों, सबका वास्तविक उद्देश्य साम्राज्य स्थापित करने की घुड़दौड़ में फ्रांस को नीचा दिखलाना था। इसमें इङ्गलैंड को जरूर सफलता मिली। फ्रेंच गवरनर फ्रंटिनेक (Frontenac) इतनी तेज़ी से अपने उपनिवेशों का विस्तार कर रहा था कि अँग्रेज़ों को अमरिका में अपने भविष्य के लिए भय होने लगा। जब विलियम तीसरा १६८८ में इङ्गलैंड का राजा हुआ तो कुछ आशा बंधी। फ्रांस के साथ उसने १६८७ में लड़ाई शुरू कर दी। यह लड़ाई अमेरिका में भी शुरू हो गई। यद्यपि अँग्रेज फ्रांसिसीयों की अपेक्षा संख्या में ज्यादा थे और उनके पास धन भी खूब था, किंतु एक तो रियासतों में आपस में संगठन पूरी तौर पर नहीं था, दूसरे इंगलैंड से मदद न पहुंची और तीसरे फ्रांससीयों को मूल निवासियों की मदद खूब मिली। इन सब कारणों से, यद्यपि विलियम की जीत जरूर हुई और फ्रांस को १६९७ में राईसविक (Ryswick) की संधि में नीचा देखना भी पड़ा, किंतु अमेरिका की समस्या हल न हुई और फिर चार बर्ष बाद १७०१ में लड़ाई शुरु हुई। यूरोप में यह लड़ाई स्पेन की राजगद्दी की लड़ाई के नाम से मशहूर है। किन्तु अमेरिका में इसे मलका एन का युद्ध कहते (Queen Annie's war) इस लड़ाई का अन्त यूट्रेक्ट की संधि से हुआ। (Treaty of utrecht) स्पेन

और फ्रांस के मुकाबले में इङ्गलैंड, आस्ट्रिया, (Austria) हालैंड, और सेवाय (Savoy) थे। स्पेन ने अँग्रेजों का जिब्रालटर (Gibraltar) और मिनार्का (Minarca) भूमध्यसागर में दिए। फ्रांस ने अमरिका में न्यूफाउराडलैंड (New Fourndland) नोवास्कोशिया (Novas cotia) और हड़सन खाड़ी के आस पास के इलाके दिये। इसके अलावा, स्पेन के उपनिवेशों को तीस साल तक अफरीका से गुलाम लाकर बेचने का अधिकार इङ्गलैंड को मिल गया। अँग्रेजी शक्ति बढी तो बहुत किंतु इस लड़ाई से भी यह निश्चय नहीं हो सका कि अमेरिका पर अधिकार फ्रांस का है या इंगलैंड का। १७४४ में फिर युद्ध हुआ। यह बादशाह जार्ज की लड़ाई के नाम से मशहूर है। इस लड़ाई में लूइसबर्ग (Louis burg) का किला अँग्रेजों ने जीत लिया। किन्तु एलाशापेल (Aix la Chepelle) की संधि से वापिस कर दिया गया। इस लड़ाई से स्थिति में कुछ फेरफार नहीं हुआ। किंतु इस लड़ाई से कई बातें स्पष्ट हो गई। पहिलो फ्रांसीसियों की बहुत कम आबादी होने के कारण वे अँग्रेजों के सङ्गठित आक्रमण को नहीं रोक सके। यह बात पोर्टरायल (Port Rayal) और लूइसवर्ग (Louis burg) की जीत से साफ जाहिर हो गई थी। दूसरी बात यह कि अगर सब उपनिवेश इकट्ठे नहीं होंगे तो फ्रांस का भय बना ही रहेगा। १७५४ में इँगलैंड की सरकार ने सात रियास्तों के गवर्नरों को अलबानी (Albany) में मिलने के लिए कहा और कहा कि इरोकुइस (Irequois) की जो देशी जातियाँ फ्रांसिसीयो की मदद करती हैं उनसे मिलकर समझौता कर लो। अलबानी (Albany) की कांग्रेस समाप्त भी नहीं हुई थी कि फिर लड़ाई शुरू हो गई जो अमेरिका में १७५४ से १७६३ तक चली और यूरोप में १७५६ से १७६३ तक शुरू-शुरू में इँगलैंड को हार होती रही। किन्तु १७५८ में लड़ाई ने पलटा खाया और अँग्रेजी की जीत होने लगी। १७५९ में तो अँग्रेजों की जीत होने लगी। १७५९ में तो अङ्गरेजों ने खूब हाथ दिखाए। सारा कैनेडा फ्रांस के हाथों से निकल गया आखिर पेरिस की संधि से १७६३ में लड़ाई समाप्त हुई। फ्रांस को कैनाडा (Canada) और मिसिसिपी (Missisipi) नदी के पूर्व का सब इलाका सिवाय न्यूओरलियन्स (New-orleans) के अँग्रेजों को और इस नदी के पश्चिम का इलाका स्पेन को देना पड़ा। स्पेन ने फ्लोरिडा का उपनिवेश अँग्रेजों को दिया। इँगलैंड ने क्युबा स्पेन को और मार्टिनीके और ग्युडालोप के टापू फ्रांस को वापस कर दिये।

१७१३ और १७६३ की संधियों से फ्रांस के उपनिवेश अमेरिका महाद्वीप में, सिवाय तीन-चार छोटे टापुओं के, सब अँग्रेजों के पास आ गए। हालैंड के उपनिवेश १६६४ में ही अँग्रेजों ने ले लिये थे। स्पेन के पास मैक्सीको और मिसिसिपी (Messisipi) के पश्चिम का इलाका था। किन्तु स्पेन की जलशक्ति इतनी कम हो चुकी थी कि इँगलैंड को उसका जरा भी भय न था। इस तरह से १७६३ में अँग्रेजों की ताकत का सामना करने वाला अमेरिका में कोई भी न रहा था। पेरिस का संधि से यद्यपि पाँडिचेरी (Pandichery) अँग्रेजों ने फ्रांस को वापिस कर दिया था, किन्तु इस सप्तवर्षीय युद्ध ने हिन्दुस्तान में भी, अमेरिका की तरह, फ्रेंच साम्राज्य की स्थापना के ख्याल को स्वप्न बना दिया था। इंगलैंड की शक्ति खूब बढ गई और साम्राज्य स्थापना के मनोरथ में सफल हो गया, किन्तु अमेरिका में तो यह चार दिन की चाँदनी ही रही।

राष्ट्रभाषा और पंजाब की स्थिति

[कवि विनोद, वैद्य भूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य (अमृतधारा) लाहौर]

यह ठीक है, पञ्जाब में आर्य्य-भाषा अर्थात् हिंदी का बहुत कम प्रचार है परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, कि पञ्जाबी हिन्दू हिन्दी के प्रेम में किसी से पीछे नहीं हैं। श्रीमान् लाला लाजपतराय की आत्म-लिखित जीवनी के यह शब्द सुनने के योग्य हैं। "प्रारम्भिक जीवन से ही मुझे यह निश्चय हो गया, कि राष्ट्रीय मेल और राजनैतिक एकता के लिए सारे देश में हिन्दी और नागरी का प्रचार आवश्यक है। तब मैंने अपने हानि-लाभ के विचारों को एक ओर रखकर हिन्दी का प्रचार करना आरम्भ कर दिया।" परिस्थिति से विवश होकर हमको आरम्भ में उर्दू पढ़ना पड़ता है, फिर भी मातृभाषा के प्रेम के वश यत्न करके पञ्जाबी लोग हिन्दी सीखते हैं। कई सज्जनों ने पैन्शन लेने के पश्चात् हिन्दी को सीखा।

हिन्दी भाषा और नागरी लिपि संसार भर की भाषाओं में इसलिए सबसे ऊँचा स्थान रखती है, कि यह ईश्वर वाणी वेद के समीपतर है। वेद से संस्कृत भाषा बनी और उससे आगे अन्य भाषाएँ निकलीं, परन्तु किसी भाषा में शब्द इतने शुद्ध सँस्कृत के नहीं है, जितने कि हिन्दी भाषा में हैं। प्राकृत में भी संस्कृत शब्द कुछ बिगड़ गए थे, परन्तु हिंदी में ये अपने शुद्ध रूप में सब के सब वैसे ही रक्खे जाते हैं। कुछ शब्द हिंदी में भी ऐसे प्रयुक्त होते हैं, जो कि या तो दूसरी भाषाओं से लिये गए हैं, या हमारे ही बोल चाल में कुछ बदल गए हैं, परन्तु फिर भी संस्कृत के शब्दों से बहुत मिलते जुलते हैं। कुछ बहुत भिन्नता मालूम नहीं होती है। जैसे कर्ण के लिए कान, अष्ट के लिए आठ, हस्त के लिए हाथ, शिर के लिए सिर, विश्राम के लिए आराम, जिह्वा के लिए जीभ, लक्ष के लिये लख या लाख, जालिका का जाली, करपास का कपास, सूची का सुई अहम् का हम, ग्राम का गाम, घृत का घी, सर्व का सब, दुग्ध का दूध इत्यादि। परन्तु इनके स्थान में शुद्ध संस्कृत शब्द लिखे जावें तो भी हर कोई समझ सकता है। जो अन्य भाषाओं के शब्द भी मिले हैं, उसमें भी मैं तो कोई दोष नहीं समझता। मैं तो यह आवश्यक समझता हूँ, कि संस्कृत शब्द जो लिखे जावें, उनको अशुद्ध लिखकर बिगाड़ना न चाहिए, न ही आसान हिंदी लिखने की धुन से अधिक फारसी अरबी के शब्द बहुत बढाने चाहियें, परन्तु दूसरे प्रचलित शब्द भी बोलने या लिखने में प्रयुक्त हों, तो हानि नहीं है।

संस्कृत भाषा जब सब भाषाओं की माता है, तो हर एक शब्द उसमें ले आना कठिन भी क्या है। थर्मामीटर को यदि धर्ममात्री कहें तो बिलकुल साथ मिल जाता है। महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त शास्त्री जब लाहौर में पढाया करते थे, तो वह कहा करते थे, कि दूसरी भाषा वाले तो अपने सब नामों की यौगिक व्युत्पत्ति नहीं बतला सकते। यह संस्कृत शब्द ही हैं जिनकी व्युत्पत्ति भली प्रकार हो सकती है और थोड़े से परिवर्तन से प्रत्येक शब्द ही संस्कृत का सार्थक शब्द बन जाता है। जैसे पाजामा का संस्कृत पादायामा अधिक सार्थक है। पादयोरायाम इवायामोयस्य, पाद तक ही जिसकी लम्बाई है, ऐसा वस्त्र। वास्कट उर्दू वालों ने वेस्टकोट से बनाया है, उसके अर्थ को वासकटि भली प्रकार प्रकट करता है। कटिपर्य्यन्तम् वसतीति, जो कमर तक रहती है, वह वास्कट है। कहार शब्द की व्युत्पति शायद उर्दू वाले न बता सकें. परन्तु पंडित जी ने कं-जलम् हरतीति, जो कम् (जल) को ले

जाता है, वह कहार है। चाकृ चक् प्रतिघाते इस धातु पर डण् प्रत्यय लगाकर चाकू प्रसिद्ध बन जाता है। उर्दू और फारसी में भी कलम शब्द प्रसिद्ध है, परन्तु यह तो है ही संस्कृत शब्द जो प्राचीन कोषों—जैसे केशव कोष आदि में, आया है। कलते प्रकाशयतिजयति अक्षराणि वा। कागज उन्होंने संस्कृत शब्द कागत से बनाया है, जोकि कल्पद्रुम वाचस्पत्य कोष में भी है। खाविन्द शब्द भी पण्डित जी ने अधिक सार्थक कर दिया, खे शून्ये, रहसि, आविंदतीति खाविन्दः। महामहोपाध्याय को आप किसी भी भाषा का कोई शब्द बतलाकर उसके अर्थ बतला दीजिये, वह उसी समय उसी से मिलता हुआ संस्कृत शब्द तुरन्त बना देते थे। एक बार किसी ने कहा **A.M.** और **P.M.** भी क्या संस्कृत का शब्द है ? झट बोले कि अर्वाङ् मध्याह्नात् और पश्चात् मध्याह्नात्। पार्सल को पार्शल कह देने से संस्कृत हो गया। परेण शलः परेण प्रेषितः परशलः। **V.P P.** वसन प्राप्ति पारशलः। उन्होंने एक कोष लिखा है, जिसका नाम भाषा प्रसिद्ध शब्द मूल संस्कृत कोष है। उसमें सैकड़ों ऐसे उदाहरण आप देख सकते हैं।

भाषा के साथ संस्कृति बंधी होती है और किसी देश की संस्कृति की रक्षा ही उस देश की वास्तविक रक्षा है, इसीलिए एक इङ्गलैण्ड के विद्वान ने कहा था कि शेक्सपियर के सामने मैं राज्य की भी परवाह न करूंगा। भारतीय संस्कृति रक्षा तो ऐसी भाषा से ही होगी, जिसके शब्द संस्कृत से मिलते रहें। उनके साथ २ प्रसिद्ध अन्य भाषाओं के शब्द भी बरते जावें तो कोई हानि मुझ को प्रतीत नहीं होती। नागरी लिपि को रखते हुए हर प्रान्त के ऐसे शब्द जो वहां प्रचलित हो गए हैं, यदि उस प्रान्त के लेखक लिखना चाहते हैं, तो शौक से लिखें, परंतु वह भाषा देश की राष्ट्र-भाषा न बन सकेगी, क्योंकि भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में प्रचलित भाषाओं में संस्कृत के शब्द ही अधिक हैं। यही कारण है, कि मुसलिम बादशाहों के राज्य काल में भी हिन्दी ही भारत की राज्य भाषा रही है। कुतुबुद्दीन तुगलक से लेकर पानीपत की लड़ाई तक पौने चार सौ वर्ष के जो सिक्के मिलते हैं, उन पर देवनागरी लिपि और हिन्दी शब्द बराबर मिलते हैं और श्री शब्द नामों के साथ है। जैसे 'श्री समसदीन'।

मुस्लिम काल में फारसी तथा हिन्दी का समान दर्जा रहा है। उस समय मुसलमान हिन्दी के बड़े २ लेखक हुए। हिन्दी का पहला कोष और पहेलियां मीर खुसरो ने लिखी। अनुसन्धान करने वाले विद्वान् कहते हैं कि रहीम, रसखान, आलम, आदिल, ताज, वाहिद आदि ३६० मुसलमान हिन्दी लेखकों की गवाही मिलती है। हिन्दी भाषा जनता की भाषा थी, इसकी साक्षी यात्रियों के लेखों से भी मिलती है। सन् १६७३ में फ्रायर साहिब ने लिखा था "दरबार की भाषा फारसी है और जनता की भाषा हिन्दोस्तानी है।"

सन् १७२७ में हैमिलटन साहिब ने लिखा था—"मैं हिन्दोस्तानी में बोल रहा था जो मुगलों के विस्तृत राज्य की प्रचलित भाषा है।" सच पूछो तो हिन्दी शब्द ही फारसी का है। इस बात की पुष्टि करते हुए सैयद ईसा अलीखां लिखते हैं 'हिन्दी वह भाषा है, जिस को अन्य भाषाओं की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इसकी उत्पत्ति संस्कृत से है"। १७वीं शताब्दी में शाहजहान के समय में यह विचार हुआ कि हिन्दी को अरबी लिपि में क्यों न लिखा जावे। ऐसा किया गया और उसी का नाम उर्दू रक्खा गया। शनैः शनैः उर्दू से जनता की बोल-चाल के हिन्दी शब्द हटा कर फारसी अरबी शब्दों की भरमार होती गई और अब तो इसलामी पत्रों की भाषा ग्राम ग्राम के किसी मुसलमान को भी सुनावें तो समझ नहीं सकता है। यह ठीक है, कि पञ्जाब, सिन्ध आदि में जहां उर्दू का देर से जोर रहा है, क्लिष्ट हिन्दी वो भी लोग समझ न सकेंगे और इसी वास्ते यह आन्दोलन भी यहां हो रहा है, कि लिपि अलग अलग रख कर भी भाषा ऐसी

कर दी जावे जो कि सर्व साधारण समझ सकें। एक दो प्रांतों के वास्ते शायद इस समय यह उचित ही हो, परन्तु राष्ट्र-भाषा शुद्ध हिन्दी ही हो सकती है, क्योंकि भारत के सभी प्रांतों की भाषाएं संस्कृत के आधार पर खड़ी हैं और इनकी लिपियां सब एक ही प्रकार चलती हैं। उर्दू की उलटी है। १५ करोड़ की यह मातृ भाषा ही है, इसके अलावा १२ करोड़ इसको अब भी समझते हैं। मद्रास प्रांत में भी हिन्दी को अति शीघ्र लोग सीख गए हैं। गुजराती, महाराष्ट्री आदि तो अव्यय—का, की, है, हैं आदि सीख कर झट हिन्दी बोलने लग जाते हैं क्योंकि शब्द वही हैं। भारत के बाहर जहाँ २ भारतीय जाकर बसे हैं वे भी हिन्दी बोलते और समझते हैं। ब्रह्मा, तिब्बत, सियाम, कोरिया, चीन, आदि देशों की संस्कृति भी भारत से बहुत कुछ मिलती है और वे बहुत शीघ्र हिन्दी भाषा को समझने लगते हैं। चीनी जो भारत में आते हैं दिनों में हिन्दी सीख जाते हैं। मुसलमानों में कुछ स्वार्थियों ने इसको धार्मिक प्रश्न बना दिया है। यदि वे अब अरबी लिपि रखना ही चाहते हैं तो भाषा हिन्दी ही रखनी होगी तब ही वह राष्ट्र में समझी जा सकती है और जनता की भाषा बन सकती है। पञ्जाबी में भी हिन्दी के ही शब्द अधिक हैं। सिक्खों के "गुरु ग्रन्थ साहिब" की भाषा तो हर कोई समझ सकता है, असल पञ्जाबी तो यही है। सम्पर्क के कारण दूसरी भाषा के शब्द भिन्न-भिन्न जिलों में सम्मिलित हो गए हैं। गुरु ग्रन्थ साहिब के कुछ शब्द देखिये—

"गुण गोबिन्द गायों नहीं, जन्म अकार्थ कीन।
कहो नानक हर भज मना, जिहि विधि जल को मीन।
बिरध भयों सूझो नहीं, काल पहूंचियो, आन।
कहो नानक नर बावरे, क्यों न भजे भगवान॥
धन दारा सम्पति सगल, जिनि आपनी कर मान॥
इन में कछु संगी नहीं, नानक साची जान।
तन धन संपय सुख दियों, अरु जिह नीके धाम॥
कहो नानक सुन रे मना, सिमरत काहे न राम।

सिक्ख शब्द भी तो वास्तव में शिष्य है।

"जे तुम शिष हमारे आर्ज, देयो सीस धर्म दे कार्ज।

बादशाहों के समय में पहिले फारसी के साथ जनता की भाषा हिन्दी थी। फिर हिन्दी को अरबी लिपि में लिखा गया तो उर्दू कोर्ट भाषा (Court Language) बनी और अंग्रेजी के आने पर भी कोर्ट भाषा यही रही। साधारण पञ्जाबी अब भी इसी वास्ते अपने लड़कों को उर्दू पढाना चाहता है कि उसके लड़के को कोई नौकरी मिल जावेगी परन्तु इतना सुनकर आप प्रसन्न होंगे, कि भारी कठिनाइयों के होते हुए भी हिन्दी का प्रचार दिन २ कुछ आगे जा रहा है। १९३४ में मैट्रिक में हिन्दी ३२७१ विद्यार्थियों ने, फारसी ६८१८ और संस्कृत २७३७ विद्यार्थियों ने ली थी। १९३९ में हिन्दी ४४४०, फारसी ४७२९ और संस्कृत ३४८० विद्यार्थियों ने ली और हिन्दू कन्याएं तो प्रायः सब हिन्दी ही लेती हैं। सरकारी स्कूलों में जहां हिन्दी का प्रबन्ध नहीं वहां सब को इच्छा के विरुद्ध उर्दू लेना पड़ता है सारे पञ्जाब में कोई सरकारी स्कूल नहीं जिस में हिन्दी माध्यम हो और पब्लिक स्कूल अर्थात् डिस्ट्रक्ट बोर्डों, कमेटी के स्कूलों में केवल ८३ हैं, जिन में हिन्दी माध्यम है। यदि अब कोई हिन्दी माध्यम की आवश्यकता भी समझता है तो ऐसा नहीं कर सकता है, क्योंकि जो पहिले था सो रहेगा।

प्रारम्भिक एजूकेशन बिल असैम्बली में पेश हुआ, तो इस बिल पर शिक्षामन्त्री ने कह दिया, कि पञ्जाब में शिक्षा का माध्यम उर्दू ही है और रहेगा। संशोधन प्रस्तुत किया गया, कि जहां १५ से अधिक विद्यार्थियों के माता पिता हिन्दी पढाना चाहें, वहां हिन्दी का भी प्रबन्ध किया जावे परन्तु यूनियनिस्ट सरकार ने इतनी बात भी नहीं मानी। अभी पिछले ही दिनों एक व्यक्ति के विरुद्ध केस चलाया गया, कि वह अपने पुत्र को पढाता क्यों नहीं। उस ने उत्तर में कहा कि मेरा लड़का पढ रहा है, परन्तु प्राईवेट स्कूल में है, क्योंकि सरकार सम्मानित (recognised) स्कूल में हिन्दी नहीं और वह अपने पुत्र को हिन्दी पढाना चाहता है। जज ने फिर भी जुरमाना

किया कि ऐक्ट ऐसा ही बना है। यूनियनिस्ट सरकार के पहिले की यूनिवर्सिटी की एक जांच कमेटी की रिपोर्ट में स्पष्ट लिखा है, कि उर्दू हिन्दी और गुरुमुखी तीनों ही बराबर प्रथम श्रेणी से ८ वीं श्रेणी तक माध्यम रही हैं। वह रिपोर्ट भी अब झूठी ही हो गई। थोड़े दिन पहिले ग्राम स्कूलों में और सरकारी स्कूलों में उर्दू पढते पढते विद्यार्थी नगर में आते, फिर भी जब डी. ए. वी. आदि स्कूलों में आते, तो उन को हिन्दी का प्रेम हो जाता। तब ७ वीं श्रेणी से उनको अधिकार होता था, कि वे प्रथम भाषा उर्दू रखते हुए द्वितीय भाषा हिन्दी में ले लें। उनमें से कई विद्यार्थी तो फिर हिन्दी को ही दूसरे (Subjects) में माध्यम बना लेते थे। परन्तु अब शिक्षा विभाग से एक सरकुलर जारी हुआ है, कि जो ७ वीं श्रेणी में आकर द्वितीय भाषा हिंदी लेते हैं, उनका माध्यम हिंदी नहीं किया जावेगा। माध्यम केवल प्रथम भाषा का ही रहेगा। वास्तव में बात यह है कि, हिंदी को प्रथम भाषा के तौर पर पढ कर आने वाले विद्यार्थी तो नाम मात्र ही हो सकते हैं। इस से अगला कदम और भी भयानक है, जो जरा दिल थाम कर सुनिये। अब पञ्जाब सरकार की ओर से जो शिक्षा का syllabus १९४१ में छापा है उस में एक स्थान पर छापी हुई कुछ पंक्तियों पर नई छापी हुई परचियां जमा दी गई हैं और सातवीं श्रेणी से द्वितीय भाषा लेने की बात को छोड़ ही दिया गया है। इस के कैसे हिंदी घातक परिणाम होंगे, यह समय बतावेगा।

यह बात स्मरण रखनी चाहिये, कि जब तक पहिली श्रेणी से हिंदी न पढाई जावे, तब तक हिंदी का प्रचार नहीं हो सकता है। जो भाषा आरम्भ में पढी लिखी जावे अधिक अभ्यास उसी का होता है! पञ्जाब में शिक्षा विभाग की ओर से और भी कई अद्भुत बातें होती हैं जैसे कि एक आज्ञा निकली थी—डिस्ट्रिक्ट बोर्ड स्कूलों में यदि कोई विद्यार्थी उर्दू छोड़ कर हिंदी लेना चाहे तो उसको डाइरेक्टर (Director) की आज्ञा लेनी चाहिये।

ग्रांट लेने वाली प्राइवेट कन्या शालाओं की मुख्याध्यापिकाओं को कहा जाता है कि वे सरकारी कार्यालय से पत्र व्यवहार उर्दू में करें। उनको सरकुलर सब उर्दू में जाते हैं। पिछले दिनों एक Inspectress ने एक स्कूल में कहा, कि उसकी सुविधाओं के वास्ते उपस्थिति के रजिस्टर उर्दू में लिखे जावें। और देखिये हिन्दी Trained अध्यापिका बनाने के वास्ते सरकार की ओर से प्रबन्ध नहीं है। परन्तु यह प्रबन्ध तो तब हो जब उर्दू, हिन्दी और गुरुमुखी तीनों को समान दर्जा दिया जावे, तीनों माध्यम बनाए जावें।

पंजाब में तो बालकों को छोड़कर अब बड़ों को भी उर्दू ही पढना पड़ रहा है, क्योंकि adult education (वयस्क शिक्षण) के नाम पर जो हिन्दी में 'कायदा' हिन्दी को आसान करने के वास्ते बनाया है वह हिन्दी से प्रेम के स्थान में हिन्दी से घृणा उत्पन्न करेगा और हिंदी पढाने वालों का तो यथोचित प्रबन्ध ही नहीं। स्कूलों के मास्टर तो प्रायः हिंदी जानते ही नहीं। जो कुछ वे जानते हैं उसीकी बड़ों को पढने की प्रेरणा करते हैं और साधारण जन भी यह देखकर कि थोड़ा सा पढना है तो उर्दू ही क्यों न पढ़ें जो अदालत में, सरकारी दफ़्तरों में काम आवे, उर्दू पढने लग जाते हैं। जहां-जहां हिंदी-प्रेमी इस कार्य को अपने हाथ में लेते हैं वहीं हिन्दू हिंदी पढ़ते हैं। प्रत्येक हिंदी प्रेमी विद्वान यदि इस कार्य में जुट जावें तो हिंदी पढने वाले बहुत ही हो जावेंगे। कोई हिंदू दिल से यह न चाहता होगा, कि वह ऐसी भाषा पढ़े जिससे वह अपने धर्म ग्रन्थ भी न बांच सके। सरकार तो कहती है, कि पंजाब की भाषा उर्दू ही है, परन्तु इतनी बाधाएं होने पर भी १९३१ की जन-गणना रिपोर्ट से पता चलता है कि फिर भी पंजाबी हिंदी को अपनाते हैं। ५०३६९४ देशी भाषाओं को जानने वालों में से ३२६५५० उर्दू जानते हैं, २५९०६० हिंदी, शेष १८०५४ गुरुमुखी जानते हैं। हिंदू मुसलिम जन-संख्या का विचार करें तो किसी प्रकार भी इस प्रांत को अहिन्दी प्रांत कहना उचित प्रतीत नहीं होता है। (हिं० सा० सम्मेलन के अबोहर अधिवेशन के स्वागताध्य के भाषण से)

फलों की सेवन-विधि

[डा० सुरेन्द्रप्रसाद]

फल ही मनुष्य जाति का स्वाभाविक एवं नैसर्गिक आहार है, इतना कह देने मात्र से ही फलों का महत्व ज्ञात हो जाता है। असाध्य से असाध्य और अन्तिमावस्था को पहुँचे रोगी भी फलों के नियमित सेवन से स्वस्थ हो जाते हैं और उनमें एक नवीन स्फूर्ति, तेज तथा मस्तिष्क की शान्ति आ विराजती है। कारण यह है कि फलों से रक्त को शुद्ध करने तथा कब्ज को तोड़ देने की अद्भुत शक्ति है। इनके द्वारा शरीर को आवश्यक पोषक-तत्व मिल जाते हैं और वह अपना काम बना लेता है। ताजे फलों में खनिज द्रव्य, शर्करा और शुद्ध जल पर्याप्त मात्रा में रहते हैं, किन्तु किसी खाद्य वस्तु को पकाने से उसमें इनका नष्ट हो जाना अवश्यम्भावी है। पर, फल तो सूर्य की गर्मी से पकते हैं, उन्हें आग पर पकने की आवश्यकता नहीं होती। हम जानते हैं कि फलों में शर्करा, लवण और एसिड आदि शुद्ध तथा वनस्पति जन्यावस्था (Organic state) में विद्यमान रहते हैं और उनका शरीर में एकीकरण भी सफलता से हो जाता है। वैज्ञानिकों ने भी शरीर का विश्लेषण कर इन्हीं द्रव्यों को शरीर की परिपुष्टि एवं परिपोषण के लिए आवश्यक सिद्ध किया है। यही कारण है कि पाश्चात्य देशों में मांस-भक्षण का बहिष्कार कर फलों के प्रति झुकने का आदेश किया जा रहा है और वहाँ भिन्न-भिन्न रोगों की चिकित्सा केवल फलाहार से ही होने लगी है। हमारा भी कर्तव्य है कि शरीर को सुन्दर व सुचारु रूप से अधिक समय तक चलाते रहने के लिए दैनिक आहार में फलों को प्रथम स्थान दें। दुःख है कि हम में से बहुत कम लोग ऐसा करते हैं।

कोई बिरला ही व्यक्ति होगा जो फलों का सेवन आहार की दृष्टि से नियमित रूप से करता हो। निर्धन तो स्वप्न में भी इन्हें आँखों नहीं देखते; और सुसम्पन्न घरों में उनका सेवन-भोग (Luxury) के तौर पर होता है जिससे कोई लाभ नहीं। फलों का सेवन विधिपूर्वक होना चाहिये, तभी हम उनसे सर्वाधिक लाभ उठा सकते हैं। कुछ लोग कहेंगे कि यदि सब लोग फल खाने लगें तो इतने

फल कहाँ से आयेंगे। पर उन्हें इसकी चिन्ता न करनी चाहिये। माँग को देख उसकी वृद्धि स्वतः हो जायगी। ऐसा कहने वालों को जानना चाहिये कि दो-चार पैसों के फलों से ही शरीर को वह शक्ति मिल जाती है जो रोटी, शाक और मिठाइयाँ आदि भरपेट खा लेने पर भी सम्भव नहीं। दूसरे, फलों के स्थानापन्न शाक-भाजियाँ हैं। गरीब जनता इनसे लाभ उठा सकती है। तीसरे, रोगी होने पर हम दवाओं पर भी तो धन व शक्ति खर्च करते हैं। अतः ऐसी या अन्य आपत्तियाँ उठाना समीचीन नहीं। अब हम यहाँ फलों की सेवन-विधि के नियमों का उल्लेख करेंगे जिन्हें सैंकड़ों डाक्टरों ने वर्षों के अनुभव के पश्चात् जान पाया है। इन्हीं का प्रयोग लेखक भी गत कई वर्षों से अपने परिवार और रोगी समुदाय पर कर रहा है।

१. हमें यथा सम्भव ताजे और ऋतु फलों का इस्तेमाल करना चाहिये। प्रायः फल दूसरे प्रान्तों से आने के कारण कुछ सड़ जाते हैं जिन्हें फल-विक्रेता पानी में डुबा या साफ कर बेचते हैं। इनसे बचाना उचित है। जैसे यदि आजकल नारंगी, पपीते की मौसम है तो इन्हें ही खाना ठीक रहेगा, न कि अंगूर आदि को जो बे मौसम (Out of season) हैं।

२. बहुधा लोग दो या अधिक बार रोटी, साग, दूध आदि खा-पी लेते हैं, इसके अलावा फलों का भी सेवन करते हैं। किन्तु ऐसा करने से तो पेट पर अधिक बोझ होने के कारण फल अपना गुण नहीं दिखा पाता। अतः फलों का आहार की दृष्टि से अर्थात् रोटी या अन्य खाद्य पदार्थों की मात्रा में कमी कर या उन्हें हटाकर खाना ही उचित है।

३. फलों का रोटी के साथ मेल गड़बड़ी पैदा करता है। फलों के साथ दूध ले सकते हैं। पर शाकों और फलों का मेल अर्थात् एक साथ खाना ठीक नहीं है। ठौस फलों के साथ सूखा मेवा खाया जा सकता है।

४. दो-चार तरह के फल एक साथ मिलाकर खाने का भी रिवाज ठीक नहीं है। एक समय में एक ही प्रकार का फल खाना चाहिये अर्थात् यदि अभी नारंगी खाई है तो नारंगी ही खाइये। दूसरी बार दूसरी प्रकार का फल खाने में कोई हर्ज नहीं है।

५. यह हमारा केवल भ्रम है कि फलों को खाली पेट खाने से रोग उत्पन्न होते हैं अर्थात् रोटी खाने से कुछ देर पीछे ही उन्हें खाना चाहिये। पर सत्य इससे ठीक विपरीत है। फलों से अधिक लाभ तभी हो सकता है जब उनका सेवन रोटी खाने के तीन-चार घंटे पहले हो। सवेरे और दोपहर को केवल फलाहार और शाम को दिन का खास भोजन करना सबसे अच्छा तरीका है। एक अंग्रेजी कविता के अनुसार सवेरे, दोपहर और शाम

को खाए गये फल क्रम से सोना, चाँदी और ताँबा है।

६. सेब, नास्पाती आदि फलों को छिलके सहित खाना चाहिये। ऐसा करने से रुखड़े या छिलके (Cellulose) पेट में जाते हैं जिनसे आँतें साफ होती और कब्ज़ दूर होता है। जो छिलके कड़वे या कसैले हों और केवल हाथों से बिना किसी अस्त्र की सहायता के हटाये जा सकें, वे हटा दिये जा सकते हैं।

७. हैजा, प्लेग आदि के आक्रमणों के समय फल, शाक आदि कीटाणुओं से आक्रांत हो जाने के कारण खाने योग्य नहीं रहते—ऐसा कहना सरासर गलत और अयुक्त है। हमने तो ऐसे समय में रोगियों को केवल फल पर ही रख कर ठीक किया है और परिवारकों को हानि से बचाया है।

८. बहुधा हमें उपवास तोड़ते समय, ज्वरावस्था में या अन्य विशेष समयों में फलों के रस देने की आवश्यकता प्रतीत होती है। उस समय बिना छिलका उतारे सम्पूर्ण फल को ही काट कर टुकड़े करके साफ सफेद वस्त्र द्वारा किसी मिट्टी, पत्थर या काँच के पात्र में निचोड़ कर काम में लाना चाहिये। नारंगी का रस निकालते समय उसके छिलकों का भी रस निकालना जरूरी है। पाश्चात्य प्राकृतिक आहार-शास्त्रियों का मत है कि रस को दो मिनट से अधिक रखना विकृतावस्था लाता है।

९. अक्सर सुनते हैं कि अमुक फल सर्दी करता है और अमुक गर्मी। यह बात भी निराधार और केवल हमारे अन्ध-मात्र पर आश्रित है। वास्तव में न कोई फल गर्मी करता है और न सर्दी।

१०. केला स्टार्च-प्रधान होने के कारण फल नहीं है। दो केले एक रोटी के बराबर हैं। इन्हें गरिष्ठ या काबिज कहना भूल है। हमारा अनुभव है कि यह साफ दस्त लाता है। केला को खाते समय छिलके की भीतर की सफेदी जरूर खा लेनी चाहिये। इसे जितना चबा कर खाया जायगा, उतना ही स्वादिष्ट और पाचक होगा। जीर्ण रोग की दशा में केले से परहेज करना उचित है। केला पौष्टिक एवं पूर्ण भोजन (Perfect food) है। केले को मथ कर तथा उसमें राब या देसी गुड़ मिलाकर बड़ी बढ़िया लपसी तैयार की जाती है। इसे बच्चे बहुत पसन्द करते हैं।

दान की जगह काम

लेखक— प्रभुदयाल विद्यार्थी

अधिकांश लोग यह कहते और लिखते हैं कि भिखारियों को दान देना चाहिये यह है तो ठीक। लेकिन सवाल यह है कि हम कितने भिखारियों को भीख और दान दें। उनकी संख्या दिन प्रति दिन बड़े वेग से बढ़ रही है। दो-चार भिखारी हों तो उसकी समस्या पर बिचार भी किया जा सकता है। पर हमारे देश में तो उनकी संख्या लाखों तक पहुंच गई है।

अक्सर देखा जाता है कि खूब हट्टे-कट्टे तन्दरुस्त स्त्री-पुरुष और बालक सड़कों, गलियों और बाजार हाट में भीख मांगते फिरते हैं। यह हमारे लिए कितने कलंक की बात है कि एक हट्टा-कट्टा पुरुष दूसरों के सामने दीनता से दांत निकालता फिरे। वे भीख मांगकर अपनी आत्मा को बहुत दुर्बल बना डालते हैं। उनसे कोई पौरुष का काम हो ही नहीं सकता। हमारे देश को दोहरी गुलामी की जँजीरों में वे जकड़ते हैं, इसका पता हमें नहीं है। पर जिन लोगों के कारण हमारी गुलामी की जड़ें बहुत गहरी जमती जा रही हैं। हम भीख देकर अपने देश और धन का दुरुपयोग करते हैं, हम जब इस पर गहराई से बिचार करेंगे, तब हमको इसका ठीक पता चल जायगा।

भीख देने से बहुत लोग समझते हैं कि हम उसके साथ दया करते हैं और उपकार का जयमाल पहनना चाहते हैं। परन्तु आप मानें या न मानें, आप भिखारी को दान देकर उसकी जिन्दगी खराब ही करते है। क्या हमें दया नहीं आती यह देखकर कि १०, १२ साल का स्वस्थ लड़का, जिसकी उम्र अभी लिखने-पढने की है, दर-दर भीख मांग कर पेट पाल रहा है। उसमें काम करने की कितनी शक्ति भरी पड़ी है, क्या हमें यह मालूम नहीं ? भीख मांगते-मांगते उसकी आदत सी पड़ जाती है, अतः बिना भीख मांगे उसे चैन ही नहीं पड़ता। हजारों उपदेशों और शिक्षाओं को वह मजाक समझने लगता है। काम करने को पाप मानने लगता है और भीख मांगना अपना जन्मसिद्ध अधिकार कहने लगता है अब मैं इस पर अधिक न लिखकर जगत के सर्वश्रेष्ठ पुरुष महात्मा गांधी के विचार यहां लिख रहा हूँ।

"जो भूखे और बेकार हैं उन्हें भगवान केवल एक ही विभूति के रूप में दर्शन देने की हिम्मत कर सकते हैं, यह विभूति काम और अन्न के रूप में वेतन का आश्वासन है।"

नंगों को जिनकी जरुरत नहीं है, ऐसे कपड़े देकर मैं उनका अपमान नहीं करना चाहता। मैं उसके बदले उन्हें काम दूंगा, क्योंकि उसी की उन्हें सख्त जरूरत है। मैं उनका आश्रयदाता बनने का पाप कभी नहीं करूँगा लेकिन यह मालूम करने पर कि उनको तबाह करने में मेरा भी हाथ रहा है, मैं उन्हें समाज में सम्मान का स्थान दूंगा। उन्हें झूठन या उतरन तो हरगिज नहीं दूंगा। मैं उन्हें अपने अच्छे से अच्छे खाने और पहनने के कपड़े में हिस्सेदार बनाऊँगा और उनके परिश्रम में खुद योग दूंगा।"

"बिना प्रमाणिक परिश्रम के किसी भी चंगे मनुष्य को मुफ्त में खाना देना मेरी अहिंसा बरदाश्त ही नहीं कर सकती। अगर मेरा वश चले तो जहां मुफ्त खाना मिलता है ऐसा प्रत्येक सदावर्त या अन्य क्षेत्र मैं बन्द करा दूं। उनकी बदौलत राष्ट्र का पतन हुआ है। और आलस्य, सुस्ती, दम्भ तथा गुनहगारी को बढावा मिला है।"

महात्मा गांधी की बातों की तरफ ध्यान देने पर आप अपना क्या फर्ज समझते हैं ? गांधी जी का वश चले तो वे क्या करेंगे……………आप जान गये होंगे।

अप्रकाशित 'सेवाग्राम' से

खादी ही क्यों ?

क्योंकि—

खादी रोटी की तरह घर-घर बन सकती है।

खादी गाँव-गाँव और नगर-नगर में बन सकती है।

खादी हम खुद बना सकते हैं।

बूढ़े, बालक, स्त्री-पुरुष, पढ़े-लिखे और अनपढ, अमीर और गरीब सभी खादी का काम कर सकते हैं।

सभी धुन सकते हैं, कात सकते हैं; बुन सकते हैं।

खादी में हमारी आजादी है और मिल में हमारी बरबादी।

खादी हमारा धन बढाती है। मान बढाती है।

खादी हमारा मन बढाती है।

खादी हमारा तन बढाती है।

खादी हमारी ताकत और हिम्मत बढाती है।

खादी हमारा ज्ञान-विज्ञान बढाती है।

खादी हमारी कला-कारीगरी को बढावा देती है।

खादी हमारी आबादी बढाती और बरबादी पर रोक लगाती है।

खादी हमें सादगी सिखाती है।

खादी हमें संयम सिखाती है।

खादी हमें सन्तोष सिखाती है।

खादी हम में भाई चारा पैदा करती है।

खादी हमें दिलदार और दयानतदार बनाती है।

खादी हमें मर्द बनाती है।

खादी हमें हमदर्द बनाती है।

खादी हमें अपने पैरों पर खड़ा करती है।

खादी हमें इज्जत-आबरू से रहने देती है।

खादी हमें रोजी देती है, रुजगार देती है।

खादी हमें आलसी बनने से बचाती है।

खादी हमारी बेकारी का नाश करती है।

खादी हमें बदमाशी से बचाती है।

खादी हमें समय का सदुपयोग सिखाती है।

खादी हमें कामकाजी बनाती है।

खादी से हमारी कर्जदारी और गरीबी मिटती है।

खादी हमारी हर तरह की गुलामी को दूर करती है।

खादी से हमारी कंगाली मिटती है।

खादी देश के धन को देश में रखती है।

खादी देश के गरीबों को जिलाती है।

खादी हमारी माँ-बहिनों की रक्षा करती है।

खादी उन्हें मान-मर्यादा के साथ रहने और जीने का मौका देती है।

खादी हममें स्वाभिमान पैदा करती है।

खादी हमें पुरुषार्थी और परिश्रमी बनाती है।

इसलिये आज बड़ी बुलन्द आवाज के साथ यह कहने की जरूरत है कि—

खादी बनाइये ! खादी बेचिये ! खादी खरीदिये ! खादी पहनिये !

घर-घर, गाँव-गाँव और नगर-नगर में खादी की एक मजबूत हवा पैदा कर दीजिये। क्योंकि—

खादी हमारी कामधेनु है।

खादी बहादुरों की पोशाक है।

खादी ईमानदारों की पोशाक है।

खादी आजादों की पोशाक है।

खादी शहीदों और साधकों की पोशाक है।

खादी देवों की और देवियों की पोशाक है।

इसलिये हम कहते हैं—

जब जरूरत हो खादी ही खरीदिये। खादी ही पहनिये। अपने को, अपने घर को और घर वालों को खादीमय बना लीजिये।

सोते, जागते, उठते, बैठते खादी का ही प्रचार कीजिये। खादी का ही व्रत लीजिये।

—काशीनाथ त्रिवेदी

सम्मेलन का अबोहर-अधिवेशन

नेताओं तथा साहित्यिकों की दृष्टि में

[अबोहर-अधिवेशन पर आगत विद्वानों तथा साहित्यिकों को सम्मेलन की समस्त कार्यवाही से जो कुछ अनुभव हुये, उन्हें हमने 'दीपक' के सम्मेलनाङ्क के लिये लिख भेजने की प्रार्थना की थी जिससे उन अनुभवों से भविष्य में लाभ उठाया जा सके। हमारी प्रार्थना स्वीकार कर कई महानुभवों ने सम्मेलन सम्बन्धी अपने अनुभव भेजे हैं जो सम्मेलन से सम्पर्क रखने वालों यथा—स्वागत समिति, स्थायी समिति, प्रतिनिधि, दर्शक आदि सभी के लिये उपयोगी हैं। आशा है कि इन महानुभावों द्वारा सुझाये गये सुधारों पर भविष्य में विचार करके उनके अनुसार कार्य करने का प्रयत्न होगा। —सं०]

सम्मेलन के लिए उपयोगी सुझाव

स्वागत समिति के सदस्यों का सेवा-भाव और परिश्रम प्रशंसनीय था। वह दिन-रात काम में लगे रहते थे और अतिथियों को आराम देने का पूरा प्रयत्न कर रहे थे। किसी को शिकायत का अवसर नहीं देना चाहते थे। प्रतिनिधियों के भोजन का भार भी उन्होंने अपने ऊपर ले लिया था। फिर भी दो-एक बातों की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है।

भोजन के सम्बन्ध में सबकी रुचि एक सी नहीं होती। किसी को अरहर की दाल पसन्द है, कोई उर्द ही खाता है। किसी को केवल रोटी चाहिए। किसी का चावल के बिना काम ही नहीं चलता। किसी को पूरी अच्छी लगती है। इसलिए मेरी यह सलाह है कि सम्मेलन की स्वागत समिति भी कांग्रेस स्वागत समिति का अनुकरण किया करे। एक वक्त सम्मेलन के अन्तिम दिन अपनी ओर से सब प्रतिनिधियों को अच्छा प्रीति-भोज दे। शेष के लिए या तो अपनी ओर से एक या दो भोजनालय खोले जिनमें दो-तीन प्रकार का भोजन मिल सकता हो, एक पूर्वीय लोगों की रुचि का, एक पश्चिम वालों के योग्य। कम से कम शाम को पूड़ी का भी प्रबन्ध होना चाहिए। स्वागत समिति अपने को इस झगड़े में न डालना चाहे तो यह करे कि दो-तीन व्यापारी भोजनालय हों और हलवाइयों की दुकानें हों। स्वागत समिति भोजन का भाव स्वयँ निश्चय कर दे। उसका यह भी कर्तव्य होगा कि यह देखे कि दुकान में सफाई रहती है और बैठने का प्रबन्ध साफ और पर्याप्त है। इन बातों के लिए पृथक् उपसमिति होनी चाहिए।

एक पृथक् स्वास्थ्य या सफाई विभाग होना चाहिये। उसके लिए एक मँत्री या उपमँत्री पृथक् होना ठीक है। जितने अतिथि आने वाले हों उनकी संख्या के अनुमान से पर्याप्त पाखाने बनवाने चाहियें और बराबर यह देखना चाहिए कि साफ करने वालों की संख्या पर्याप्त है और वह काम में बराबर लगे रहते हैं। पेशाब खाने पृथक् होने चाहियें। नहाने के लिए भी स्थान होने चाहियें ! जाड़े में लोग ऐसी जगह चाहते हैं जहां हवा से बच कर नहा

सकें, और कपड़े साफ कर सकें। स्त्रियों के लिए इन सब बातों का पृथक् प्रबन्ध होना चाहिए। सम्मेलन के मण्डप के पास भी कहीं पेशाबखाने होने चाहियें, ताकि यदि किसी को बीच में उठने की आवश्यकता पड़े तो बहुत दूर न जाना पड़े। यदि कपड़ा धोने के लिए एक सस्ती लाण्ड्री का तथा क्षौर के लिए नाइयों का भी प्रबँध हो सके तो अच्छा हो।

स्वागत समिति को यह प्रबंध पहले से करना चाहिए कि असोशिएटेड प्रेस और प्रांत तथा देश के मुख्य पत्र अपने प्रतिनिधि भेजें। इसके साथ ही अपनी ओर से दो त्वरा-लेखक होने चाहियें और प्रकाशन-विभाग में एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो अँग्रेजी पत्रों में भी बराबर समाचार भेज सके।

सम्मेलन के अवसर पर परिषदों के लिए बहुत कम समय मिलता है। इससे साहित्य-सेवियों को उचित शिकायत रहती है। स्वागत समिति तो इस सँबँध में कुछ नहीं कर सकती, पर सम्मेलन और उसकी स्थायी समिति को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

कभी-कभी किराये का प्रश्न उठता है। मेरी सम्मति में सम्मेलन और परिषदों के सभापतियों को किराया देना ही चाहिये। यह बात ऐच्छिक नहीं, अनिवार्य होनी चाहिए। जिसके पास बहुत रुपया होगा वह सम्मेलन को किसी रूप में दान कर देगा। किराया देने की व्यवस्था न होने या ऐच्छिक होने से कई अच्छे साहित्य-सेवी सम्मिलित होने से रह जायेंगे। परन्तु कवि-सम्मेलन के लिए भी इतना ही होना चाहिए कि उसका जो सभापति हो उसको मार्ग-व्यय मात्र दिया जाय। और किसी को कुछ भी देना भारती का अपमान करना है। सम्मेलन में जो लोग जमा होंगे उनमें जो कवि होंगे वह कवि-सम्मेलन में आजायेंगे। इसके लिए किसी को विशेष रूप से बुलाना अनुचित है। यदि इस प्रकार कवि-सम्मेलन का आयोजन नहीं हो सकता तो उसे छोड़ देना चाहिये। यदि विषय समिति सम्मेलन के एक दिन पहिले बैठ जाये तो परिषदों के लिये बहुत समय निकल सकता है। स्थायी समिति के चुनाव की पद्धति भी ठीक नहीं है। स्थायी समिति को इन बातों की ओर ध्यान देना चाहिए।

बनारस,
१३-१-४२

—सम्पूर्णानन्द

अबोहर सम्मेलन

अबोहर पञ्जाब की एक छोटी सी मण्डी है। लेकिन स्वामी केशवानन्द जी तथा उनके सहयोगियों की तपस्या के कारण वह पञ्जाब में हिन्दी प्रचार का मुख्य केन्द्र बनगया है। 'साहित्य सदन' स्वामी जी की निःस्वार्थ सेवा का एक प्रत्यक्ष और सराहनीय उदाहरण है। 'दीपक' के सम्पादक श्री तेगराम जी ने भी अबोहर के आस पास के गांवों में जो सुन्दर रचनात्मक कार्य किया है वह जानने योग्य है। इसलिये पञ्जाब में हिन्दी-प्रचार कार्य को आगे बढ़ाने के लिए सम्मेलन का तीसवां अधिवेशन अबोहर में होना उचित ही था।

स्वागत समिति को अधिवेशन का प्रबन्ध करने के लिए मुश्किल से तीन-चार महीने मिले। अबोहर में सब सुविधायें मिलना भी कठिन था। फिर भी स्वागत समिति ने अच्छा प्रबन्ध किया। अगर स्वयम् सेवकों को अधिक ट्रेनिंग दी जाती तो इन्तजाम और भी अच्छा हो सकता था। पञ्जाबी भाइयों की आतिथ्य-भावना देखकर त्रुटियों की ओर ध्यान देने का अवसर ही न था।

पं० अमरनाथ झा ने सम्मेलन की कार्रवाई बड़ी योग्यता और कुशलता से चलाई। सभाओं का संचालन करने में वे निपुण हैं, और प्रयाग विश्व-विद्यालय के

उप-कुलपति की हैसियत से उन्हें इस दिशा में पूरा अनुभव भी मिला है। पं० झा का अध्यक्षीय भाषण विद्वतापूर्ण था, यद्यपि उनके सभी विचारों से शायद सहमत होना सम्भव न हो। स्वागताध्यक्ष पं० ठाकुरदत्तजी के भाषण की मैं प्रशंसा नहीं कर सकता। अगर उनका भाषण अधिक गम्भीर होता तो ठीक रहता।

अबोहर में लगभग सभी प्रस्ताव पञ्जाब के सम्बन्ध में थे। उनमें से कुछ प्रस्ताव खुले अधिवेशन में न होकर विभागीय परिषदों द्वारा स्वीकृत होते तो ज्यादा शोभा देते।

हिंदी, हिंदुस्तानी के सम्बन्ध में पू० टण्डन जी का प्रस्ताव महत्वपूर्ण था। उसके द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया कि सम्मेलन के कार्यकर्ता 'हिन्दी' शब्द का ही प्रयोग कर सकते हैं। महात्मा गांधी की इच्छा थी कि अगर हम हिंदी को ही हिन्दुस्तानी कहें तो सम्मेलन को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इसलिए पू० टण्डनजी के प्रस्ताव से महात्माजी को सन्तोष नहीं हुआ है।

अबोहर में ग्रामीणों की अच्छी उपस्थिति थी। यह सम्मेलन के इतिहास में एक नई घटना थी। यह सन्तोष की बात है कि सम्मेलन का ध्यान गाँवों की ओर गया है। हिन्दी प्रचार का काम अगर गाँवों में भी जड़ पकड़ने लगा, तो उसकी सफलता निश्चित है।

किन्तु मेरा यह स्पष्ट मत है कि पञ्जाब में हिन्दी का प्रचार राष्ट्र-भाषा की दृष्टि से ही होना चाहिए, मातृ-भाषा के स्थान पर नहीं। पञ्जाबियों की मातृभाषा तो पञ्जाबी ही हो सकती है और है। जब सर सिकन्दर भी घर में और अपने मित्रों में पञ्जाबी में ही बोलते हैं, तो फिर पँजाबी भाषा प्रान्तीय भाषा क्यों नहीं स्वीकार की जाती? प्रांत का सारा काम - कचहरी में और धारा सभा में भी— पँजाबी में ही चलना उचित है। हिन्दी, या उर्दू पँजाबी का स्थान नहीं ले सकतीं और न ऐसी कोशिश करनी चाहिए। हाँ, पँजाबी लोग राष्ट्रभाषा के तौर पर हिंदी सीखें तो आनन्द की बात है। पँजाबी भाषा की लिपि भी गुरुमुखी रहे तो ठीक होगा। उसमें कुछ आवश्यक सुधार किए जा सकते हैं।

अगला अधिवेशन भी पँजाब में होगा। इसलिए पँजाबी भाइयों को दिसम्बर के पहले कुछ ठीक काम करके दिखलाना चाहिए।

वर्धा, १३-१-४२] —श्रीमन्नारायण अग्रवाल

अबोहर-सम्मेलन
क्या क्या हुआ ? कैसे कैसे हुआ ?
कुछ आप-बीती

जब से जेल से छूटा था पूरा आराम भी नहीं मिला था, आराम करने की सोच ही रहा था कि ता० ११ दिसम्बर को श्री स्वामी केशवानन्द जी का तार आया कि अबोहर पहुँच कर सम्मेलन को सम्भालो। ता० १२ दिसम्बर को भी इसी आशय का पत्र मिला। मैं कुछ अस्वस्थ सा था। सम्मेलन में जाने की कोई इच्छा भी न थी, एकाध दिन सोचने में ही गया फिर यह खयाल करके कि कहीं सम्मेलन असफल हुआ तो पञ्जाब में 'हिंदी' के काम को धक्का लग जायगा, अपने मनीराम चलने को तैयार हुए। तार का उत्तर दे दिया गया कि ता० १८ को प्रातःकाल पहुँचूंगा। मैं अपने वचनानुसार ता० १८ को प्रातः १० बजे अबोहर पहुँचा। मैं पहिले भी एक बार अबोहर गया था इसलिये कोई नई सी बात नहीं लगी। स्टेशन पर ही ला० मुकुन्दलाल सेतिया तथा पं० ताराचन्द जी पुजारी मिल गये। उनसे दो-चार मिनट में सम्मेलन सम्बन्धी मोटी-मोटी बातें जान लीं। मैं साहित्य

सदन की ओर चल दिया। जब सदन के समीप पहुँचा तब स्वामी जी दूर से मेरी ओर लपके, 'नमस्ते' तथा कुशल-प्रश्न के पश्चात् स्वामी जी मुझे सदन के ऊपर के पश्चिम के कमरे में ले गये और कहा--यह आपके लिये है, आप ठहरिये, अपने साथियों को ठहराइये, जो चाहे कीजिये। स्थान एकान्त में था, मुझे पसन्द आया। शौच, स्नान, ध्यान करके मैंने भगवान् से प्रार्थना की कि उसकी अनुपम कृपा से सब कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हों। फिर धीरे-धीरे सब कार्यकर्ताओं से परिचय प्राप्त किया। मास्टर तेगराम जी से मैं पूर्व से ही परिचित था। महाशय सुखराम जी पहिले से ही मुझे जानते थे। श्री सत्यदेव मिश्र (बिहारी) भी मुझ से परिचित थे। श्री भोलेश्वर शुक्ल, श्री रुचिर, श्री काशीराम, श्री महावीर, श्री उदयचन्द, श्री कुलभूषण जी नये थे। श्री वंशीधर जी (जो आचार्य जी कहे जाते थे) इन सब में प्रमुख थे और सम्मेलन-कार्यालय का कार्यभार सब इन्हीं पर था। मुख्यतया सब कार्यों की कुंजी मास्टर तेगराम जी तथा उदयचन्द जी के हाथों में थी। कोई काम किधर से ही प्रारम्भ कीजिये, ये दो व्यक्ति वहाँ विद्यमान न हों तो कार्य रुका ही समझिए। श्री कुलभूषण जी सम्मेलन समाप्ति तक 'दीपक प्रेस' के किसी न किसी कार्य में उलझे ही रहे। बड़े शिष्ट नवयुवक हैं। श्री महावीर को तो सम्मेलन के हाथ-पैर समझिये। श्री वंशीधर जी बी ए. कैसे विचित्र मधुर व्यक्ति हैं, कैसे चतुर व्यक्ति हैं इस बात को मैं तब जान सका जब उन्होंने सारा भार मुझ पर डाल भी दिया, मुझे पता भी न चला। मैं समझ रहा था कि मैं ही सब का 'गुरु' बन बैठूंगा, ये मेरे भी गुरु निकले। उपर्युक्त सभी महानुभाव तन-मन से सम्मेलन कार्य में संलग्न रहे, यही कारण है कि तीन महीने में ही वर्ष भर का काम हुआ। कार्यालय से लगभग ७००० पत्र बाहर गये, लगभग पाँच हजार बाहर से आये।

स्वामी जी तो अन्त दिन तक माँगने में ही रहे। श्री चाँदीराम जी ने माँगने के काम में बहुत सहायता की। मैं जब अबोहर गया, प्रत्येक विभाग की कमेटियाँ तो बनी हुई थीं पर काम नया था, कमेटी के सदस्य कुछ जानते नहीं थे। फिर धीरे-धीरे इन्हें हिलाया गया। श्री शेरसिंह जी ने पण्डाल का काम जिस दृढ़ता और संलग्नता से किया उसकी प्रशंसा हो नहीं सकती। सवेरे से शाम तक जुटे रहते थे। मास्टर तेगराम जी सर्वव्यापी थे। अभी प्रेस में, अभी सदन में, अभी नगर में, हमको ढूंढने के लिये एक स्पेशल (खास) आदमी रखना पड़ता था, तब हाथ आते थे। हाँ, ११॥-१२॥ (मध्याह्न) का एक ऐसा समय था जब सब कार्यालय में आ जाते थे, क्योंकि वह डाक का समय था, और कम से कम एक-डेढ घण्टे तक एक स्थान पर बैठते थे। श्री भोलेश्वर जी का स्वभाव मधुर था, श्री रुचिर काम भी करते जाते थे और इनकी फूँ-फाँ भी देखने योग्य थी। श्री सत्यदेव मिश्र पते लिखने, पत्रों की नकल करने में व्यस्त रहते थे। उदयचन्द जी को सदन को सजाने की ऐसी धुन थी कि कुछ पूछिये नहीं। श्री पं० विद्याधर शास्त्री, एम ए. डूंगर कालेज बीकानेर और श्री उदयचन्द जी का ही परिश्रम था कि "प्रदर्शिनी" ऐसी उत्तम पार हुई कि जिधर देखो उधर प्रशंसा ही सुनाई देती थी। प्रदर्शिनी में काश्मीर तक की वस्तुएँ आई थीं और इसका श्रेय श्री पं० अमरनाथ काक को देना पड़ेगा। सम्मेलन को सफल बनाया श्री अमरनाथ झा ने तो प्रदर्शिनी को बनाया श्री अमरनाथ काक ने।

श्री स्वामी केशवानन्द जी का इधर के इलाके में प्रभाव था, इसीलिये ऐसे थोड़े समय में, दक्षिण पञ्जाब के एक कोने में, अबोहर जैसी नाज की मण्डी में और ग्रामीण परिस्थिति में सम्मेलन को अपूर्व सफलता मिली। अबोहर से बीस-बीस मील तक चारों ओर ग्राम ही ग्राम हैं और यह स्थान बीकानेर राज्य से सटा हुआ है। गत तीस वर्षों से सम्मेलन बड़े नगरों में ही होता चला आया है, अबकी बार ही इसने ग्राम देखा है। लोगों को चिन्ता थी कि यह अखिल भारतीय सम्मेलन में कैसे पार उतरेगा। स्वागताध्यक्ष लाहौर के थे, उसी दिन पधारे जब सम्मेलन प्रारम्भ होने वाला था। अबोहर के कार्यकर्ताओं में बड़ा मेल था। सब का काम सब करते थे इसीलिये पार उतर गया।

रायसाहब कुन्दनलालजी, श्री मुन्शीरामजी, श्री धर्मचन्दजी, श्री ताराचन्द जी पुजारी, श्री गोकुलचन्द जी, श्री मोदी जी आदि यथाशक्ति जुटे ही रहे। अतिथि तथा दर्शकों के ठहरने के लिये पर्याप्त स्थान थे—बोर्ड का स्कूल, रेस्ट हाऊस, बोर्डिङ्ग हाऊस, धर्मशालाएँ इत्यादि। नये-नये स्वयं सेवकों के कारण प्रतिनिधियों तथा दर्शकों को ठहराने में कुछ असुविधा रही सही, पञ्जाब के "गुरु के लंगर" की पद्धति वाले लंगरों का अनुभव न होने के कारण अतिथियों को थोड़ा कष्ट हुआ सही, पर श्री ताराचन्द पुजारी जी ने सब काम दक्षता से पार उतारा। चलते-फिरते पुस्तकालय वाले ग्रामीणों का लंगर भी खूब चला। सब मिलकर जगह-जगह ७—८ लंगर थे और लगभग प्रति समय ३ सहस्र व्यक्ति भोजन कर जाते थे। सम्मेलन में सिक्खों का भी पृथक् लंगर था। एक दिन नामधारी सिक्खों का समारोह भी रहा। इनके गुरु अपने शिष्यों सहित भैणीसाहब से पधारे थे। प्रातः ४ से ९ तक खूब सत्संग रहा। श्री गुरुप्रतापसिंह जी ने सम्मेलन से प्रभावित होकर आगामी वर्ष के लिए सम्मेलन को निमन्त्रण दिया। आगामी वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन भैणीसाहब में होगा।

प्रतिनिधियों में काश्मीर, पञ्जाब, बहावलपुर, नाभा, पटियाला, जींद, रोहतक, हिसार, देहली, मध्यप्रदेश, मध्यभारत, पूना, कलकत्ता, काशी, प्रयाग, राजपूताना आदि स्थानों के व्यक्ति थे, बड़े-बड़े विद्वान् पुरुष पधारे थे, पूने से डा० वैशम्पायन के साथ १५ व्यक्ति आये थे जिनमें ५ देवियाँ थीं। महाराष्ट्र होने पर भी ये सब कैसी विशुद्ध हिन्दी बोलते थे, सुनने योग्य थीं। महाराष्ट्र महिलाओं के सशास्त्र मधुर गायन भी मुग्ध करने वाले थे। काश्मीर से भी ७—८ व्यक्ति आये थे। प्रतिदिन पण्डाल दर्शकों से खचाखच भरा रहता था। महिला सम्मेलन भी बहुत सफल रहा। चार सहस्र देवियाँ सम्मिलित हुई थीं। कवि सम्मेलन भी हुआ, भीड़ भी अच्छी थी। बीकानेर राज्य के कवि हाथ मार ले गये। कविताएँ प्रायः वही पुरानी थीं, जो पचासों जगह लोगों ने सुनी हुई थीं। हमारी राय है कि हिन्दी सम्मेलन के साथ कवि सम्मेलन नहीं होने चाहिएँ। समस्त सम्मेलन के दिनों में मुझे तीन-चार गीत ही अच्छे लगे। श्री सुभद्रा कुमारी सिन्हा का—

"क्या सूने में है गाना"

एक बीकानेरी मास्टर का—

"यह कैसा कोलाहल"

पूने के महाराष्ट्र नवयुवक का तुलसी रामायण का भजन, महाराष्ट्र ललनाओं के वन्देमातम् तथा अन्य गीत।

अब दो-दो शब्दों में वक्ताओं का कथन सुनिये

हिन्दी ही हमारी राष्ट्रभाषा है, हिन्दुस्तानी नहीं (श्री अमरनाथ झा), संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही सच्ची हिन्दी है (ठाकुरदत्त शर्मा), अबला कही जाने वाली देवियाँ जब सबला बनेंगी तभी देश का उद्धार होगा, देवियों को उचित है कि बच्चों को हिन्दी पढ़ावें (श्रीमती कमलाबाई किबे), 'हिन्दी' के लिए हिन्दुस्थानी कहना न्यायसंगत नहीं (श्री टण्डन—श्री सम्पूर्णानन्द), मुझे कहीं-कहीं तो 'हिन्दी' के लिये 'हिन्दुस्थानी' शब्द का प्रयोग करने दो (काका कालेलकर), हरगिज नहीं, विशुद्ध हिन्दी ही राष्ट्रभाषा है (अमरनाथ काक), बच्चों की शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही हो (नरदेव शास्त्री), मैं सम्मेलन से निराश हुआ (जैनेन्द्र कुमार), प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह करो (भगवद्दत्त रिसर्च स्कालर, पण्डित रामधन शास्त्री), हिन्दी-हिन्दुस्थानी के स्पष्टीकरण के लिए किसी प्रस्ताव की आवश्यकता नहीं (श्री जैनेन्द्र तथा श्री ललिताप्रसाद एम्० ए०, कलकत्ता), स्पष्टीकरण आवश्यक है (श्री गांगेय नरोत्तम), मैं फिर सम्मेलन में कार्य न कर सकूंगा (काका कालेलकर), अच्छी बात है (जनता), यह भी कुछ ठीक है, वह भी कुछ ठीक है। स्पष्टीकरण का प्रस्ताव न होता तो भी हानि नहीं थी, अब आ गया तो पास होना ही चाहिए (श्री पं० माखनलाल चतुर्वेदी), पञ्जाब सरकार हिन्दी का गला घोट रही है (पञ्जाबी प्रतिनिधि) अगले वर्ष सम्मेलन भैणीसाहब

में कीजिये (इन्द्रसिंह चक्रवर्ती), भविष्य में चार-पाँच वर्ष तक पञ्जाब में ही हो तो अच्छा है (मास्टर तेगराम) अध्यापक ही राष्ट्र का उद्धार कर सकते हैं (श्री वंशीधर) अध्यापक ही सब शक्तियों के केन्द्र हैं (प्रो० दीवानचन्द शर्मा), ग्रामवासियो संगठित बनो, शिक्षित बनो (लाला हरदेवसहाय), तीन महीनों में ही साल भर का काम कर दिया, अब भी शिकायत करते हो। काम करने में त्रुटियाँ रह ही जाती हैं (स्वामी केशवानन्द), गुड़गावाँ, हिसार आदि जिलों की जनता की भाषा हिन्दी है, तो भी पञ्जाब सरकार उन पर उर्दू लाद रही है (उधर की जनता) इत्यादि।

सम्मेलन के साथ ग्राम सम्मेलन, अध्यापक सम्मेलन, विज्ञान-दर्शन-साहित्य, समाजशास्त्रादि परिषदें भी हुईं। सभापतियों के भाषण मार्मिक हुए। विद्वतापूर्ण व्याख्यान इन्हीं परिषदों में सुनने को मिलते थे।

श्री सङ्गरिया जाट स्कूल के लड़कों ने सत्यहरिश्चन्द्र नाटक बड़ा उत्तम खेला। दर्शकों की उपस्थिति दो-ढाई सहस्र रहती थी। जाट स्कूल सङ्गरिया तथा उनके मास्टरों ने सम्मेलन के प्रत्येक कार्य में पूरा पूरा योग दिया। सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए वे पैदल ही ग्रामों में होते हुए आये थे। सभापति अमरनाथ झा के जलूस में इन्हीं के कारण बड़ी चहल-पहल, रौनक रही। हैडमास्टर श्री हेतराम एम.ए., श्री सत्यप्रकाश आदि धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रदर्शिनी को सुचारु रूप से चलाने में श्री पँ० विद्याधर शास्त्री, एम-ए, ने बड़ा परिश्रम किया। सम्मेलन से पूर्व आप २१ दिन तक पँजाब में घूमे थे और अच्छा काम किया था।

अब जरा त्रुटियों को सुनिए

१—प्रतिनिधि लोग सभा में समय पर नहीं आते थे और न ही अपने नियत स्थान में बैठते थे इसलिए प्रतिनिधियों के लिए सुरक्षित रक्खे हुए ब्लाक में अन्य लोग भर जाते थे।

२—स्वयँ-सेवक लोग वर्दी तो खूब डाटकर आते थे पर अपने मानापमान का अधिक ध्यान रखते थे—उनको जब सेवा-भाव का महत्व समझाया गया तब वे फिर ठीक हो गए।

३—जो ग्राम के लोग सम्मेलन के गम्भीर भाषणों को नहीं समझ सकते थे वे सदा पृथ्वीसिंह बेधड़क के भजनों के लिए चिल्लाते रहते थे। करें क्या बेचारे!

४—जब कांग्रेस की तरह हिन्दी सम्मेलन भी ग्रामों की ओर जा रहा है तब प्रतिनिधिगण को भी कुछ अपनी आदतों को बदलना होगा। ग्राम वालों को इन साहित्यिक विद्वानों को समझने में और साहित्यिकों को ग्राम वालों को समझने में कुछ विलम्ब लगेगा सही। जब दोनों परस्पर की गति विधि को समझ लेंगे तभी कल्याण है।

५—यदि शहरी प्रतिनिधिगण शहरी तड़क-भड़क और ढङ्ग लेकर ग्रामों में होने वाले सम्मेलनों में पधारेंगे तो उनको कष्ट ही होगा।

६—हमारी सम्मति है कि सम्मेलन के अवसर पर अच्छे भाषण सबके लिए हों और उनमें सर्वसाधारण को आने जाने की खुली छुट्टी रहे।

सम्मेलन के अधिवेशन चुने हुये लोगों में हों। उस समय यह भी ध्यान रखा जावे कि वक्ता लोग थोड़े समय में अधिक से अधिक बोलने का ध्यान रखें। प्रस्तावों पर बहुत अधिक लम्बे भाषण नहीं होने चाहिएँ।

७—सम्मेलन के साथ परिचय-सम्मेलन भी होना चाहिए जिसमें साहित्यिकों तथा विद्वानों का परस्पर परिचय कराना चाहिये।

८—कवि सम्मेलन में शृङ्गार-रस की कविताओं का निषेध रहना चाहिए, ऐसे ही कवि निमन्त्रित किए जायँ जो दुर्व्यसनी न हों, शिष्ट हों, शान्त हों, सदाचारी हों।

हम समझते हैं कि इन बातों का ध्यान रखा जायगा तो हिन्दी साहित्य सम्मेलन अधिक सफल हुआ करेंगे।

सारांश, सम्मेलन में अपूर्व सफलता रही। वहाँ पहुँचते ही मुझे सबने अपनाया और मैंने जिससे जिस प्रकार का

काम लेना चाहा, उसने उस कार्य को तत्परता से किया। कभी-कभी मेरी कठोरता को भी हर्षपूर्वक सहन किया। उन सब सहयोगियों, कार्य कर्त्ताओं को मेरी हार्दिक बधाई है। परस्पर सहयोग और प्रेम हो, तो सँसार में कौन सा काम है जो असाध्य है।

महाविद्यालय
ज्वालापुर
माघ सुदी १–१९९८

नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ
१७–१–१९४२

सम्मेलन का अबोहर-अधिवेशन

अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का ३० वाँ अधिवेशन इस बार बड़ी सफलता के साथ अबोहर (पञ्जाब) में हुआ। स्वागत-समिति ने थोड़े समय में ही सम्मेलन को सफल बनाने के लिए जो प्रयत्न किए वे अत्यंत सराहनीय थे। इस सम्मेलन की कुछ विशेषताएँ हैं, जिनका सम्मेलन के इतिहास में हमेशा महत्वपूर्ण स्थान रहेगा। पञ्जाब में सर सिकन्दर हयातखाँ की सरकार हिन्दी की जो अपेक्षा कर रही है, उसका उत्तर उससे अधिक क्या हो सकता था कि पञ्जाब के लोग सम्मेलन को सफल बनाने में हर तरह से सहयोग देते। हिन्दी का राष्ट्रभाषा पद कोई नई बात नहीं है। वह तो शायद अँग्रेजों के आने के पहिले से भारत की राष्ट्रभाषा थी क्योंकि उस समय की महाराष्ट्र और गुजरात के सन्तों की वाणियाँ हिन्दी में मिलती हैं। बङ्गाल में चैतन्य महाप्रभु विद्यापति के पदों को पाकर लोग भगवत्-प्रेम में निमग्न हो जाते थे। पञ्जाब में गुरु नानक की कविता शुद्ध और सरल हिन्दी का सुन्दर नमूना है। ऐसी दशा में हिन्दी की उपेक्षा का मुख्य उत्तरदायित्व भारत सरकार पर है, जिस ने कई प्रान्तों में उस भाषा को राज-भाषा का पद दिया जिसे मुसलमानों के शासन-काल में राज-महलों के अन्दर घुसने का साहस न था।

अबोहर-सम्मेलन में हिन्दी हिन्दुस्थानी के प्रश्न को स्पष्ट करके एक बड़े भारी भ्रम को दूर किया गया है। इस सम्बन्ध में काका साहब ने खुले अधिवेशन में जो व्यवहार प्रदर्शित किया, वह अत्यन्त सराहनीय है। हम काका साहब को हिन्दी का एक प्रमुख सेवक मानते हैं, परन्तु हमें उनकी यह बात समझ में नहीं आती कि वे बहुमत के साथ क्यों नहीं चलना चाहते। काका साहब ऐसे राष्ट्रीय सज्जन द्वारा जनमत का आदर अवश्य होना चाहिए। हिन्दी के क्षेत्र में महात्मा गांधी, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, सेठ जमनालाल बजाज आदि कितने ही राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं की सेवाएँ आदरणीय हैं। परन्तु हमारे राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं ने हिन्दू-मुस्लिम समस्या सुलझाने में जो गलतियाँ की वैसी ही कुछ गलती वे भाषा के मामले में भी कर रहे हैं। उन्हें यह जानना चाहिए कि उर्दू कुछ पढ़े लिखे थोड़े से मुसलमानों की भाषा है। सम्मेलन के अवसर पर मुझे पञ्जाब में घूमने का अवसर मिला और मैं ने यह अनुभव किया कि पञ्जाब के अधिकांश मुसलमान उर्दू नहीं पञ्जाबी बोलते हैं। गुजरात, बङ्गाल, महाराष्ट्र और मद्रास में भी तो यही होता है। पिछली बार पूना सम्मेलन के अवसर पर खंडवा से कल्याण तक एक मुसलमान बङ्गाली सज्जन का साथ हुआ। ये बङ्गाली सज्जन हमारी मिश्रित हिन्दुस्थानी को नहीं समझ पाते थे। अतएव विवश होकर हमें उनसे टूटी-फूटी बङ्गाली में बात करनी पड़ी। उर्दू भाषा से हमारा कोई विरोध नहीं। उसके साहित्य के प्रति हमें प्रेम है। परन्तु हम उसकी राष्ट्रीयता नहीं स्वीकार कर सकते। जिस पञ्जाब को उर्दू का केन्द्र कहा जाता है उसने हिन्दी-हिन्दुस्थानी के प्रश्न

पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास कर अपनी सहज और स्वाभाविक अभिरुचि काही परिचय दिया है।

अबोहर-सम्मेलन की दूसरी विशेषता सिक्ख भाइयों का सहयोग प्राप्त होना है। अगला सम्मेलन तो अब सिक्खों के नामधारी गुरु महाराज ने ही निमन्त्रित किया है। भारत में सिक्खों और उनकी बहादुरी का विशेष स्थान है। हम आशा करते हैं कि उनके सहयोग से हिन्दी-प्रचार का कार्य पञ्जाब में अधिक सरल हो जायगा। इनके विचारों का प्रभाव पञ्जाब की सिक्ख रियासतों पर भी पड़ सकता है।

पञ्जाब में दिसम्बर का मौसम दक्षिण और मध्य भारत वालों के लिए विशेष सुविधाजनक नहीं कहा जा सकता। सरदी के कारण प्रतिनिधियों को अबोहर में कठिनाइयां अवश्य हुईं, परन्तु यह तो स्वागत समिति के बस की बात नहीं थी। जहाँ तक बन पड़ा स्वागत-समिति ने प्रतिनिधियों को सुविधा पहुँचाने का प्रयत्न किया। चार हजार से अधिक अतिथियों के लिए निःशुल्क भोजन आदि की व्यवस्था शायद ही सम्मेलन के इतिहास में फिर कभी संभव हो। आगामी सम्मेलन बड़े दिनों की छुट्टियों के बजाय ईस्टर की छुट्टियों में हो तो अधिक अच्छा हो। कवियों की उपस्थिति की दृष्टि से कवि-सम्मेलन काफी सफल था। निराला जी का सभापतित्व ही आकर्षण के लिए काफी था। फिर बच्चन जी का कविता-पाठ तो उसमें और भी अधिक सहायक हुआ। यह सब होते हुए भी हिन्दी के कवि अधिकतर 'सातवें आसमान' में रहते हैं। अतएव उन्होंने जो प्रदर्शन किया उसका प्रभाव उचित नहीं हो सकता।

हम सम्मेलन की गति-विधि के पूर्ण समर्थक नहीं हैं। अखिल भारतीय रूप धारण करने के लिए उसके अधिक उदार होने की आवश्यकता है। साहित्यिकों के सहयोग की समस्या भी विचारणीय है। अबोहर सम्मेलन ने इन सब के लिए मार्ग तो खोल दिया है, परन्तु सफलता तभी मिल सकती है जब अन्य प्रान्त वाले सम्मेलन को विशेष रूप से अपनावें और हिंदी के साहित्यकार कल्पना के लोक से उतर कर मानवता की भाषा में बात करें तथा कार्य करने के लिए अग्रसर हों।

सबसे खटकने वाली बात थी प्रधान मन्त्री जी की अनुपस्थिति। जिस संस्था के वार्षिक अधिवेशन पर उसका प्रधान मन्त्री ही नदारद हो उसका भाग्य कैसे निश्चित कहा जा सकता है?

इन्दौर,
१३-१-४२

—के० पी० दीक्षित

अबोहर अधिवेशन पर एक दृष्टि

पूना सम्मेलन के अवसर पर हैदराबाद (दक्षिण) का निमन्त्रण स्वीकृत हुआ था। हिन्दी प्रेमियों को अब आशा बँध गई थी कि दक्षिण के शेष भाग हैदराबाद में भी हिंदी का प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। परन्तु निजाम सरकार ने अपनी अदूरदर्शिता का परिचय देकर वहाँ अधिवेशन करने की मनाही करदी। इससे सम्मेलन को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा, और उसकी आशा-लता पर तुषार-पात हो गया। इस बीच में कई मास बीत गये किन्तु आगामी अधिवेशन-स्थान का निश्चय न हुआ। अन्त में स्थायी समिति बुलाई गई जिसने अपनी २५ अगस्त की बैठक में अबोहर (पञ्जाब) का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया, क्योंकि पञ्जाब में राष्ट्रभाषा हिन्दी की आवश्यकताओं, कठिनाइयों तथा बाधाओं का साक्षात् दर्शन कर उनको दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहना सम्मेलन

का प्रधान लक्ष्य था। जो स्थिति पञ्जाब में हिन्दी की करदी गई है उसका ठीक-ठीक ज्ञान हमें अन्य प्रकार से हो ही नहीं सकता था।

अबोहर का साहित्य-सदन सम्मेलन की निजी संस्था है, उसका परिचय भी अपने सदस्यों को कराना अभिष्ट था। इस थोड़े समय में अधिवेशन करने का भार अन्य किसी संस्था पर डालना अभिप्रेत भी न था। अतः सम्मेलन का भार स्वामी केशवानन्द जी के कन्धों पर रख दिया गया। स्वामी जी की तपस्या, कर्मनिष्ठा, संगठन-शक्ति तथा अध्यवसाय पर सम्मेलन को पूरा भरोसा था, कि जिनके प्रबल प्रयत्न तथा उद्योग से साहित्य सदन, अबोहर एक सजीव तथा जीती-जागती संस्था बन गया है। इस ३॥ मास के थोड़े समय में ऐसे वृहत आयोजन की पूरी तैयारी करना अन्य किसी के लिए कठिन ही नहीं असम्भव था। परन्तु स्वामी जी ने इसी काल में वह जादू कर दिखाया जिसे साधुओं की भाषा में करामात के नाम से पुकारा जाता है।

साहित्य सदन अबोहर के तत्वावधान में ५० ग्रामों में चलते-फिरते पुस्तकालय कार्य कर रहे हैं। इस संस्था का अपना निजी प्रेस, मासिक पत्र 'दीपक', पुस्तक प्रकाशन, हिन्दी-पाठशाला, सुविशाल पुस्तकालय-वाचनालय आदि प्रचार के सभी साधन प्राप्त हैं। इनके अतिरिक्त सँगरिया का हाई स्कूल, तथा अन्य कई छोटी-बड़ी संस्थाएँ स्वामी जी की तपस्या एवं अध्यवसाय का आस-पास के इलाके में मूर्तिमान रूप बन कर बच्चे-बच्चे के हृदय में अङ्कित हो रही हैं। इसके परिणाम स्वरूप वह प्रान्त "आर्य संस्कृति का केन्द्र", "हिन्दी का गढ़" तथा "उच्च भावनाओं व उत्कृष्ट मनोवृत्तियों का क्षेत्र" बन गया है।

सौभाग्य से स्वामी जी को कई निस्पृह एवं लगनशील कार्यकर्ता मिले हुए हैं जिन्हें स्वामी जी के दायें-बायें हाथ कहना अत्युक्ति नहीं है। इससे संस्था के लिए सोने में सुगन्ध हो गई है। साथ ही उनकी तपस्या मूर्तिवती होने से जाज्वल्यमान रूप में प्रतिभाषित हो रही है।

स्वामी जी का प्रभाव केवल अबोहर प्रान्त और उसके समीपवर्ती प्रदेशों पर ही व्याप्त नहीं हैं, वरन् सुदूरस्थ वासियों के हृदय पर भी उनके प्रेम की धारा प्रवाहित हो रही है। इसीसे उन्हें पं० नरदेव शास्त्री जैसे कर्मिष्ठ, अनुभवी तथा प्रो० पं० विद्याधर जी शास्त्री साहित्याचार्य डूंगर कालेज बीकानेर जैसे महानुभावों का सहयोग प्राप्त था। ये दोनों सज्जन अधिवेशन के बहुत पहले से अबोहर में आकर स्वामी जी के कार्य में हाथ बँटा रहे थे। प्रथम सज्जन ने स्वागत समिति कार्यालय का और दूसरे ने प्रदर्शिनी का कार्य अपने हाथों में सम्हाल लिया था। इनके अतिरिक्त स्वामी जी को म्यूनिस्पैलिटी अबोहर तथा वहाँ के निवासियों का पूरा सहयोग प्राप्त था। जैत्तो आदि अन्य दूरस्थ कई संस्थाओं ने भी स्वामी जी के इस महान् यज्ञ में हाथ बँटाया था। नामधारी सिक्खों के तो प्रधान गुरु श्री प्रतापसिंह महाराज तथा प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री इन्द्रसिंह जी चक्रवर्ती भी अपने सैंकड़ों साथियों सहित सम्मेलन में सम्मिलत हुए थे, जिन्होंने अपने भैंणी स्थान में सम्मेलन का अगला अधिवेशन निमँत्रित किया है। अतः अबोहर सम्मेलन की यह सबसे बड़ी सफलता है कि उसे सिखों ने भी अपना लिया है। अन्य बहुत से खालसा सिख भी अधिवेशन में पधारे थे। इस सम्मेलन की सबसे अधिक आकर्षक प्रातःकाल की वे मण्डली थीं जो उत्तेजक व उत्साहवर्द्धक गीत गाती दिखलाई पड़ती थी। यह दृश्य अहमदाबाद कांग्रेस का स्मरण करा देता था।

सम्मेलन का पण्डाल काफी बड़ा और मनोहर था जिसमें हिन्दी के सुन्दर वाक्य (मोटो) टँगे हुए थे।

भोजन-प्रबन्ध भी वहाँ बड़े पैमाने पर किया गया था। लगभग दो-ढाई सहस्र से अधिक जन-समूह नित्य प्रातः सायं दोनों समय निःशुल्क भोजन करता था, जब कि सम्मेलन के कई अधिवेशनों में प्रतिनिधियों को भी भोजन देना स्वागत समिति के लिए भार प्रतीत होता था। इसके लिए स्वामी जी ने ४–५ लंगर खोल रखे थे, और भी कई लंगर चलते थे। इस प्रकार सात लंगर सम्मेलन के अवसर पर चालू थे। एक स्थान पर पूड़ियों का प्रबँध था, शेष में रोटी-दाल शाकादि का। भोजन सादा होने पर भी उसमें शुद्ध घी तथा पौष्टिक पदार्थों का प्रयोग था। साथ ही मेवा; दूध, दही, की उत्तम व्यवस्था और

अधिकता थी। स्नानादि के लिए गर्म जल का पर्याप्त प्रबन्ध था।

प्रतिनिधियों आदि को ठहरने की भी व्यवस्था अच्छी थी। प्रदर्शनी छोटी होते हुए भी सुरुचिपूर्ण उत्तम ग्रन्थों और भिन्न-भिन्न प्रकार के शिक्षा-प्रद आदर्शों से युक्त थी। इसमें रक्खी हुई पृथ्वीराज रासो की संवत् १७२३ वि० की प्राचीन हस्तलिखित प्रति अन्वेषकों के लिए बड़े काम की वस्तु है। आशा है साहित्यिक विद्वान् इस पर गवेषणा-पूर्वक विचार कर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

इस प्रदर्शिनी में आदर्श साहित्य का ही संग्रह किया गया था, जिससे ज्ञात हो हो जाता है कि उत्कृष्ट साहित्य समाज-निर्माण में कितना सहायक हो सकता है। साथ ही गन्दे साहित्य से समाज की रक्षा करना भी उतना ही आवश्यक प्रतीत होने लगता है।

इस सम्मेलन में उपस्थिति भी बहुत अच्छी रहती थी। जहाँ अन्य सम्मेलनों में उपस्थिति का अभाव खटकता रहता था, जहाँ टिकट लगाने पर भी इस अधिवेशन पर ८—७ सहस्र जन-समूह प्रति समय पण्डाल में प्रस्तुत रहता था। उपस्थित जन-समुदाय सदैव उमड़ता हुआ दृष्टि-गोचर होता था, जिनमें बड़ी संख्या सैंकड़ों गाँवों से आये देहातियों की थी। सम्मेलन के इतिहास में यह पहला अवसर है कि उसका अधिवेशन इतने छोटे स्थान में हुआ तथा उसमें बड़ी संख्या में ग्रामीण जनता ने भाग लिया। यही अधिवेशन की सफलता का प्रधान चिन्ह है। जो प्रस्ताव पास हुए वे भी उच्चकोटि के और प्रभावशाली थे।

साहित्य सदन अबोहर का भव्य भवन बहुत ही सुन्दर एवँ चित्ताकर्षक है। प्रेस की इमारत भी प्रासाद के रूप में परिलक्षित होती है। एक बात में सुधार की बड़ी आवश्यकता प्रतीत होती है। वालंटियर बहुधा कर्त्तव्य-पालन में ढील करते रहते थे। इससे कभी-कभी आगन्तुकों व प्रतिनिधियों को कष्ट होना सम्भव है। इसका मुख्य कारण ट्रेनिंग का अभाव ही कह सकते हैं। आशा है अगले अधिवेशन तक यह दोष दूर हो जायगा।

जब सम्मेलन अबोहर में निमन्त्रित हुआ उसके कुछ दिन पीछे ही कई नई समस्यायें उठ खड़ी हुई थीं। सभापति के चुनाव को लेकर राष्ट्रीय लोगों में ही गहरा मत-भेद था। इस कलह से अवसरवादियों ने तथा अराष्ट्रीय व्यक्तियों ने लाभ उठाया। सरकारी अधिकारी तो ऐसे मौके की ताक में रहते हैं। इसी कारण कुछ पत्रों ने इस झगड़े को राष्ट्रीय और अराष्ट्रीय रूप में समझा। परन्तु वास्तविक बात वैसी नहीं थी। मेरे विचार से इसके भीतर एक सज्जन की अधिकार लिप्सा काम कर रही थी।

श्रद्धेय बाबू पुरुषोत्तमदास जी टण्डन के जेल से बाहर होते ही सारे झगड़े का रूप स्पष्ट हो गया। फिर वे झगड़े दब भी गए। श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू ने अन्त में अपना प्रस्ताव वापिस ही ले लिया। इससे उन झगड़ों की जड़ ही कट गई। स्वागत समिति के कुछ कार्यकर्त्ता भी इस उलझन से घबड़ा उठे थे। अबोहर में सम्मेलन होने से पञ्जाब के कुछ साहित्यिक तथा प्रान्तीय सम्मेलन के कुछ सदस्य असन्तुष्ट थे। प्रयाग के कुछ सज्जनों ने भी विघ्न-बाधाएं उपस्थित कीं, परन्तु ईश्वरेच्छा से ये सब विपत्तियां दूर हो गईं और बाधाएं टल गईं तथा सम्मेलन का अधिवेशन और चुनाव निर्विघ्न तथा कृत-कार्यता पूर्वक सम्पन्न हुआ। इसका पूरा श्रेय स्वामी केशवानन्द जी को है जिनकी तपस्या पूर्णतया सार्थक हुई। इस सफलता के लिए स्वामी केशवानन्द जी, उनके सहयोगी, अबोहर निवासी तथा उस प्रांत के कार्यकर्त्ता हिन्दी भाषियों की ओर से धन्यवाद और बधाई के पात्र हैं।

इस सम्मेलन की गणना दो-तीन सफल अधिवेशनों में की जायगी। इसका पञ्जाब पर गहरा असर पड़े बिना न रहेगा। आशा है अगले वर्ष और भी उत्तम रूप से मैंणी (लुधियाना) में सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन को पूर्ण सफलता प्राप्त होगी। अस्तु,

लाजपतिराय भवन
लाहौर
७—१—४२

भगीरथप्रसाद दीक्षित
'साहित्यरत्न'

हिन्दी साहित्य 'सम्मेलन' और—कवि 'सम्मेलन'
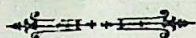
राष्ट्रीयता की दृष्टि से कांग्रेस के अनन्तर दूसरी सबसे बड़ी और प्रतिष्ठित संस्था यही हमारा अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन है। भाषा और साहित्य की दृष्टि से देखें तो भारत की यह सबसे बड़ी संस्था है। विविध प्रान्तों के प्रौढ़ साहित्यसेवी 'सम्मेलन' के वार्षिक अधिवेशनों पर बड़े उल्लास से आकर सम्मिलित होते हैं, और कार्यवाही में भाग लेते हैं। यह राष्ट्रभाषा हिंदी की सत्ता का सबसे बड़ा परिचय है।

सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन पर अनेक परिषदें इस तरह होती हैं कि धैर्यशाली तथा सशक्त महारथियों को भी थका देती हैं। विज्ञान-परिषद् में तथा दर्शन-परिषद् में तो जनता बिलकुल ही नहीं आती और इस सम्बन्ध में कुछ काम भी नहीं होता। अच्छा हो, उक्त दोनों परिषदों का अन्तर्भाव 'साहित्य-परिषद्' में ही कर दिया जाय।

इसके अतिरिक्त कुछ दिन से सम्मेलन, के साथ-साथ एक 'राष्ट्रभाषा-सम्मेलन' भी पृथक् होने लगा है। यह किस लिए? हमारा 'सम्मेलन' तो राष्ट्रभाषा सम्मेलन है ही। फिर, इस दूसरे सम्मेलन की क्या आवश्यकता? भ्रम बढ़ता है! सम्भव है, 'हिन्दुस्थानी' को राष्ट्रभाषा बनाने वालों ने इस 'राष्ट्रभाषा-सम्मेलन' की नींव डाली हो! यदि ऐसा है, तो तुरन्त इस प्रथा को तोड़ना चाहिये। कम से कम मुझे तो इसकी कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती।

यह तो हुई व्यर्थ परिषदों और सम्मेलनों की बात इससे आगे 'कवि-सम्मेलन' भी है।

निश्चय ही कवि-सम्मेलन एक प्रकार से 'भैरवी-चक्र' के रूप में परिणत हो गया है। अब वाणी में ही नहीं, इससे भी आगे अरुचिकर घटनाएँ इन कवि सम्मेलनों में होने लगी हैं। हमारे कर्णधारों को सचेष्ट होकर इसका प्रतिकार करना चाहिये। बीमारी बहुत बढ़ गई है। गन्दगी की हद हो गई है!

अबोहर में कवि-सम्मेलन पर जो कुछ हुआ, उसे देख-सुन कर राष्ट्रभाषा के भक्त काँप उठे हैं। देहरादून के वयोवृद्ध वैद्य पं० अमरनाथ शास्त्री की आँखों में आँसू मैंने वहीं देखे थे। बड़े चिंतित थे। लाहौर के पुराने और अनुभवी लेखक श्री सन्तराम बी० ए०

भी सन्तप्त थे। 'भारतीय आत्मा' राष्ट्रकवि पं० माखनलाल चतुर्वेदी की अन्तरात्मा को सबसे अधिक वेदना पहुँची थी। युवक कवि पं० सोहनलालजी द्विवेदी भी 'कवि सम्मेलन' के इस भोंड़े रूप की भर्तस्ता कर रहे थे। माननीय टण्डन जी यह सब लोगों से सुनकर अवाक् रह गये थे। प्रश्न यह है कि क्या अगले वर्ष फिर यह सब होगा ?

कवि-सम्मेलन में पधारे कवियों द्वारा एक ऐसा बिल भी स्वागत समिति को दिया गया जो ऐसी अभक्ष्य खाद्य वस्तुओं का था जिनकी स्वामी केशवानन्द जी की उस तपोभूमि में, जहाँ सिगरेट तक पीना पूर्णतः वर्जित है तथा जहाँ का वातावरण बहुत सात्विक व पवित्र है, कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। अतः श्री स्वामी जी के श्रद्धालु कार्यकर्त्ताओं ने जब इस बिल को देखा तो उन्हें आंतरिक वेदना हुई। कोई अपने पैसे से प्राइवेट रूप में कुछ खाये-पीये - किसी को क्यों एतराज होना चाहिये। किंतु एक राष्ट्रीय समारोह में, जिसका प्रबन्ध एक पवित्रात्मा साधु द्वारा हो रहा था, ऐसा बिल देना अनुचित ही था।

इन सब बातों को देखते हुए अब प्रश्न यह है कि 'कवि-सम्मेलन' का क्या हो ? मैं समझता हूँ अब इस ओर उदासीनता से काम न चलेगा। मर्ज बढ़ता जा रहा है। कवि-सम्मेलन जिस रूप में 'सम्मेलन' के साथ होता है, उसे एकदम बन्द कर देना चाहिये। 'सम्मेलन' के विधान में इसका जिक्र भी नहीं है।

हाँ, कविता एक बड़ी ऊँची चीज है। तुलसी, सूर और कबीर भी कवि थे। रवीन्द्र भी कवि थे। इनकी वाणी हमें चाहिये। 'सम्मेलन' के अवसर पर एकत्रित साहित्यिक-जन सुकवियों के मुख से कुछ सुनना चाहते हैं। उसमें विशेषता है। वह बात उनकी पुस्तक पढ़ने में कहाँ ? 'सम्मेलन' के अवसर पर दो-तीन घण्टे ऐसे निकालने चाहिएँ, जब चुने हुए समागत उत्तम कोटि के कवियों की रचनाएँ उन्हीं के मुख से लोग सुन सकें। सबको गाने-रोने का इसमें अवकाश न हो। २–३ कवियों की कविताएँ और दो-तीन काव्य-सम्बन्धी भाषण। यही 'कवि-सम्मेलन' में हो और इसका सभापतित्व खुद टण्डन जी को करना चाहिये या मुख्य सम्मेलनाध्यक्ष को, अथवा किसी दूसरे गम्भीर तथा वयोवृद्ध कवि-साहित्यिक को। इससे नियन्त्रण ठीक रहेगा और उच्छृंखलता या गन्दगी न फैलेगी। यदि ऐसा न हो सके, वृद्धजन कवि-सम्मेलन में न बैठ सकें, तो फिर इसे कतई बन्द कर देना चाहिये।

जैसा कवि-सम्मेलन मैंने ऊपर लिखा है, वह उपयुक्त होगा। जरूरी यह है कि कवि सम्मेलन की पृथक् से कोई खास व्यवस्था न

हो कवियों को मार्ग-व्यय देना बिल्कुल बन्द कर देना चाहिये। जैसे सब साहित्यिक 'सम्मेलन' में आते हैं, उसी तरह कवि भी आयेंगे। बादी छँट जायगी और मौज-बहार उड़ाने वाले 'सम्मेलन' में न जायँगे।

यह उचित भी है। साहित्य-परिषद् या विज्ञान परिषद् में जो कृतविद्य अपने-अपने गवेषणापूर्ण निबन्ध पढ़ने जाते हैं, उन्हें क्या स्वागत समिति मार्ग व्यय देती है? तब कवियों के ही कहाँ सुर्खाब के पर लगे हैं कि इन्हें डबल इंटर तथा सेकंड क्लास का किराया और भेंट दी जाय? यह दूसरे साहित्यिकों के प्रति अन्याय भी है। इसे बन्द कर देने में ही औचित्य है। साहित्यिकों में जो कवि आया करेंगे, उन्हीं की कविता हम सुन लिया करेंगे।

स्कूल-कालेजों में भी 'कवि-सम्मेलन' की बीमारी फैल गई है। अभी पिछले दिनों, अबोहर सम्मेलन से एक सप्ताह पहले, मेरठ कालेज में कवि सम्मेलन था। भाई कृष्णानन्द पन्त ने 'निर्णायक' बना कर मुझे बुला भेजा। कवि-सम्मेलनों में मैं जाता नहीं हूं; पर मेरठ कुछ काम भी था इसलिए चला गया। मार्ग-व्यय इंटर क्लास का था ही।

वहाँ छोकरों की जो लीला देखी, दंग रह गया। कालेज में शारदा नाम की लड़की भी पढ़ती है। उसका नाम कविता में लाकर नांचता दिखाई जाने लगी। वह बेचारी उठ कर अपनी सहेलियों के साथ वहाँ से चली गई। इस फूहड़पन का मैंने विरोध किया। इसका फल यह हुआ कि मुझे भी खूब बनाया उन लोगों ने। मैं सब छोड़ कर चलने लगा। तो भाई कृष्णानन्द जी ने अपना रुद्ररूप प्रकट किया और तुरन्त कवि-सम्मेलन बर्खास्त कर देने की घोषणा करदी। तब मेरी खुशामद होने लगी और फिर किसी तरह शांति कायम हुई।

इस प्रकार कवि-सम्मेलनों में शिष्टता का उल्लंघन करके हमारी सुप्रतिष्ठित बहनों का अपमान किया जाता है। कई वर्ष हुए, किसी कवि-सम्मेलन में श्री महादेवी वर्मा को ऐसा तंग किया गया था कि तब से उन्होंने कहीं जाना ही छोड़ दिया। मेरठ की श्री हामवती देवी भी ऐसी ही शिकायत कर रही थीं। इंदौर की बहन कमला देवी कवि भी कवि-सम्मेलनों की इस छीछालेदर से असन्तुष्ट हैं। इस ढङ्ग को एक दम बदल देना, कम से कम सम्मेलन के अधिकारियों का तो मुख्य काम है। इसके लिए स्वागत समिति को स्पष्ट निर्देश पहुँच जाना ही बहुत कुछ है कि किसी भी कवि का मार्ग व्यय न दिया जाय। न कोई विशेष व्यवस्था कवियों के लिए हो। इससे सांप भी मर जायगा और लाठी भी न टूटेगी।

आशा है, सम्मेलन' के अधिकारी और उसके प्राण पूज्य टण्डन जी इस ओर ध्यान देंगे। यदि ऐसा न हुआ और अगले वर्ष सिख गुरुओं के सुप्रतिष्ठित स्थान में

'सम्मेलन' के साथ 'कवि-सम्मेलन' इसी रूप में हुआ, जिस में 'सब कुछ' होता है, तो वहाँ से मार-मार कर सब साहित्यिक भगा दिये जायेंगे। भागते भी न बनेगा। स्टेशन भी वहाँ से दूर है। वह सांस्कृतिक केन्द्र है। तमाखू-सिगरेट पीना भी वे लोग बुरा समझते हैं। 'नामधारी' सिख मांस-मदिरा को बहुत बुरा समझते हैं, और घृणा करते हैं। वे बड़े सदाचारी और वीर होते हैं। वे कवियों की वैसी खुराफात कभी भी बर्दाशत न करेंगे। उनकी श्रद्धा तुरन्त घृणा के रूप में बदल जायगी और रोष उमड़ पड़ेगा। सब मजा किरकिरा हो जायगा। इस लिए, सम्मेलन वे अधिकारियों को पहले से ही सावधान रहना चाहिए।

यह इतना संक्षेप से निवेदन है। आगे 'सुधियः प्रमाणम्'।

कनखल, १५-१-४२ } किशोरीदास वाजपेयी

आदर्श-अधिवेशन

"...सम्मेलन पर हैदराबाद रियासत के किये गये प्रहार के जख्मों का भरना भी जरूरी था। इसके लिये तो हैदराबाद के परम मित्र सर सिकन्दर के पंजाब में ही उचित स्थान होना चाहिये, जहां हिन्दी को मिटाने के लिये सरकार भी लगी हुई है; वह भी कोई बड़ा नगर नहीं, गांव या गांव जैसा ही क्यों कि इस प्रान्त के सर्वे सर्वा तो अपने आपको गांव वालों का ही प्रतिनिधि समझते हैं। बड़े नगर का सम्मेलन तो उनकी दृष्टि में उनके राजनीतिक विरोधियों का एक जमघट है, उसका कोई महत्व नहीं। पर सम्मेलन हुआ गांव जैसी जगह अबोहर में। इस अप्रसिद्ध और छोटी सी जगह में दूर के रहने वाले सज्जन समझते थे उपस्थिति नहीं होगी, प्रभाव नहीं बढेगा। पर उनके ये विचार ठीक न निकले। अबोहर तथा आसपास के छोटे २ नगरों के लोगों ने तो इस सम्मेलन को सफल बनाने की पूरी कोशिश की ही, गांव वाले भी पीछे नहीं रहे।

गांव के मनुष्य ही नहीं स्त्रियां की बड़ी संख्या हर गांव से आई। जलूस की शान में बहुत बड़ा भाग गांव वालों का था। इस इलाके के साधारण किसान, हरिजन, बड़े २ प्रभावशाली जमींदारों ने सम्मेलन को सफल बनाने के लिये दिन रात एक कर दिया। प्रतिनिधियों के ही नहीं, दर्शकों तक के लिए भोजन की व्यवस्था करके गांव के प्राचीन आतिथ्य के महत्व को बढाया। जलूस और पण्डाल में उपस्थिति आशा से अधिक थी। दूर २ तक आदमी ही आदमी दीखते थे। किसानों तथा अन्य ऐसे लोगों से टिकट का कोई पैसा नहीं लिया जाता था, फिर भी टिकट की कड़ी देख रेख होने पर पण्डाल में जगह न थी।

स्वागताध्यक्ष तथा प्रधान महोदय के भाषणों तथा प्रस्तावों के समय उपस्थिति में कोई कमी नहीं हुई। दर्शन सम्मेलन, कविसम्मेलन, इत्यादि तो पहिले सम्मेलनों के साथ होते थे, पर अब तक सम्मेलन का ध्यान ग्रामों की ओर उतना नहीं गया जितना जाना चाहिये था। इस सम्मेलन के अवसर पर 'दीपक' के सम्पादक चौ० तेगराम जी के यत्न से २७ दिसम्बर की रात को ७॥ से १२ बजे तक ग्राम सम्मेलन तथा २८ को ७॥ से १०॥ बजे तक ग्राम रचनात्मक कार्य करने पर विचार हुआ। कई सज्जनों ने कार्य करने का निश्चय किया। श्री सम्पूर्णानन्द की सामयिक युक्ति से सम्मेलन रूढीवादी तथा यथार्थ वादियों के झगड़े से भी बच गया। सम्मेलन का यह अधिवेशन एक सफल ही नहीं आदर्श अधिवेशन हुआ। इसकी सफलता का बड़ा कारण है—श्री स्वामी केशवानन्द जी का त्याग और तपस्या। जिस स्थान पर स्वामी जी ने २५ वर्ष तक राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रभाषा के लिये तप किया, वहां पर अधिवेशन का सफल होना सम्मेलन तथा देश के हिन्दी प्रेमियों के सौभाग्य की बात है। आशा है इस स्थान पर की हुई तजवीजों को कार्यरूप में परिणित करने के लिये सब यत्न करेंगे ('साप्ताहिक सेवक')

८ जनवरी १९४२

हिन्दी परीक्षा मन्दिर

सम्पा० चन्द्रकान्त बाली शास्त्री प्रभाकर
श्रीराम निकेतन, मुल्तान सिटी

अपनी बात

पञ्जाब में अब हिन्दी भाषा का 'स्थान' कितना महत्वपूर्ण हो गया है, इस पर प्रकाश डालना दर्पण को दर्पण दिखाना है। यह तो हमें मानना ही पड़ेगा कि हिंदी की इस उन्नति का मूल कारण पञ्जाब की हिन्दी परीक्षाएँ हैं। इन परीक्षाओं की बदौलत लेखक, हिन्दी-प्रेमी, विद्वान, पाठक और प्रकाशकों में एक जागृति पैदा हो गई है। फिर भी इन परीक्षाओं में प्रतिवर्ष बैठने वाले छात्रों को, जिनपर पञ्जाब में हिंदी प्रचार की नींव स्थापित है, कई असुविधाएँ हैं, उनमें कुछ कमियाँ देखी जाती हैं, जिनका निवारण करना, उन छात्रों को छात्रावस्था में ही 'ठोस' हिन्दीज्ञ बनाना तथा उन्हें अधिक संख्या में फेल होने से बचाना आदि ऐसे ही कुछ और उद्देश्य सामने रख कर 'दीपक' परिवार ने 'हिन्दी-परीक्षा-मन्दिर' का विस्तृत आयोजन किया है। आशा है, छात्र इससे अधिक लाभ उठा सकें। दीपक परिवार इसे छात्रोपयोगी बनाने में किसी किसम की कमी न रहने देगा।

उक्त स्तम्भ में—परिचय, आलोचना, प्रश्न, प्रश्नोत्तर, निबन्ध, पुस्तक-संक्षेप, कठिन शब्दार्थ प्रभृति परीक्षोपयोगी 'वस्तुमात्र' आ सकेगा।

लेखकों से—निवेदन है कि इस दिशा में वे हमें अपना सहयोग प्रदान करें। अधिकारी लेखकवर्ग इस कार्य को अनुपेक्षणीय समझ कर 'हिन्दी परीक्षा मन्दिर' को अपनावेंगे ही।

प्रकाशकवर्ग—को भी चाहिए कि वे अपने उपयोगी साहित्यिक विज्ञापन एवं समालोचनार्थ साहित्य भेज कर परीक्षादित्सु छात्रों में अपने प्रकाशन का अधिकाधिक प्रचार करें। दीपक परिवार से उन्हें यथायोग्य सहयोग मिलेगा। हम चाहते हैं कि यह 'हि० प० म०' इतना सुविस्तृत, सुसङ्गठित हो जाय, जिससे पञ्जाब युनिवर्सिटी की

बोर्ड ऑफ् स्टडी—अर्थात् परीक्षा-समिति से निकट सम्बन्ध स्थापित कर गन्दे साहित्य के निवारण में समर्थ हो सके। साहित्य सदन, अबोहर की ओर से विविध विषयक पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य तो कई वर्ष से आरम्भ है ही, किन्तु छात्रों के लाभ को सामने रख कर

परीक्षोपयोगी साहित्य-प्रकाशन—का भी विचार है, जिससे छात्र स्वल्पतम मूल्य पर ठोस साहित्य प्राप्त कर अपने जीवन में धन, समय और मनःशक्ति का अपव्यय करने से बचें।

आशा है अधिक संख्या में छात्र, लेखक और प्रकाशक हमारे इस आयोजन को अपनावेंगे। इस अङ्क में सम्मेलन-सामग्री की अधिकता से केवल दो ही निबन्ध जा रहे हैं, अगले अङ्क से विशेष सामग्री प्रस्तुत रहा करेगी। —च०

भूषण परीक्षोपयोगी

हिन्दी साहित्य में आलोचना का स्थान

आलोचना गद्य का प्रमुख अंग है। चूंकि हिन्दी के जन्मकाल से लेकर रीतिकाल पर्यन्त पद्य का ही प्रचार रहा है, अतः उक्त समय में आलोचना गद्यमयी न मिल कर पद्यमयी ही प्राप्त होती है। यथा—'सूर सूर तुलसी ससी' 'और कवि गढिया नन्ददास जड़िया' इत्यादि।

गद्य का प्रचार अँगरेजी राज्य की छाया में हुआ है। अतः उस पर अँगरेजी साहित्य की छाप पड़ना अनिवार्य था। यहाँ बारीकियों में न जा कर केवल परीक्षोपयोगी

बातें ही आ सकेंगी।

आलोचना सर्वप्रथम का रूप हमें प्रेमघन श्री पं० बद्रीनारायणजी की 'आनन्द कादम्बिनी' नामक पत्रिका में मिलता है। इसके अनन्तर 'महावीरप्रसाद द्विवेदी जी' ने समालोचना—क्षेत्र में पाँव बढाया। आपका प्रमुख उद्देश्य था भाषा परिमार्जन। 'सरस्वती' के द्वारा आपने बहुत से दोषों को दूर करके आलोचना को उन्नति की ओर अग्रसर किया। आपके साथ २ 'मिश्र बंधुओं' ने भी इसको चमत्कृत करने का भरसक यत्न किया। आपका 'नवरत्न' समालोचना का अत्युत्तम ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त 'मिश्रबन्धु विनोद' नामक पुस्तक भी आपने प्रकाशित की है। इसके अनन्तर 'पद्मसिंह शर्मा' ने तुलनात्मक आलोचना की नवीन परिपाटी चलाई। आपने साहित्य में नया रूप तो अवश्य प्रचलित किया; पर साथ ही साहित्य में वाद-विवाद और पक्षपातपूर्ण क्षेत्र खड़ा कर दिया। ऐसी रचना में 'मतिराम ग्रन्थावली' की भूमिका उल्लेखनीय है। समयानुसार कृष्णविहारी साहित्य-क्षेत्र में आ डटे। इन्होंने 'देव-विहारी' नामक पुस्तक लिखी। इसके उत्तर में लाला भगवानदीन ने 'विहारी-देव' नामक पुस्तक लिखी।

इसके बाद आलोचना शैली को वर्तमान रूप में ढालने वाले 'रामचन्द्र शुक्ल जी' ने आलोचना में प्राण डाले। आपकी रचनाएँ आलोचना के उत्कृष्ट नमूने हैं। नरोत्तमदास, रामकृष्ण शुक्ल आदि ने आलोचनाएँ कीं। श्री श्यामसुन्दर जी को जनता बड़ी श्रद्धामयी दृष्टि से देखती है। पदुमलाल पुन्नालाल जी का 'विश्व साहित्य में नाटक' रामकुमार वर्मा का 'कबीर का रहस्यवाद' हाल ही में छप चुके हैं। इस प्रकार आलोचना अपना रूप समयानुसार बदलती हुई अन्त में मनुष्य की प्रतिभा की वृद्धि के साथ-साथ साहित्य के अनुशीलन में आकर कवियों को प्रोत्साहन देती हुई दिन प्रतिदिन उदय प्राप्त कर रही है।

—प्रेमलता शर्मा प्रभाकर

प्रभाकर परीक्षोपयोगी

अलंकारों की मौलिकता

कमनीय कविता कौमुदी का विकास जितना औचित्यपूर्ण एवं विस्तृत होगा, उतनी ही अलङ्कार शास्त्र की उपादेयता तथा प्रियता अधिक होगी। मानव समाज में तो एक लत सी लगी है, वह यह कि सौन्दर्य समावेश किये बिना वह वस्तु को उपादेय कोटि में ही नहीं लाता। अतएव कविता में उपादेय गुण को गुम्फित करने के लिये, तदीय कमनीयता का अविरल गति से विकास कर ही डाला। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि अलङ्कारों के अभाव से कविता का ध्येय पूरा ही नहीं होता; होता है पर उसमें सरसता की सत्ता से जितनी सर्वप्रियता चाहिये उतनी नहीं होती। अलङ्कारों की विद्यमानता से कविता के ध्येय में न तो क्षति है न ही लाभ, पर उस ध्येय की पूर्ति अनायास होती है; यही तो अलङ्कार शास्त्र की उपयोगिता है।

एक सामान्य कोटि के समाज का कथन है कि जितना जितना सभ्यता का विकास होता है, उतना कविता से घृणा का भाव उद्भासित होता है। पर यह भूल है, कविता का यह अभिप्राय नहीं कि 'छन्द के पिंजर में भाव भङ्गी विहङ्ग को बन्द कर देना।' एक कुमार भी अक्षर गिनकर संग्रहीत कर लेता है, तो वह कविता कोटि में गण्य होगा? कदापि नहीं। कविता का क्षेत्र शब्द और अर्थ की न्याँई गद्य और पद्य दोनों को सीमित करता है। अतएव अलङ्कार भी गद्य और पद्य दोनों के साझी हैं।

अब यह रहा कि अलङ्कार शास्त्र का जन्म कब और कैसे हुआ। यह लिखना अप्रासङ्गिक न होगा कि हिन्दी-साहित्य ने संस्कृत-साहित्य से ऋण ले लिया है। इस समय तो हिन्दी-साहित्य और संस्कृत-साहित्य का अन्तर ही कैसा, वह पिता और वह पुत्र। दोनों को सन्मुख रख कर समान भाव के क्षेत्र में स्थिर होकर अलङ्कार की विवेचना की जायगी कि अलङ्कारों का कब से उद्भव हुआ।

जब से साहित्य का जन्म हुआ तब से अलङ्कार भी प्रकट हुए, परन्तु अलङ्कार उस समय में सङ्कुचित एवं अविकसित थे। इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि साहित्यज्ञ अलङ्कारों की वर्तमान स्थिति की भाँति उन्हें अलङ्कार रूप में न समझते थे; अर्थात् अलङ्कारों को जैसा स्वरूप वर्तमान संसार ने दिया है वैसा स्वरूप तो पूर्वज समझ भी न पाये थे; हाँ, व्यवहार—बाह्य ज्ञान पूर्वक—अवश्य होता था।

संस्कृत-साहित्य में 'वेद' सबसे प्राचीन एवं परमात्मकृत है। वेद पुरुषकृत नहीं, अपितु परमात्मकृत है। अलङ्कारों की उपलब्धि वेदों में भी है। अलङ्कार भी अपने आधार के गुण से पुरुषकृत नहीं अपितु परमात्मकृत हैं। इनकी सत्ता यद्यपि वेदों में विद्यमान है, परन्तु पूर्वज जन केवल पाठ मात्र के आधार पर निर्वाह करके अलङ्कारत्व का ज्ञान न कर पाये। जब अर्थ ज्ञान की अपेक्षा हुई तब यास्कादि पूज्य मुनियों ने निरुक्तादि ग्रन्थों का निर्माण करके 'न इत्युपमायाम्' पाठ लिखकर अलङ्कारत्व का सूत्रपात कर डाला

यद्यपि पाणिनि मुनि ने स्वनिर्मित अष्टाध्यायी में दूसरे अध्याय के प्रथमपाद में 'उपमानानि सामान्य वचनैः' । २ । । १ । ५५ । और "उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे । २ । १ । ५६ ।" यह दो सूत्र लिख कर 'उपमा' का परिचय दिया है। परन्तु 'उपमा' शब्द चमत्कार वाचक नहीं। इसका कारण यह है कि उस समय उपमा को सामान्यप्रयोग समझा गया है जैसे—

'...पुरुष व्याघ्रः, नृसोमः, व्याघ्रादि आकृतिगणः सामान्याप्रयोगे किम्। पुरुषो व्याघ्र इव शूरः। (भट्टोजी॰)

अब यह सिद्ध हो गया कि उपमालङ्कार वेदों में है, पर उसका बोध न था, श्री यास्क महोदय से पूर्व पाणिनी पर्यन्त इसका चमत्कार के रूप में आविष्कार न हुआ।

अब रहे नैयायिक। नैयायिकों ने उपमा का स्मरण भी किया और प्रयोग भी। उन्होंने उपमा को चौथा प्रमाण भी मान लिया, जिसे 'उपमान' की मुद्रा लगी है। वे बेचारे 'अस्माकूणां नैयायिकेषाम् अर्थरि एव प्रयोजनम्; अर्थरीति कथं कर्तरी यथम्' कहने वाले सीधे-सादे अभिधा-वृत्ति की ओट रख कर काम करने वाले अलङ्कार को क्या समझें, जहाँ तक उनके मस्तिष्क ने काम किया वहाँ तक 'उपमान' का आविष्कार कर डाला। उपमान में वह रस कहाँ और वह चमत्कार कहाँ। वेदों में उपमा—

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व, सेनानीर्नः सहुरे॰ हूत एधि। हत्वाय शत्रून बिभजस्व वेद ओजो मिमानो विमृधो नुदस्व। ऋ॰ सं॰ ८३, १९, २।

दुर्मदासौ न सुरायाम। ऋ॰ स॰ ५, ७, १९, १।

वृक्षस्य नु ते पुरुहूतवयः। ऋ॰ स॰ ४, ६, १७, ३।

यहाँ पर उपमा है, इव, न, नु, चित् यह सब उपमा द्योतक हैं। इनका आविष्कार यास्क के समय में हुआ। अब यह प्रश्न रहा कि वेदों में अलङ्कार हैं कि नहीं? अलङ्कार वहाँ होते हैं जहाँ रस हो, वेदों में रस कहाँ पाओगे? हाँ, इसका उत्तर यह है—अलङ्कार चमत्कार रूप में यद्यपि न हों, अर्थ को पूर्ण तथा विस्तृत करने के लिये उपमा है अवश्य। जैसे

'मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।'

मृग का अर्थ है सिंह, भीम का अर्थ है परमात्मा। सिंह के समान परमात्मा पृथिवी एवं पहाड़ों में घूमता है; यहाँ पर रस के उपकारक अलङ्कार कोटि में उपमा नहीं है। अर्थ को पूर्ण तथा सुन्दर बनाने के लिए उपमा का व्यवहार है।

अब अच्छी तरह से ज्ञात हो गया कि अलङ्कारों की मौलिकता यास्क कृत निरुक्त ही—वेदाङ्गत्व से वेद—है। शेष रहे दूसरे अलङ्कार, उनकी मौलिकता उपमा में है। रामायण और महाभारत के समय में ६ और ७ अलङ्कार प्रयुक्त हैं। उनमें से रूपक, पूर्णोपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति और कारणमाला इत्यादि इने-गिने अलङ्कार हैं। उपमा को लेकर शिष्ट अलङ्कार आविष्कृत किये गये। उपमा में उपमेय उपमान मुख्य हैं। जहाँ पर उपमान को उपमेय की कोटि में एवं कक्षा में लाया गया तो रूपक अलङ्कार बन गया।

इसी प्रकार शेष अलङ्कार—उपमान और उपमेय की

खींचातानी से रबड़ की भाँति मस्तिष्क के बल से खिंच गये। इस अधिकार का प्रचार प्रथमतः भरत, वाल्मीकि और व्यास की कृपा से हुआ, विस्तार कवियों की दया से।

ज्यों-ज्यों सभ्यता का, मस्तिष्क का प्रभाव बढता गया त्यों-त्यों अलङ्कार अपना स्थान पकड़ते गये। पहले उपमा थी, तदनन्तर अन्य अलङ्कारों की स्थिति क्रमशः एक दो तीन होती गई।

इन अलङ्कारों के काल के विकास की गणना सेठ अर्जुनदास केड़िया ने कैसी सुन्दर की है।

शताब्दि			अलं० सं०
नवीं	...	...	७३
दसवीं	...	...	३१
ग्यारहवीं	...	...	७२
बारहवीं	...	...	६७
तेरहवीं	...	...	१०४
चौदहवीं	...	...	८४
अठारहवीं	...	...	७०
बीसवीं	...	...	१००

यह तो निर्भ्रान्त विषय है कि कविता एक कामिनी है। उसका शरीर अर्थ और शब्द से बना है। शौर्य, औदार्य्यादि गुणों की न्याईं माधुर्य, प्रसाद एवं ओज गुण हैं। भुजा की भान्ति रीतियाँ हैं, काणत्व, खञ्जत्व के तुल्य अश्लीलतादि दोष हैं। कनकवलय और कुण्डल की तरह अलङ्कार हैं। जितनी सौन्दर्योपासना बढती जायगी उतनी भूषण परिपाटी परिणत होती जायगी। कविता के भूषण बढते और परिणत होते जा रहे हैं। पहले उपमा एक थी, क्रमशः बढते-बढते सौ (१००) हो गई हैं। जब से अलङ्कार प्रारम्भ हुए तब ही इनकी मौलिकता थी। पीछे काम सहल हो गया। अलङ्कारों का चमत्कार क्रमपूर्वक बढ ही रहा है। —चन्द्रकान्त बाली शास्त्री प्रभाकर

अबोहर साहित्य सम्मेलन का नेपथ्य

दर्शकों ने सम्मेलन के प्रत्येक कार्य को रङ्ग-मञ्च पर देखा, पर मुझे इसके नेपथ्य भवन में प्रविष्ट होने का भी अधिकार प्राप्त हुआ था। इस अपूर्व सम्मेलन के नाटक की रचना का श्रीगणेश कहीं से आरम्भ क्यों न हुआ हो, पर मेरा इसके साथ सम्बन्ध उस दिन से शुरू होता है जिस दिन जाट स्कूल संगरिया के किसी कार्य-विशेष से अगस्त में स्वामी श्री केशवानन्द जी बीकानेर पधारे थे। बातों ही बातों में स्वामी जी महाराज ने कहा कि सम्भवतः इस वर्ष सम्मेलन अबोहर में भी हो सकता है। उस समय मुझे यह एक साधारण सी सम्भावना प्रतीत हुई, पर उसके कुछ दिनों बाद ही अकस्मात् स्वामी जी के फिर दर्शन हुए और उन्हों ने कहा कि स्थायी-समिति की ओर से सम्मेलन का अबोहर में होना ही निश्चित हो चुका है और अब मैं उसके लिए आज ही अबोहर जा रहा हूँ। आपने यह भी कहा कि यह सम्मेलन पञ्जाब से ही नहीं अपितु बीकानेर राज्य से भी पूरा सम्बध रखता है।

अस्तु, अबोहर में सम्मेलन की तैयारी के लिए जो हुआ सो हुआ, परन्तु एक सप्ताह के भीतर ही प्रत्येक समाचार-पत्र में सम्मेलन का नाम चमकने लगा। इधर प्रायः प्रत्येक गन्य-मान्य व्यक्ति के पास साहित्य सदन से पत्र पर पत्र और सूचनाओं की वर्षा होने लगी।

कालेज का शरद्कालीन अवकाश होने ही वाला था। मैं भी यथाशक्य सम्मेलन की सेवा का वचन दे चुका था। अतः प्रचारार्थ पञ्जाब में जाने की तैयारी कर ही रहा था कि उस दिन ही श्रीयुत नेगराम जी एवं श्रीयुत टीकमदास जी सम्मेलन का डेपुटेशन लेकर बीकानेर आ पहुँचे। आप लोगों की लगन, अथक परिश्रम और सबसे मिलने का कार्यक्रम श्लघनीय था। बीकानेर में प्रचार कर आप जोधपुर की ओर चले गये। मैं भी ३ नवम्बर को साहित्य सदन जा पहुँचा। इस समय स्वागत समिति कार्यालय में श्रीयुत वंशीधर जी तथा उनके सहयोगी रात दिन केवल पत्रों के लिखने और भेजने में ही व्यस्त थे। स्वागत समिति के कार्य की योजनाओं को जान व अपना भ्रमण का कार्यक्रम निश्चित कर मैं ४ नवम्बर को भावलनगर की ओर चला गया।

पश्चिमी पञ्जाब की यात्रा में मुझे हिन्दी की तत्प्रान्तीय दशा का अपूर्व अनुभव हुआ। बहावलपुर रियासत में प्रायः सर्वत्र हिन्दुओं में हिन्दी के प्रति श्रद्धा मिली। परन्तु उनके कार्य में अनेक कठिनाइयें हैं। मैं बहावलनगर, चिश्तियाँ एवँ बहावलपुर में गया तथा देखा कि वहाँ के कतिपय महानुभाव हिन्दी प्रचार के लिए अच्छा उद्योग कर रहे हैं। शुजाबाद, मुलतान, झंग, सरगोधा आदि में

घूमता हुआ मैं लायलपुर पहुंचा। यहाँ की हिन्दीप्रचारिणी सभा के कार्यकर्ताओं में सम्मेलन के लिये प्रशंसनीय उत्साह था। वहाँ से लाहौर आया। स्वागताध्यक्ष, उपसम्मेलनों के स्वागताध्यक्ष व अन्य साहित्यिकों से मिलता हुआ अमृतसर होकर मैं २१ नवम्बर को बीकानेर आ पहुंचा। तब तक सम्मेलन कार्यालय से कोई लेख या प्रदर्शिनी में रखने योग्य कोई सामग्री न आने की सूचना ही आती रही। इधर कुछ अखबारों में साहित्य दृष्टि से अबोहर को शून्य सिद्ध करने की भी चर्चा चल पड़ी। किन्तु बीकानेर की साहित्यिक मण्डली में सम्मेलन के लिये अच्छी उमङ्ग थी। उसका निश्चय था कि साहित्य सम्बन्धी जिस अङ्ग की वहाँ कमी होगी उसकी पूर्ति हम अवश्य कर देंगे।

अस्तु, होते होते सम्मेलन का समय भी आ पहुंचा। इधर हमारे कालेज की बड़े दिनों की छुट्टी भी शुरू हो गई। हनुमानगढ़ जङ्क्शन, सङ्गरिया ठहरता हुआ मैं २३ दिसम्बर को साहित्य सदन फिर जा पहुँचा। साहित्य सदन में प्रविष्ट होते ही देखा कि चारों ओर कार्यकर्त्ता विभिन्न कार्यों में मधुमक्खी की तरह व्यस्त हैं। माननीय श्री नरदेवजी शास्त्री के दर्शन हुए। अतः मुझे पूरा विश्वास हो गया कि अब सम्मेलन के कार्य में स्वाभाविक साङ्गोपाङ्गता आ जायगी। पर जहाँ सम्मेलन होने वाला था वहाँ अब तक मण्डप का कोई चिन्ह भी नहीं था, प्रदर्शिनी का कोई स्थान नियत नहीं था और ठहरने के स्थानों में भी कुछ प्रबन्ध नहीं हुआ था। २७ को सम्मेलन था, किन्तु २४ दिसम्बर भी इधर-उधर की भाग दौड़ में ही बीता। पर सायं समय ६ बजते ही अबोहर की मण्डली एवं चलता-फिरता पुस्तकालय की चलती-फिरती प्रगति दृष्टिगोचर होने लगी। सब लोग कार्य में जुट गये और डेढ दिन में ही बिछाने का सामान आया, भोजनालयों का प्रबन्ध व प्रदर्शिनी की योजना हुई और टिकटों पर छापें लगने लगीं। जाट स्कूल संगरिया भी आ पहुंचा। ग्राम-भोजनालय भी आरम्भ हो गया। यह सब कुछ हुआ, पर शामियाना अब तक भी नहीं आया। प्रातः सम्मेलन होगा। हम हैरान थे। किन्तु रात भर में ही यह एक नगर का नगर जादू के खेल की तरह खड़ा कर दिया गया। प्रतिनिधियों की मण्डली पहुँचने लगी और अबोहर का प्रत्येक सेवक भी अब आगे आने लगा। श्री ताराचन्द के भोजनालय में भी गर्मागर्म पूरियों की सुगन्ध और आवाज आने लगी, ग्राम-भोजनालय में ठट्ठ के ठट्ठ देहाती भोजन करने लगे। जलूस निकला और सम्मेलन के इतिहास में अपूर्व निकला। प्रदर्शिनी का उद्घाटन श्री अमरनाथ जी काक ने किया। भीड़ को रोकने के लिये जाट स्कूल संगरिया को अपनी पूरी ताकत का परिचय देना पड़ा। मध्याह्न के समय मण्डप की शोभा अपूर्व थी। महिलाओं, ग्रामीणों और विद्वानों का सागर उमड़ रहा था। स्वागताध्यक्ष एवँ सभापति महोदय के भाषण ने अपना पूरा रङ्ग जमा दिया। रात को ग्राम सम्मेलन का दृश्य भी अद्वितीय था। इस सम्मेलन ने अबोहर सम्मेलन को एक ऐतिहासिक सम्मेलन बना दिया। इसके बाद होने वाले सम्मेलनों का विवरण मन्त्री की रिपोर्ट में पढ़ें। मेरा तो यही कहना है कि इस सम्मेलन का प्रत्येक उपसम्मेलन अपनी विशेषता के साथ हुआ। अनेक भाषण स्मरणीय थे। विषयनिर्वाचिनी समिति का विचार-सङ्घर्ष भी अद्वितीय था।

ठण्डी रात, लाउडस्पीकरों का गर्जन, ठाठ का गायन, विद्वानों की भाषण-चातुरी और कवियों की सरस कविताओं ने इस सम्मेलन को हर तरह से सरसा दिया। इसकी सबसे अधिक विशेषता यह हुई कि उसने पञ्जाब में हिन्दी के पैरों को पूरी तरह से जमा दिया और बीकानेर तथा पञ्जाब का एक अपूर्व सम्मेलन कराया। बातें एक दो नहीं हजारों हैं, उन सबको इस छोटे से लेख में नहीं लिख सकता, पर इतना अवश्य कह सकता हूँ कि यह सम्मेलन हुआ और एक जादू का सा खेल हुआ। सिक्ख बन्धुओं के सहयोग के विषय में फिर लिखूंगा।

बीकानेर
२०–१–४२

—विद्याधर शास्त्री एम० ए०

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तीसवें अधिवेशन में

स्वीकृत प्रस्ताव

१—यह सम्मेलन डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर, डा० गंगानाथ झा, पं० रामचन्द्र शुक्ल, राजकवि श्री तांबे, प्रो० श्रीनिवास चतुर्वेदी, श्री सी० वाई० चिन्तामणि, पं० रमाशङ्कर शुक्ल 'हृदय', श्रीमती अमृत शेरगिल, डा० अवध उपाध्याय, श्री अज़ीमबेग चग़ताई, श्री केसरीसिंह बारहट और श्री दूधनाथ उपाध्याय के देहावसान पर हार्दिक दुःख तथा उनके कुटुम्बियों के साथ सहानुभूति और समवेदना प्रकट करता है।

—सभापति द्वारा

२—यह सम्मेलन सब हिन्दी प्रेमी संस्थाओं से अनुरोध करता है कि हिन्दी को पहली श्रेणी से ही माध्यम बनाने के मार्ग में जो-जो कठिनाइयां हैं उनको दूर करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करें।

प्रस्तावक—श्री नरदेव शास्त्री, समर्थक—श्री रामधन शर्मा

३—फिरोजपुर, रोहतक, हिसार, करनाल, गुड़गांवां इत्यादि जिलों के अधिकांश गांव में ऐसी आबादी है जिसकी मातृभाषा हिन्दी है, जिनका हिसाब-किताब, न्यौता, पत्र-व्यवहार आदि कार्य ही नहीं, महकमा माल के सब कागज भी देवनागरी लिपि में लिखे जाते रहे हैं, तथा जो अपने बच्चों को हिन्दी द्वारा ही प्रारम्भिक शिक्षा दिलाना चाहते हैं। किन्तु मांग आने पर भी डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की ओर से हिन्दी के अध्यापकों का प्रबन्ध नहीं होता है। अतः या तो उन्हें अपने बच्चों को स्कूल से उठाना पड़ता है या लाचार होकर उर्दू पढानी पड़ती है। यह सम्मेलन पञ्जाब सरकार तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों से अनुरोध करता है कि वह इस इलाके में हिन्दी की शिक्षा देने का अपने स्कूलों में पूरा प्रबन्ध करें।

प्रस्तावक—श्री स्वामी केशवानन्द, समर्थक—श्री हरदेवसहाय

४—यह सम्मेलन पञ्जाब सरकार की उस हिन्दी घातक नीति की घोर निन्दा करता है जिसका स्पष्ट उदाहरण इस बात से मिलता है कि सारे प्रान्त में एक भी सरकारी स्कूल नहीं है जिसमें हिन्दी-माध्यम द्वारा शिक्षा का प्रबन्ध हो और जिसके फलस्वरूप लोकल बोर्डों के उन स्कूलों की संख्या भी जिनमें ऐसा प्रबन्ध है, अत्यन्त अल्प है। अतः यह सम्मेलन पञ्जाब सरकार से बलपूर्वक अनुरोध करता है कि हिन्दी को उर्दू के बराबर उसी प्रकार सुविधाएँ दी जायँ जैसे कि युक्तप्रान्त, बिहार और मध्यप्रान्त में उर्दू को दी जा रही हैं, और जहाँ हिन्दी माध्यम की मांग हो वहाँ वर्तमान स्कूलों में हिन्दी माध्यम का प्रबन्ध किया जाय और प्रारम्भिक शिक्षा के लिये हिन्दी माध्यम के प्राइमरी स्कूल खोले जायँ।

प्रस्तावक—श्री लाला बृजलाल, समर्थक—श्री देवचन्द्र नारंग

५—यह सम्मेलन पञ्जाब सरकार के शिक्षा-विभाग के जारी किये हुये नए सिलेबस में से सातवीं तथा आठवीं श्रेणियों में से द्वितीय भाषा को निकाल देने का घोर विरोध करता है, क्योंकि इससे हिन्दी-शिक्षा की भारी हानि होगी।

इस सम्मेलन की दृष्टि में इस अनुचित हस्तक्षेप से अल्प संख्यकों के संस्कृति और भाषा सम्बन्धी अधिकार पर आघात होता है और पञ्जाब महामन्त्री की उन स्पष्ट प्रतिज्ञाओं और घोषणाओं का उल्लङ्घन होता है जिनमें उन्होंने प्रान्त की भाषाओं को पूर्ववत् स्थिर रखने का आश्वासन दिया था।

यह सम्मेलन प्रान्त के गवर्नर और भारत के वायसराय से सानुरोध प्रार्थना करता है कि वे अल्प-संख्यकों के प्रति इस अन्याय का प्रतिकार करें।

प्रस्तावक—श्री भगवद्दत्त, समर्थक—श्रीमती सीतादेवी

६—यह सम्मेलन पञ्जाब शिक्षा-विभाग के जुलाई १९३८ के सरक्युलर लेटर नं० १८४२३ एक्स को, जिसका आशय यह है कि प्रथम भाषा ही फाइनल परीक्षा के लिए माध्यम मानी जाय, हिंदी भाषा की दृष्टि से हानिकारक समझता है और शिक्षा-विभाग से बलपूर्वक अनुरोध करता है कि या तो वह इस सरक्युलर को वापिस ले या जिन विद्यार्थियों की प्रथम भाषा हिन्दी है उनके लिए हिन्दी-माध्यम द्वारा शिक्षा का प्रबन्ध करे।

प्रस्तावक—श्री लाला वृजलाल, समर्थक—श्री देवचन्द्र नारंग

७—यह सम्मेलन पञ्जाब विश्व-विद्यालय की उस नीति का विरोध करता है जिसके अनुसार देशी-भाषाओं की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के लिये हिन्दी के परीक्षार्थियों को उर्दू के परीक्षार्थियो की अपेक्षा अधिक अंक पाना आवश्यक है, और विश्व-विद्यालय के सञ्चालकों से अनुरोध करता है कि इस पक्षपातपूर्ण भेद को शीघ्र ही दूर करें।

प्रस्तावक—श्री डा० परशुराम, समर्थक—श्रीमती सावित्री देवी

८—यह सम्मेलन उन संस्थाओं को बधाई देता है जिन्होंने अपने स्कूलों में हिन्दी को माध्यम बनाया है या हिन्दी पढाने का उचित प्रबन्ध किया है, और अन्य संस्थाओं से भी आशा रखता है कि वे हिन्दी-शिक्षण का शीघ्र समुचित प्रबन्ध करेंगी।

सभापति द्वारा

९—इस सम्मेलन की यह सम्मति है कि पञ्जाब में उर्दू के साथ-साथ हिन्दी को भी कचहरियों में समान स्थान मिलना चाहिये या पञ्जाबी ही प्रान्त की एक मात्र कचहरी की भाषा स्वीकार की जाय और वह नागरी, फारसी और गुरुमुखी लिपियों में से किसी एक में लिखी जा सके। प्रस्तावक—श्री अमरनाथ काक, समर्थक—श्री रामगोपाल, अनुमोदक—श्री सन्त निधानसिंह, प्रधान, नामधारी दरबार

१०—अपने पिछले अधिवेशन में सम्मेलन ने रेडियो विभाग का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था कि उसकी भाषा नीति हिन्दी की दृष्टि से पक्षपातमय और हानिकर है और इस सम्बन्ध में आवश्यक सुधार करने के लिये कुछ सुझाव भी बतलाये थे। सम्मेलन को यह बात विदित है कि पिछले बारह महीनों में रेडियो की भाषा में कुछ सुधार हुआ है परन्तु यह परिवर्तन अपूर्ण और अपर्याप्त है। सम्मेलन का दृढ मत है कि जब तक रेडियो विभाग के उच्च अधिकारी और विशेषकर वाइसराय की कार्य-समिति के अधिकारापन्न सदस्य, उन

उपायों को जिन्हें सम्मेलन ने पूना अधिवेशन में सुझाया था, कार्यान्वित न करेंगे तब तक सन्तोषप्रद सुधार न हो सकेगा।'

प्रस्तावक—श्री रामधन शर्मा, समर्थक—श्री ललिता प्रसाद शुक्ल

११—सम्मेलन को यह जानकर आश्चर्य हुआ है कि प्रायः पञ्जाब प्रान्त के डाकखानों में नागरी में लिखे मनीआर्डर और रजिस्टरी किए हुए पत्र नहीं लिए जाते और ऐसे साधारण पत्र जिन पर नागरी में पता लिखा होता है, डेडलेटर आफिस में भेज दिए जाते हैं जिससे हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का व्यवहार करने वाली जनता को बहुत कष्ट होता है। सम्मेलन सरकार के डाक-विभाग से अनुरोध करता है कि डाकखानों में शीघ्र ही नागरी जानने वाले कर्मचारियों को नियुक्त कर इस असुविधा को दूर करे और प्रान्तीय और केन्द्रीय व्यवस्थापक-सभाओं के हिन्दी-प्रेमी सदस्यों से आशा करता है कि वह इस विषय में आवश्यक प्रयत्न करेंगे।

प्रस्तावक—श्री डा० परशुराम, समर्थक—श्री देवचन्द्र नारंग

१२—यह सम्मेलन उन रेलवे अधिकारियों से जिनके स्टेशनों, टिकटों तथा सूचनाओं में हिन्दी का प्रयोग नहीं हो रहा है, अनुरोध करता है कि इन स्थानों में हिन्दी के प्रयोग का भी प्रबन्ध करें।

प्रस्तावक—श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्री, समर्थक—श्री किशोरीदास वाजपेयी

१३—यह सम्मेलन अपने काशी अधिवेशन के निम्नलिखित प्रस्ताव को दुहराता है और इस बात पर दुःख प्रकट करता है कि अब तक इस सम्बन्ध में कोई भी सन्तोषजनक परिवर्तन नहीं हुआ है—

'जिन-जिन प्रान्तों में हिन्दी बोली जाती है वहाँ अदालतों, कचहरियों और अर्द्ध-सरकारी संस्थाओं के व्यवहार की भाषा इतने कठिन अरबी और फारसी के शब्दों से भरी होती है कि सामान्य जनता के समझने योग्य वह नहीं होती। सम्मेलन ने कई बार जनता की इस असुविधा पर ध्यान दिलाया है किन्तु अब तक इन संस्थाओं की भाषा सर्वसाधारण के समझने योग्य नहीं होती। सम्मेलन फिर से हिन्दीभाषी प्रान्तों की सरकारों तथा अर्द्ध-सरकारी संस्थाओं से साग्रह अनुरोध करता है कि अपने दफ़्तरों और कचहरियों की भाषा का सुधार करें और नकली भाषा को छोड़ कर सबके समझने के लायक सहल भाषा का प्रयोग जारी करें।'

सम्मेलन देशी राज्यों की सरकारों से भी अनुरोध करता है कि अपने न्यायालयों की भाषा के सम्बन्ध में इस प्रस्ताव में दिये हुए सुझाव का अनुसरण करें।

प्रस्तावक—श्री रामनाथ शर्मा
समर्थक—श्री रामधन शर्मा

१४—मध्य भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के निम्नलिखित प्रस्ताव का यह सम्मेलन समर्थन करता है और मध्यभारत और राजस्थान के नरेशों और धनिकों से निवेदन करता है कि उसकी पूर्ति में सहायता दें।

'यह सम्मेलन मध्यभारत के नरेशों और सम्पन्न सज्जनों से निवेदन करता है कि मध्यभारत में एक हिन्दी विश्वविद्यालय स्थापित करें और उसमें पूर्णतया सहयोग और सहायता दें एवं शिक्षा परिषद् को यह अधिकार देता है कि वह इस बात को कार्यान्वित करे।'

साथ ही सम्मेलन विशेष रीति से श्रीमंत इन्दौर नरेश का ध्यान इन्दौर के प्रस्तावित हिंदी विश्वविद्यालय की योजना की ओर दिलाता है, जिसकी सफलता की कामना उसने अपने मन्तव्य द्वारा अपने इन्दौर के २४ वें अधिवेशन में की थी और निवेदन करता है कि उस योजना अथवा उसके किसी संशोधित रूप की

स्वीकृति और इन्दौर राज्य में हिंदी द्वारा उच्च-शिक्षा की स्थापना में अब अधिक विलम्ब न होने दें।

प्रस्ताविका—श्रीमती कमलाबाई किबे, समर्थक—श्री. रामनाथ शर्मा

१५—सम्मेलन को यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि दिल्ली विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने अपनी नई योजना में हिन्दी को आनर्स श्रेणी में स्थान देने का निश्चय किया है, सम्मेलन उनको बधाई देता है।

सभापति द्वारा

१६—(अ) यह सम्मेलन हिन्दी की संस्थाओं, साहित्य सेवियों एवं हिन्दी प्रेमी सज्जनों से अनुरोध करता है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग द्वारा स्थापित संग्रहालय के लिए हिन्दी की हस्तलिखित पुस्तकों एवं ऐतिहासिक अन्य सामग्री चित्र, मूर्ति, पत्रादि के संग्रह में सहायता दें और इस शुभकार्य में पूर्ण सहयोग देकर अपने कर्तव्य का पालन करें।

(ब) यह सम्मेलन प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार से अनुरोध करता है कि वह ब्रिटिश म्यूजियम की भाँति हिन्दी पत्रों की एक-एक प्रति संग्रहालय को भेज दिया करे।

प्रस्ताव—श्रीभगीरथ-प्रसाद दीक्षित, समर्थक—श्री भगवद्दत्त

१७—बीकानेर के श्री रामगोपाल मोहता के पत्र का नीचे लिखा हुआ अँश पढ़ा गया—

'मेरा विचार अद्वैत-वेदान्त के आधार पर हिन्दी भाषा में लिखी हुई 'आचार-शास्त्र'' (Ethics) की नवीन और खोजपूर्ण मौलिक पुस्तक पर एक पुरस्कार रु० ५००) का देने का है। इस पुरस्कार का नाम 'गोपाल पुरस्कार' होगा।''

निश्चय हुआ कि सम्मेलन श्री रामगोपाल मोहता के प्रस्ताव को स्वीकार करता है और इस दान के लिए उन्हें धन्यवाद देता है। किन्तु इस विषय में ब्योरे की बातों के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है, स्थायी समिति पत्र-व्यवहार द्वारा उनका निश्चय करे।

सभापति द्वारा

१८—आगामी अधिवेशन के लिये श्री भैनी साहब (जिला लुधियाना, पञ्जाब) के नामधारी दरबार के मन्त्री श्री इन्द्रसिंह चक्रवर्ती ने उक्त दरबार की ओर से निमंत्रण दिया। निमंत्रण स्वीकृत हुआ।

सभापति द्वारा

१९—सम्मेलन उन प्रांतीय सरकारों, देशी राज्यों और शिक्षा संस्थाओं को धन्यवाद देता है जिन्होंने उसकी परीक्षाओं को सरकारी परीक्षाओं के बराबर स्वीकार किया है और आशा करता है कि शीघ्र ही सभी विश्वविद्यालय भी इन परीक्षाओं को इसी प्रकार स्वीकृति प्रदान करेंगे। सम्मेलन अन्य प्रांतीय सरकारों और देशी राज्यों से अनुरोध करता है कि वह भी सम्मेलन की परीक्षाओं को दूसरे विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं के बराबर मान लें और सम्मेलन के स्नातकों को वह सब सुविधाएँ दें जो साधारणतः ग्रेजुएटों को प्राप्त होती हैं।

प्रस्ताव - श्री ललिताप्रसाद शुक्ल, समर्थक—श्री उदयनारायण तिवारी

२०—यह सम्मेलन समस्त हिन्दी भाषियों, और विशेषतः व्यापारियों से अनुरोध करता है कि वह अपना सारा पत्र-व्यवहार और बही खाता, आदि का काम नागरी लिपि में किया करें। सम्मेलन सभी सार्व-

देशिक संस्थाओं का ध्यान, चाहे वह किसी भी धार्मिक मत या राजनीतिक विचार का प्रतिपादन करती हों, इस ओर आकर्षित करता है कि यदि वह अपने विचारों को जनता तक ठीक-ठीक पहुंचाना चाहती हैं तो उनको राष्ट्रभाषा हिन्दी और नागरी लिपि का व्यवहार करना उचित है और आशा करता है कि सभी प्रांतीय सम्मेलन तथा हिन्दी सेवी संस्थाएँ इस सम्बन्ध में समुचित प्रयत्न करेंगी। प्रस्तावक—श्री देवदत्त शास्त्री समर्थक—श्री शं० दा० चितले

२१—पञ्जाब में, नाभा, पटियाला, जींद, कपूरथला और फरीदकोट सिख रियासतें हैं। गुरुग्रन्थ साहब तथा सिख गुरुओं की कृतियों में हिंदी भाषा का स्थान महत्व का है। किंतु इन राज्यों की सरकार की ओर से हिन्दी को प्रोत्साहन आज कल नहीं मिल रहा है।

यह सम्मेलन उक्त रियासतों से साग्रह अनुरोध करता है कि वे अपने शिक्षा विभाग में तथा शासन के व्यवहारिक कार्यों में हिन्दी को उचित स्थान दें। प्रस्तावक—श्री अमरनाथ काक, समर्थक—श्री स्वामी इन्द्रदास

२२—हैदराबाद राज्य ने हिंदी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन को रोककर राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति अन्याय किया है। यह सम्मेलन इस रुकावट पर खेद प्रकट करता है और वहां के अधिकारियों से अपनी आज्ञा को वापिस लेने का अनुरोध करता है। प्रस्तावक—श्री स० वा० कुलकर्णी समर्थक श्री रामधन शर्मा

२३—यह सम्मेलन काश्मीर सरकार से प्रार्थना करता है कि इस नई शिक्षा सम्बन्धी आज्ञा में १५ प्रतिशत का बन्धन हटा दिया जाय और सादा उर्दू के स्थान पर इसका नाम सरल हिन्दी रखा जाय। और हिन्दी आठवीं श्रेणी तक अनिवार्य करदी जाय। प्रस्ताविका—श्री शान्ता कुमारी समर्थक—श्री अमरनाथ काक

२४—यह सम्मेलन काश्मीर सरकार से प्रार्थना करता है कि शिक्षा-विभाग के उच्चपदाधिकारियों में से एक ऐसा अधिकारी अवश्य होना चाहिए जो हिन्दी-उर्दू दोनों भाषाओं को अच्छी तरह जानता हो; क्योंकि वर्तमान समय में काश्मीर शिक्षा-विभाग के प्रबन्धकों में एक भी हिन्दी जानने वाला नहीं है।

प्रस्ताविका—श्री शान्ताकुमारी, समर्थक—श्री देवचन्द्र नारंग

२५—साहित्य सम्मेलन का यह अधिवेशन रियासत बहावलपुर के स्कूलों के इन्स्पेक्टर के १५-१-४० के सरकुलर को, जिसके द्वारा रियासत में हिन्दी तथा संस्कृत का मिडिल श्रेणियों में एक साथ अध्ययन असम्भव बना दिया गया है, विरोध करता है और शिक्षा मंत्री से प्रार्थना करता है कि पूर्ववत् हिंदी संस्कृत ऐच्छिक विषय निश्चित किये जायं। प्रस्तावक—श्री बलभद्रदास सर्राफ, समर्थक—श्री प्रो० हंसराज

२६—सम्मेलन को यह जानकर अत्यन्त क्षोभ हुआ है कि भारतीय सिपाहियों को शिक्षित करने के लिए भारत सरकार की चलाई हुई योजना में राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के नाम पर 'रोमन उर्दू' इस सम्मिलित नाम से भाषा 'उर्दू' तथा लिपि 'रोमन' पढाई जाती है। यह सम्मेलन इस का घोर विरोध करता है और भारत सरकार को सम्मति देता है कि वह अपनी इस व्यवस्था को राष्ट्र-विघातक होने के कारण बदल दे। प्रस्तावक—श्री गंगाधर इंदूरकर समर्थक—श्री शं० दा० चितले

२७—इस सम्मेलन की सम्मति है कि विक्रम की द्विसहस्राब्दी के अवसर को, जो लगभग सवा वर्ष में आने वाला है, सारे देश में इस प्रकार मानना चाहिये जिससे कि इसका महत्व और भारतीय संस्कृति और साहित्य के विकास में इसका स्थान लोगों के हृदयों पर अङ्कित हो जावे। इसलिए सम्मेलन अपनी स्थायी

समिति को आदेश देता है कि एक उपयुक्त योजना तैयार करे और इस बात का प्रबन्ध करे कि उसके अनुसार यह सम्मेलन की ओर से प्रयाग में तथा इसकी सम्बद्ध संस्थाओं की ओर से दूसरे स्थानों में समुचित प्रकार से मनाया जाय। प्रस्तावक—श्री प्रो० विद्याधर शास्त्री, समर्थक—पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित

२९—हिन्दी और हिंदुस्तानी शब्दों के प्रयोग के बारे में हिंदी साहित्य सम्मेलन और उसकी समितियों की, विशेष कर उसकी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की क्या नीति है इस विषय में कुछ भ्रम उपस्थित हुआ है और कथनोपकथन प्रकाशित हुए हैं; इसलिये अपनी नीति का स्पष्टीकरण करने के हेतु सम्मेलन निम्नलिखित घोषणा करता है—(१) प्रारम्भ से ही सम्मेलन ने अपनी भाषा, और राष्ट्रभाषा को हिन्दी कहा है और उस भाषा तथा नागरीलिपि की उन्नति और प्रचार ही उसका उद्देश्य रहा है। द्वितीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में जो पहली नियमावली प्रयोग में स्वीकृत हुई उसमें तथा उसके पश्चात् अब तक जितने भी संशोधन उस नियमावली में हुए हैं, उन सबसे यह प्रकट है कि सम्मेलन की भाषा का नाम हिंदी है—यद्यपि साहित्यिक अथवा प्रचार की दृष्टि से, और स्थानों की विभिन्नता के कारण, उसके रूप में शब्दावली का कुछ अन्तर होना स्वाभाविक है। (२) वास्तव में उर्दू भी हिन्दी से उत्पन्न अरबी-फारसी-मिश्रित एक रूप है। हिंदी शब्द के भीतर ऐतिहासिक दृष्टि से उर्दू का समावेश है, किन्तु उर्दू की साहित्यिक शैली, जो थोड़े से आदमियों में सीमित है, हिन्दी से इस समय इतनी विभिन्न हो गई है कि उसकी पृथक् स्थिति सम्मेलन स्वीकार करता है और हिन्दी की शैली से भिन्न मानता है। (३) 'हिन्दुस्थानी' या 'हिंदुस्तानी' शब्द का प्रयोग मुख्यकर इसलिये हुआ करता है कि वह देशी-शब्द व्यवहार से प्रभावित हिंदी शैली तथा अरबी-फारसी-शब्द व्यवहार से प्रभावित उर्दू शैली दोनों का एक शब्द से एक समय में निर्देश करे। कांग्रेस, हिंदुस्तानी ऐकेडेमी, और कुछ गवर्नमेंट विभागों में इसका प्रयोग हुआ है और होता है। कुछ लोग इस शब्द का प्रयोग उस प्रकार की भाषा के लिये भी करते हैं जिसमें हिंदी और उर्दू शैलियों का मिश्रण हो। इस प्रकार निश्चित अर्थों में उर्दू और हिन्दुस्तानी शब्दों का प्रचलन है। इस विषय में सम्मेलन का कोई विरोध नहीं है, किंतु सम्मेलन साहित्यिक और राष्ट्रीय दोनों दृष्टियों से, अपने और अपनी समितियों के काम में हिंदी शैली का और उसके लिये हिंदी शब्द का ही व्यवहार और प्रचार करता है। (४) राष्ट्रीय सजगता के विस्तार और राष्ट्रीय भावना के उत्थान के साथ-साथ हिंदी का राष्ट्रीय रूप, दिन-दिन विकसित हो रहा है। भिन्न-भिन्न प्रांतों से आये हुए तथा भिन्न-भिन्न प्रभावों से उत्पादित नये शब्दों का भी उसमें धीरे-धीरे स्वभावतः समावेश होगा। जीवित, क्रियाशील तथा हिंदी की सार्वभौमक प्रतिनिधि-संस्था के कर्त्तव्य पालन में सम्मेलन इस विकास का आवाहन और स्वागत करता है। (५) राष्ट्र-भाषा होने के कारण प्राचीन समय से हिन्दी सब प्रांतीय भाषाओं की बड़ी बहिन है, उसके और उसकी छोटी बहनों के स्वरूपों में माता का अमर सौंदर्य झलकता है। बहिनें एक दूसरे के रूप में अपना रूप भी देखती हैं। उनका आपस का प्रेम स्वाभाविक है। बड़ी बहिन छोटी बहनों के अधिकार सुरक्षित रखती है। उसका अपना घर सब बहिनों के लिए खुला है और उसके घर में ही सब बहिनों को आपस में मिलने और मिलकर राष्ट्रोपासना की सुविधा है। सच्ची राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित सब देश-भक्तों से सम्मेलन अनुरोध करता है कि राष्ट्रीय उत्थान, और एकीकरण में भाषा की शक्ति का अनुभव कर वे राष्ट्र भाषा हिंदी के प्रयोग और प्रचार में निष्ठा और दृढ़ता से संलग्न हों। प्रस्तावक—श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, समर्थक—श्री सम्पूर्णानन्द, श्री ग० र० वैशम्पायन, श्री नरदेव शास्त्री, श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्री, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीमती कमलाबाईकिबे, श्री अमरनाथ काक, श्री परशुराम, श्री अमरनाथ वैद्य, श्री चन्द्रदेव शर्मा, श्री म० तु० कुलकर्णी, श्रीमतीसानूताई काले।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का तीसवाँ

अबोहर-अधिवेशन

संक्षिप्त विवरण

अबोहर में ही क्यों?—हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी कांग्रेस की भांति अखिल भारतीय संस्था है जिसका वार्षिक अधिवेशन प्रति वर्ष देश के भिन्न-भिन्न स्थानों पर होता है। गत वर्ष सम्मेलन का २९ वाँ अधिवेशन बड़े दिन पर पूना में हुआ था। उसमें अगले वर्ष के लिये हैदराबाद-दक्षिण की हिन्दी जनता की ओर से निमन्त्रण आया था जिसे सम्मेलन ने स्वीकार कर लिया था। अत: इस वर्ष सम्मेलन का ३० वाँ अधिवेशन दिसम्बर में हैदराबाद-दक्षिण में होना था। किन्तु, इस शुद्ध साहित्यिक तथा राष्ट्र भाषा प्रचारक संस्था के अधिवेशन पर भी निजाम-सरकार ने रोक लगाकर अपनी अदूरदर्शिता तथा संकुचित मनोवृत्ति का परिचय दिया। लगभग ६ महीने तक सम्मेलन की ओर से निजाम सरकार से इस सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार होता रहा, किन्तु उसने सम्मेलन पर से रोकाज्ञा न हटाई। अन्ततः जुलाई में सम्मेलन की स्थायी-समिति बैठी तथा अन्य किसी स्थान पर अधिवेशन करने का विचार हुआ। स्थायी-समिति के कई सदस्यों का यह भी आग्रह था कि आगामी अधिवेशन हो तो हैदराबाद या उसकी सीमा पर ही हो, अन्यथा विरोध-स्वरूप किया ही न जावे। किन्तु सम्मेलन का मन्त्री-मण्डल इस नीति के पक्ष में न था। अस्तु, किसी दूसरे ही स्थान पर सम्मेलन हो, इस विचार के अनुसार मन्त्री-मण्डल के कई सदस्य चाहते थे कि इसबार अधिवेशन पञ्जाब में सम्मेलन की अपनी संस्था—साहित्य सदन अबोहर में ही हो जिससे इस संस्था से सम्मेलन के सदस्य, प्रतिनिधि, पदाधिकारी आदि सभी परिचित हो जावें। दूसरे, पञ्जाब में भी हिन्दी के मार्ग में निजाम राज्य से कम अड़चनें नहीं हैं, इस कारण भी सम्मेलन द्वारा प्रचारकी यहाँ आवश्यकता है। अस्तु, श्री स्वामी केशवानन्द जी की ओर से आगामी अधिवेशन के लिए निमन्त्रण दे दिया गया जिसे स्थायी-समिति की २५ अगस्त की बैठक में स्वीकार किया गया। इस प्रकार, जहाँ अन्य अधिवेशनों को पूरा वर्ष भर तैयारी के लिए मिलता था, वहाँ अबोहर को केवल ४ मास ही मिले थे। वास्तव में, सम्मेलन के कार्यकर्त्ताओं को विश्वास था कि श्री स्वामी केशवानन्द जी जैसे कर्मठ व्यक्ति ही इतने थोड़े समय में अधिवेशन को सफल बना सकेंगे। अतः वे सब अबोहर की ओर आकर्षित थे।

स्वागत-समिति का संगठन—इस अल्पकाल में ही अधिवेशन को पूर्णतः सफल बनाने की धारणा करके कार्यारम्भ किया गया। ५ सितम्बर को अबोहर के सभी प्रमुख कार्य कर्त्ताओं की, जिसमें साहित्य सदन, कांग्रेस, आर्य-समाज, स० ध० सभा, महावीर दल, हिन्दुसभा आदि अबोहर की सार्वजनिक संस्थाओं के प्रतिनिधि थे, एक बैठक हुई तथा स्वागत-समिति बनाई गई। बाद में प्रमुख स्वागताध्यक्ष, परिषदों व उपसम्मेलनों के स्वागताध्यक्षों व मन्त्रियों के रूप में फाजिल्का, फीरोजपुर, लाहौर, लायलपुर आदि स्थानों के प्रमुख व्यक्तियों तथा साहित्यकों

का भी सहयोग प्राप्त किया गया। सिख भाइयों ने भी पूरे उत्साह से स्वागत-समिति के प्रत्येक कार्य में हाथ बँटाया।

प्रचार—स्वागत-समिति का संगठन होने के बाद सम्मेलन का सन्देश पञ्जाब की जनता तक पहुँचने तथा धन-संग्रह के लिए प्रचार-कार्य आरम्भ हो गया तथा कार्यकर्त्ताओं ने बाहर भ्रमण करना आरम्भ कर दिया। अबोहर के साथ लगते राजस्थान के बीकानेर प्रदेश को भी स्वागत-समिति ने अपने कार्य-क्षेत्र में ले लिया तथा बीकानेर के प्रमुख शहरों तथा नागौर, जोधपुर तक पहुँच कर सम्मेलन का सन्देश दिया गया। पञ्जाब में रावलपिंडी पेशावर, सरगोधा, लायलपुर, झंग, मुलतान, बहावलपुर, मिंटगुमरी, अमृतसर, जालन्धर, लुधियाना, अम्बाला, रोहतक, करनाल, हिसारादि सभी जिलों में कार्यकर्ताओं ने कई बार भ्रमण किया। लाहौर तो स्वागत-समिति के कार्य का केन्द्र-स्थान रहा ही। लायलपुर के हिन्दी-प्रेमियों ने अपने समीपस्थ शहरों का दौरा करके सम्मेलन के लिये प्रचार किया। महिला-सम्मेलन के प्रचारार्थ प्रमुख स्त्रियों ने भी अनेकों स्थानों का भ्रमण किया।

भ्रमण के अलावा प्रचार-कार्य में डाक-विभाग, विज्ञापनों तथा समाचार-पत्रों का भी सहारा लिया गया। समय की कमी के कारण, हिन्दी संसार तक सम्मेलन की सूचनाएँ पहुँचाने के लिए पत्र-व्यवहार का अत्यधिक कार्य हुआ जिसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि स्वागत-समिति की ओर से लगभग ७ हजार पत्र डाक में डाले गये। अबोहर से बाहर के कई सम्मेलनों के मन्त्रियों तथा स्वागताध्यक्षों ने अपने अपने स्थानों से जो सैंकड़ों पत्र डाले, उनकी संख्या अलग है। स्वागत-समिति की ओर से लगभग पचास प्रकार के विज्ञापन व रसीदें, लैटर-फार्म आदि लगभग ५० हजार छपे। स्वागत-समिति के निर्माण के बाद सम्मेलन सम्बन्धी सूचनाएँ सैंकड़ों बार देशभर के सभी भाषाओं के पत्रों में छपीं। इन सब बातों से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि स्वागत-समिति ने ३॥ मास के थोड़े समय में कितना कार्य किया। अतः प्रचार की दृष्टि से अबोहर-अधिवेशन को भारी सफलता मिली।

धन-संग्रह—स्वागत-समिति ने प्रचार-कार्य ही नहीं, धन-संग्रह के लिए भी इस थोड़े समय में विशेष प्रयत्न किया। संसार की इस डाँवाडोल स्थिति तथा युद्ध के इस सङ्कट-काल में जब कि मँहगी तथा युद्ध के चन्दों व करों से जनता बड़ी आर्थिक कठिनाइयों में से गुजर रही है, फिर इस इलाके में कई वर्षों के अकाल! ये सब प्रतिकूलताएँ होते हुए भी कार्यकर्त्ताओं ने बड़े हौसले से धन-संग्रह का कार्य किया। अबोहर के आस-पास के लगभग सभी ग्रामों, मण्डियों तथा शहरों की हिन्दी प्रेमी जनता ने उदारता से सहायता दी। स्वागत-समिति के डेपूटेशनों ने बीकानेर राज्य व बहावलपुर राज्य तथा इस इलाके की मण्डियों व सुदूर शहरों से स्वागत समिति के सदस्य बनाए। फलतः ३ मास में ही इतनी कठिनाइयों के बावजूद भी स्वागत-समिति ने लगभग ग्यारह हजार रुपया संग्रह किया जिससे अधिवेशन का न केवल यह भारी खर्च ही पूरा हुआ बल्कि कुछ रुपया बच भी गया। अतः आर्थिक दृष्टि से भी अबोहर सम्मेलन सफल रहा।

कार्यकर्त्ता—इतने थोड़े समय में जो यह भारी कार्य आशा से अधिक सफल हुआ, उसका श्रेय उन सैंकड़ों कार्यकर्त्ताओं को है जो रात दिन एक करके काम करते रहे। अबोहर, समीपस्थ गाँवों व मण्डियों के अलावा फाजिल्का, फीरोजपुर, लाहौर, भिवानी आदि ही नहीं बीकानेर तथा ज्वालापुर तक से विद्वान् आकर इस कार्य में जुटे थे। जाट स्कूल संगरिया, (बीकानेर) के अध्यापकों व विद्यार्थियों ने, जिनकी संख्या लगभग ८० थी, ८ दिन तक बहुत सेवा-कार्य किया। इसके अलावा महावीर दल, हिन्दु युवक दल, हिन्दुवीर-दल, अकाली-दल तथा ग्रामीण कार्यकर्त्ताओं, स्त्री स्वयंसेविकाओं व कन्या पाठशाला की छात्राओं-अध्यापिकाओं आदि सैंकड़ों स्वयं सेवक व स्वयं सेविकाओं ने भी कार्य किया।

म्युनिसिपल कमेटी का सहयोग—अबोहर-अधिवेशन की तैयारी में म्यु० कमेटी अबोहर से बड़ा सहयोग मिला। म्यु० कमेटी के प्रधान, मेम्बर, कर्मचारी आदि सबने अपना समय दिया; पण्डाल के लिए स्कूल का मैदान, प्रतिनिधियों के ठहरने को स्कूल की इमारतें, छोटा स्कूल, बोर्डिङ्ग, रेस्ट हाउस आदि दिया, सामान दिया तथा सफाई, छिड़कावादि का पण्डाल व पास के स्थानों में प्रबन्ध किया। आरजी तौर से नल व बिजली लगवाने के प्रबन्ध में सहयोग दिया।

अबोहर शहर व समीपस्थ गाँव वालों के बल पर तो यह महान् कार्य हुआ ही कि जिन्होंने अपना अमूल्य समय दिया, धन दिया, सामान दिया। स्त्रियों की ओर से भी बराबर हर प्रकार का सहयोग मिलता रहा है।

इतने अधिक व्यक्तियों संस्थाओं तथा कार्यकर्त्ताओं के सहयोग से ही अधिवेशन की अल्प समय में विशाल पैमाने पर तैयारी हो सकी है।

इस प्रकार पूर्ण तैयारी के बाद अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का तीसवां अधिवेशन अबोहर (पञ्जाब) में शनिवार, १२ पौष सं० १९९८ से मङ्गलवार, १५ पौष सं० १९९८ तक (ता० २७ दिसम्बर १९४१ से ३० दिसम्बर १९४१ तक) समारोह पूर्वक मनाया गया। बहुत से प्रतिनिधि तथा साहित्यिक २६ ता० को ही प्रातः तथा सायंकाल की गाडियों से पहुंचे थे, किन्तु २७ ता० को प्रातः की गाड़ी से मनोनीत सभापति श्रीमान् पं० अमरनाथ झा तथा अधिकांश प्रतिनिधि पधारे। हजारों की संख्या में एकत्र अबोहर तथा इलाके की जनता ने सभापति जी तथा प्रतिनिधियों का रेलवे स्टेशन पर स्वागत किया।

सभापति का जलूस—२७ दिसम्बर १९४१ को प्रातः स्टेशन से निकालने की भारी तैयारियां की गई थीं जिसे देखने के लिए इलाके भर के कई हजार नर-नारी पहुँचे थे। जलूस का कार्य क्रम इस प्रकार बनाया गया था—सबसे आगे एक घुड़सवार था जो मार्ग-निदर्शन करता हुआ चलता था। उसके पीछे १५ सजे हुए घुड़सवार थे। उसके पीछे एक ऊँट पर दो धौंसे बजते जा रहे थे। फिर १५ अच्छे सजे ऊँटों का जत्था पँक्त बाँधकर चल रहा था। उसके पीछे २० वर्दीधारी अकालियों का जत्था कृपाणों से सुसज्जित चल रहा था। उनके पीछे जाट स्कूल सङ्गरिया के २५ विद्यार्थी बैण्ड बजा रहे थे, जिनके पीछे ५० सुसज्जित महावीरदल के सैनिक चल रहे थे। बाद में हिन्दुयुवक दल का जत्था वर्दियों में सजाया था। सबसे पीछे हिंदुवीरदल के ४० वर्दी धारी युवकों का जत्था हिंदी विषयक उद्बोधक गीत गाता जा रहा था। इनके पीछे सभापति महोदय की फूलों से सज्जित बग्घी थी जिसके पीछे बैलों का रथ, तांगे, मोटर आदि थीं। मार्ग के दोनों ओर नर-नारी पक्तियाँ बांधे खड़े थे। बाजार में सुंदर दरवाजे बने थे, दुकानें बन्दनवारों से सजी थीं। मार्ग साफ सुथरे किये गये थे। मण्डी का भ्रमण करता हुआ जलूस ११ बजे साहित्य सदन के सामने समाप्त हुआ जहाँ सभापति जी को पुनः स्वागत किया गया।

प्रदर्शिनी साहित्य सदन के सुसज्जित विशाल हाल में प्रदर्शिनी का आयोजन किया गया था। ठीक ११॥ बजे काशमीर असेम्बली के उप प्रधान तथा पञ्जाब प्रांतीय सम्मेलन के सभापति श्री पं० अमरनाथ काक एडवोकेट ने प्रदर्शिनी का उद्घाटन सहस्त्रों की संख्या में उपस्थित जनता के सामने किया तथा संक्षिप्त से भाषण में साहित्यिक प्रदर्शिनी तथा उसमें एकत्रित प्राचीन सामग्री का महत्त्व बतलाया। प्रदर्शिनी में हिंदी, संस्कृत, गुरुमुखी की सैंकड़ों प्राचीन, अलभ्य पृथ्वीराज रासो जैसी हस्तलिखित पुस्तकें, पुराने दस्तावेज, हुँडियाँ, चिट्ठियाँ, ताम्रपत्र, भोजपत्र, व ताड़ पत्र पर लिखित पुस्तकें, देवनागरी लिखावट के उत्तम, अद्भुत नमूने, प्राचीन सिक्के, चित्र, अनेकों देशों के नये-पुराने टिकटों का अलबम सिक्कों के चित्र, हिंदी के आधुनिक प्रकाशित पत्र व पत्रिकाएँ, हस्तलिखित पत्र, उत्तमोत्तम नव-प्रकाशित ग्रन्थ, अक्षर-विज्ञान सँबँधी-

साहित्य, सीमांत से प्राप्त १३॥ सौ वर्ष पुरानी मूर्तियाँ तथा ठीकरियाँ, तक्षशिला, नालन्दा, हड़प्पा, मोहे न जोदेरो, लँका आदि की पुरातत्त्व खोज से प्राप्त वस्तुओं के चित्र, कशमीर का बहुमूल्य शाल, कमल-मधु केसर, जीरा, हाथ का बना कागज, कागज की संदूकची, पेपरमासी, लकड़ी की नक्कासी का सामान आदि सामग्री, विहार का लाख का सामान व साहित्य आदि प्रदर्शिनी की वस्तुएँ पेशावर शांति निकेतन, दारजिलिङ्ग, बङ्गलोर, मैसूर, कानपुर, जोधपुर, नागौर, बहावलपुर, बीकानेर, रतनगढ आदि देश के भिन्न-भिन्न स्थानों से सँग्रह की गई थीं। इसके अलावा, विभिन्न प्रांतों की सरकारों द्वारा चालू की गई दस्तकारियों व घरेलु दस्तकारियों के सैंकड़ों नमूने, देश के ऐतिहासिक तथा महत्वपूर्ण स्थानों के चित्र, प्राचीन तथा अर्वाचीन महापुरुषों के चित्र, उत्तमोत्तम पशुओं के चित्र तथा शरीर की नाड़ियाँ, अङ्ग-प्रत्यङ्ग दिखाने वाले बड़े-बड़े चित्र। यह सब सामग्री शीशे की अलमारियों में आकर्षक ढङ्ग से सजायी गयी थी। इस प्रकार यह प्रदर्शिनी अपने ढङ्ग की अद्भुत थी। ५ दिन तक जनता भारी संख्या में इसे देखती रहती थी।

पण्डाल—साहित्य सदन के सामने म्युनिसिपल हाई स्कूल के विशाल मैदान में, जो चारों ओर से हरे-भरे वृक्षों तथा अलियों की पंक्तियों से घिरा था, सुरम्य स्थान पर एक बड़ा पण्डाल बनाया गया था जिसका विस्तार १५० × १५० फीट था। उत्तर की ओर मध्य में बड़ा मँच बना था जिस पर सम्मानित अतिथि, साहित्यिकों तथा नेताओं के बैठने का प्रबन्ध था। प्रतिनिधियों स्वागत-समिति सदस्यों, दर्शकों, महिलाओं आदि के बैठने के अलग अलग स्थान नियुक्त किए गए थे। पण्डाल में चारों ओर पुष्प, वन्दनवार तथा चुने हुए सुभाषित पद लगे थे। सारा पण्डाल रङ्ग-बिरङ्गी बिजली की रोशनी से जगमगाता था। पण्डाल के कोने कोने तक वक्ताओं की आवाज पहुंचाने के लिए 'लाउडस्पीकर' का भी प्रबन्ध था। पण्डाल के सामने बाजार लगा था जिसमें, दूध-चाय, पूरी-मिठाई की दुकानों के अलावा पुस्तकों तथा खद्दर की भी दुकानें थीं। पास ही श्री राजवैद्य बूटाराम वर्मा का दातव्य औषधालय खुला था। पण्डाल के एक ओर पेशाब-घर—स्त्री पुरुषों के लिए अलग-अलग बने थे। उत्तर की ओर महावीर दल का कैम्प तथा लङ्गर था। पश्चिम की ओर वस्तु-भण्डार, हिंदू युवक दल आदि के कैंम्प थे। इस सुविशाल पण्डाल में १० हजार आदमियों के बैठने का प्रबन्ध था जो कि कार्यवाही आरंभ होने के समय ठसाठस भर जाता था।

प्रतिनिधियों को ठहराना—प्रतिनिधियों के ठहरने के लिए साहित्य सदन के सब भवनों के अलावा हाईस्कूल की विशाल इमारत, प्राइमरी स्कूल, आर्य-समाज, हाईस्कूल का बोर्डिङ्ग, तथा जैन धर्मशाला में प्रबँध किया गया था। महिलाओं के लिए आर्य कन्या पाठशाला में प्रबँध किया गया था। प्रतिनिधियों की सुविधा के लिए नहाने को गर्म पानी, नीचे बिछाने को दरी, चटाइयों आदि का प्रबँध था। सब स्थानों में रात को पहरे का प्रबँध था।

बिजली, पानी का प्रबन्ध—पण्डाल, भोजनालयों तथा हाईस्कूल में आरजी तौर से बिजली की रोशनी का प्रबँध किया गया था। वाटरवर्क्स से आरजी तौर पर पानी के नलके भी पण्डाल तथा भोजनालय तक लगाए गए थे। कुएँ से ताजा पानी निकालने के लिए हर समय ४–५ आदमी रहते थे। जमीन के दो नलके भी लगे थे तथा श्री दयाराम मोतीराम की ओर से दो स्थानों पर प्याऊ लगी थी।

भोजन प्रबन्ध—स्वागत समिति ने अधिवेशन पर भोजन का विशाल प्रबँध किया था तथा प्रतिनिधियों व अभ्यागत साहित्यिकों ही नहीं, बाहर से आये दर्शकों, स्वागत समिति के समस्त सदस्यों तथा ग्रामीणों को निःशुल्क भोजन दिया था। सम्मेलन के अवसर पर ७ भोजनालय—लंगर चल रहे थे जिनमें लगभग २॥ हजार मनुष्य प्रति समय भोजन करते थे। इनमें से ५ लंगर तो

स्वागत समिति की ओर से थे तथा २ स्वतँत्र।

१—स्वागत समिति भोजनालय—जिसमें अभ्यागत प्रतिनिधि, साहित्यिक तथा स्वागत सदस्य भोजन करते थे। इसमें सादी रोटी के अलावा पूरी, चावल, आदि का भी प्रबँध था।

२—चलता पुस्तकालय भोजनालय—ग्रामीणों के ही प्रयत्न से सम्मेलन देखने आने वाले समस्त ग्रामीणों के लिए खुला था जिसका समस्त खर्च स्वागत समिति को साहित्य सदन की चलता पुस्तकालय कमेटी ने गाँवों से एकत्र करके दिया था।

३—बिशनोई भोजनालय—इसका खर्च भी इलाके के बिशनोइयों ने स्वागत समिति को दिया था तथा इसमें गाँवों से आये बिशनोइयों के लिए भोजन का प्रबन्ध था।

४—सिख भोजनालय—सम्मेलन पर आये सिखों को भोजन खिलाने के लिए स्वागत समिति की ओर से सिखों ने इसका प्रबन्ध किया था।

५—आर्य कन्या पाठशाला में—महिला प्रतिनिधियों के ठहरने का तथा भोजन का प्रबन्ध स्वागत समिति की ओर से किया गया था।

६—महाबीरदल भोजनालय—महाबीरदल ने अपने लगभग सौ स्वयँ सेवकों के लिए, जो सम्मेलन में सेवा-कार्य करते थे, अपने व्यय से अपने कैम्प में लंगर खोला था।

७—नामधारी सिख भोजनालय—नामधारी सिखों के गुरु श्री प्रतापसिंह जी महाराज अपने सौ से अधिक अनुयायियों के साथ सम्मेलन पर पधारे थे तथा अपना लँगर स्वतँत्र खोला था।

इस प्रकार, इस सम्मेलन पर स्वागत समिति की ओर से जितने व्यक्तियों को भोजन खिलाया गया, शायद ही किसी पहले अधिवेशन पर ऐसा हुआ हो। श्री स्वामी केशवानन्द जी की यही इच्छा थी कि सम्मेलन देखने की इच्छा से बाहर से आया कोई भी व्यक्ति भोजन बिना न रहे। उपरोक्त सब भोजनालयों में घी आदि भोजन सामग्री ताजा और शुद्ध थी।

बीबी निहालकोर—गाँव दानेवाला के स्व० सरदार बूटासिंह की धर्मपत्नी ने इस पवित्र अवसर पर सम्मेलन देखने आये समस्त सज्जनों को एक समय का भोजन देने का भार अपने ऊपर लिया था। आपने बड़ी श्रद्धा से घी, आटा, दालादि, सब भोजन-सामग्री अपने घर ही बहुत शुद्धता तथा पवित्रता से अपने हाथ से तैयार की थी तथा सम्मेलन से महीनों पहले से ही इस कार्य में लगी रही। फिर सब सामान बैलगाड़ी में रखकर श्री स्वामी केशवानन्द जी की भेंट किया। इतना ही नहीं इस अवसर पर आपने साहित्य सदन में पानी का नल लगाने के लिए २ सौ रुपए भी दिये। बीबी निहाकोर की श्रद्धा-भक्ति सराहनीय है। आप जैसे उदार हृदय सेवकों के सहयोग से ही श्री स्वामी केशवानन्द जी इतना बड़ा कार्य सफलता पूर्वक कर सके।

अभ्यागत विद्वान्—इस अधिवेशन पर देश के कोने-कोने से सैंकड़ों साहित्यिक तथा विद्वान् पधारे थे जिनमें से प्रमुख हैं—माननीय श्री बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, श्री बाबू सम्पूर्णानन्द, श्री काका कालेलकर, श्री अमरनाथ काक, श्री माखनलाल चतुर्वेदी श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री जैनेन्द्रकुमार, श्रीमन्नारायण, श्री जगन्नाथ-प्रसाद शुक्ल, श्री आनन्द कौशल्यायन, श्रीमती कमलाबाई किबे, श्री रामनाथलाल 'सुमन' श्री नरदेव शास्त्री, श्री ललिताप्रसाद शुक्ल, श्री किशोरीदास बाजपेयी, श्री ज्योति-प्रसाद निर्मल, श्री उदयनारायण तिवारी आदि। इस अधिवेशन पर बङ्गाल, बिहार, युक्तप्रान्त, मध्यभारत, दक्षिण भारत, बम्बई, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्तों तथा राजपूताना, कश्मीर, हैदराबाद, इन्दौर, बीकानेर, ग्वालियर, जोधपुर, उदयपुर, बहावलपुर, पटियाला, नाभा, मण्डी, चम्बा आदि राज्यों से प्रतिनिधि पधारे थे। पञ्जाब के लगभग सभी जिलों से 'हिन्दी-प्रेमी' पधारे थे तथा आस पास के इलाके के तो प्रत्येक गाँव तथा मण्डी व कस्बे से जनता आई थी।

अधिवेशन की पहली बैठक—२७ ता० को २ बजे दोपहर बाद अधिवेशन आरंभ हुआ। यद्यपि प्रवेश टिकटों द्वारा था, फिर भी समय से पहिले ही पण्डाल दर्शकों से भर गया था। कार्यवाही आरंभ होने के समय पण्डाल का कोना-कोना जन-समूह से भरा था। उस समय की उपस्थिति ८–९ हजार की थी। महिलाएँ भी भारी संख्या में उपस्थित थीं। मञ्च नेताओं, विद्वानों तथा प्रतिष्ठित अभ्यागतों से भरा था। अधिवेशन का कार्य सुश्री कमला देवी के वन्दे मातरम् गान से आरंभ हुआ। इसके बाद में कविवर उदयशङ्कर भट्ट द्वारा रचित 'स्वागत-गान' जाट स्कूल सङ्गरिया के विद्यार्थियों ने सुमधुर स्वर में गाया, तत्पश्चात् श्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा (अमृतधारा) ने अपना स्वागताध्यक्ष भाषण, जो इसी अङ्क में अन्यत्र छपा है, पढ़कर सुनाया। श्री सम्पूर्णानंद जी पिछले वर्ष जेल में होने के कारण सभापतित्व कार्य संचालन के लिए उपस्थित नहीं हो सके। अतः श्री ठाकुरदत्त शर्मा ने प्रस्ताव किया कि इस समय वे आसन ग्रहण करें। श्री सम्पूर्णानन्द जी ने आसन ग्रहण करते हुए कहा—पर साल में जेल चला गया, हिन्दी की सेवा इसीलिए कर न सका। जैसा टेढा समय उस समय था वैसा ही आज भी है। आपने जो पं० अमरनाथ झा को सभापति चुना है उन्हें हिन्दी के साथ ही दूसरे देशों की भाषाओं का भी पूर्ण ज्ञान है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अब राष्ट्रभाषा का झगड़ा मिट जावेगा और हिन्दी को वह स्थान पूर्ण रूप से प्राप्त होगा। अस्तु, श्री सम्पूर्णानन्द जी ने प्रस्ताव पेश किया कि श्री पं० अमरनाथ झा सभापति का आसन ग्रहण कर कार्य-सञ्चालन करें। श्री स्वामी केशवानन्द जी ने प्रस्ताव का अनुमोदन किया। माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने झा साहब की सेवाओं का उल्लेख करते हुए आपको इस पद के लिए सर्वथा योग्य बतलाया। श्री अमरनाथ काक तथा श्रीमती कमलाबाई किबे ने भी प्रस्ताव का समर्थन किया। श्री झा साहब ने करतल-ध्वनि के मध्य सभापति का आसन ग्रहण किया।

शुभ-सन्देश—देश भर से उन साहित्यिकों, राष्ट्र-भाषा प्रेमियों तथा नेताओं ने, जो इच्छा रखते हुए भी विशेष कार्यवश सम्मेलन पर न पहुंच सके, अपनी अनुपस्थिति के लिए खेद प्रकट करते हुए अधिवेशन की सफलता के लिए शुभ सन्देश भेजे। स्थानापन्न प्रधान मन्त्री ने उन्हें सार रूप में पढ़कर सुनाया। उनमें से कुछ चुने हुए सन्देश यहाँ दिये जाते हैं:—

१—मैं अधिवेशन की सफलता चाहता हूं, मुझे इस बात का हर्ष है कि इस वर्ष यह अधिवेशन पञ्जाब में हो रहा है, आप के सामने कई जटिल प्रश्न आवेंगे। ···हिन्दी का क्षेत्र निरन्तर विकास पा रहा है और राष्ट्र-भाषा के नाते सब लोगों की दृष्टि सम्मेलन की ओर रहती है। मुझे भरोसा है कि सम्मेलन के प्रस्तावों से हिन्दी साहित्य और राष्ट्रीयता को लाभ पहुंचेगा।

—गोविन्दवल्लभ पंत भू० पू० प्रधान-मन्त्री, यू० पी०

२—मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रोफेसर अमरनाथ झा की अध्यक्षता में सम्मेलन को पूर्ण सफलता मिलेगी।

—एम० एस० अणे

३—मुझे विश्वास है कि सम्मेलन सफलता के साथ संपन्न होगा।

—जमनालाल बजाज, वरधा

४—हिन्दी साहित्य सम्मेलन का यह अधिवेशन पंचनदों की पवित्र भूमि में सफल ही नहीं, संस्मरणीय भी हो।

—मैथलीशरण गुप्त, चिरगाँव, झाँसी

५—प्रो० अमरनाथ जी झा भारतवर्ष के माने हुए विद्वान् और हिन्दी के समर्थक हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि उनके सभापतित्व में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इस अधिवेशन को पूर्ण सफलता मिलेगी।

—डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, अजमेर

६—मेरी कामना है कि सम्मेलन सब प्रकार से सफल हो।

—अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी, कलकत्ता

७—सम्मेलन की सर्वाङ्ग सफलता चाहता हूं, हिन्दी के विकास पर भारत की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक मुक्ति है।

—कन्हैयालाल मुन्शी, बम्बई

८—सम्मेलन की सफलता के लिए आन्तरिक मनोकामना रखता हूं, सम्मेलन का अधिवेशन ऐसे प्रान्त में हो रहा है जहां अब तक हिन्दी साहित्य का प्रवेश सीमित रूप में ही हो सका है, आशा और भरोसा रखता हूं कि आप लोगों का उत्साह यथेष्ट फल प्रदान करेगा और हिन्दी साहित्य का प्रचार उत्तरोत्तर पञ्जाब जैसे प्रान्त में भी बढ़ता जायगा।

—अनुग्रह नारायण, पटना

९—हिन्दी सारे देश की जबान बन सकती है।

—भंजूराम गांधी, डेरा इस्माइलखां सीमाप्रांत

१०—पञ्जाब तथा सम्पूर्ण भारतवर्ष में संस्कृत-निष्ठ हिन्दी का प्रचार हो, यही मेरी भगवान से प्रार्थना है।

—सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला

११—मेरी मङ्गल कामना है कि अबोहर का सम्मेलन सफल हो और उसके द्वारा शुद्ध हिन्दी का प्रचार भारत के कोने-कोने में हो सके।

—विजयेन्द्र सूरि, लशकर

१२—सम्मेलन की पूर्ण सफलता चाहता हूं।

—बसन्तलाल मुरारका, कलकत्ता

१३—मुझे आशा है कि यह अधिवेशन महत्वपूर्ण तथा उपयोगी सिद्ध होगा। आज कल हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी के विषय में विवाद चल रहा है, उस पर भी सन्तोषजनक पथ-प्रदर्शन होगा। ···देश के इस संकट काल में मातृभाषा हिन्दी के पुजारी अपने कर्तव्य का समुचित पालन करें, यही भगवान से प्रार्थना है। —पद्मपतसिंहानिया, कानपुर

तत्पश्चात् सभापति महोदय ने राष्ट्रभाषा हिन्दी की मौजूदा स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुये एक विद्वतापूर्ण, लम्बा भाषण दिया (उसका सारांश इसी अंक में छपा है) और सूर्यास्त पर प्रथम बैठक समाप्त हुई।

ग्राम-सम्मेलन— साहित्य सदन के आरम्भकाल से ही ग्रामीणों का इससे विशेष सम्पर्क रहा है तथा वे इसके प्रत्येक कार्य में सहयोग देते रहे हैं। साहित्य सम्मेलन के इस अधिवेशन को सफल बनाने में भी ग्रामीणों ने भारी सहायता दी तथा सैंकड़ों ग्रामों से हजारों की संख्या में ग्रामीण जनता सम्मेलन पर पहुँची। साहित्य सम्मेलन के गम्भीर विषयों को ग्रामीण भलिभाँति नहीं समझ सकते थे, तथा दर्शन, विज्ञान आदि परिषदों में तो उनके समझ में आने योग्य शायद ही कुछ हो। अतः सम्मेलन के अवसर पर हुए अन्य सम्मेलनों के साथ—ग्रामीण जनता के लाभार्थ २७ ता० की रात को 'ग्राम-सम्मेलन' भी रखा गया। सौभाग्य से ग्राम सम्मेलन के लिए ऐसे तपे हुए, खरे ग्राम-सेवक सभापति मिले जिन्होंने अपना जीवन ही ग्रामीणों की सेवा में खपा दिया। हिसार के प्रमुख कार्यकर्ता श्री ला० हरदेवसहाय सम्पादक 'सेवक' के सभापतित्व में ७॥ बजे रात से ग्राम-सम्मेलन आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम श्री म० रघुवरदयाल जी के भजनोंपदेश हुए। उसके बाद में सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री पृथ्वीसिंह 'बेधड़क' के जोशीले भजनों ने जनता को बहुत प्रभावित किया।

यद्यपि पण्डाल से बाहर विषय निर्वाचिनी समिति का यह समय था, किन्तु श्रीयुत् बाबू सम्पूर्णानन्द जी तथा माननीय पुरुषोत्तमदास जी टण्डन ने भी थोड़ा-थोड़ा समय देकर ग्राम-सम्मेलन में भाषण दिये तथा ग्रामीणों को स्वावलम्बी व निर्भय बनने तथा आजादी के सच्चे पुजारी बनने का सन्देश दिया। इस समय रात्रि के शांत वातावरण में पण्डाल श्रोताओं से खचाखच भरा था। जनता ने अपने पूज्य नेताओं के विचार बड़ी श्रद्धा से तन्मय हो सुने। इस इलाके में ऐसा सफल ग्राम-सम्मेलन जिसमें इतनी बड़ी संख्या में ग्रामीण सम्मिलित हुए हों, सम्भवतः नहीं हुआ।

बाद में श्री ला० हरदेवसहाय जी ने ग्रामीणों की सेवा की कसौटी पर कसे अपने अनुभवपूर्ण विचार लोगों के सामने रख कर उनके उद्धार, मुक्ति की व्यवहारिक योजना बतलाई। आपने गाँव वालों की निरक्षरता दूर

करने के लिए प्रौढ तथा हिन्दी पाठशालाएँ खोलने, हर एक हिन्दी जानने वाले के कम से कम एक आदमी को हिन्दी सिखाने के कार्य पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। बर्तमान लड़ाई की हलचल में खद्दर तथा अन्य ग्राम्य-शिल्प को उन्नति देने, घर-घर गाय अवश्य रखने, नकली घी तथा इसकी मिलावट को बन्द करने, पार्टीबाजी बन्द करके एकता के लिये गाँव-गाँव में पञ्चायतें स्थापित करने के महत्व को बतलाया। बर्तमान युद्ध का गाँव वालों पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? संसार की नई योजना में भागीदार बनने के लिए रचनात्मक कार्य ही एक मात्र आधार है आदि—महात्मा गाँधीजी की युक्तियों तथा उदाहरणों द्वारा बतलाया, शहर और गाँव वालों के सहयोग के लाभों पर प्रकाश डाला। इस सम्मेलन के कार्य के प्रभाव स्वरूप २८ को सवेरे इस इलाके के प्रमुख गाँव के रहने वाले सज्जनों ने विचार-विनिमय किया। गाँव मौजगढ के सज्जनों द्वारा हिंदी पाठशाला, व दो गाँवों में प्रौढ-पाठशाला खोलने की तजवीज हुई। साहित्य सदन, अबोहर द्वारा चलता-फिरता पुस्तकालय कमेटी के ग्राम-सेवा के काम को हाथ में लेने का निश्चय हुआ।

अन्त में श्री प्रो० विद्याधर शास्त्री एम० ए० ने भी ग्रामीणों की उन्नति के साधनों पर एक ओजस्वी भाषण दिया। इस प्रकार ग्राम-सम्मेलन रात के ११ बजे बड़ी सफलता के साथ समाप्त हुआ।

दर्शन-परिषद्—२८ ता० को प्रातः ९ बजे से पण्डाल में दर्शन परिषद् आरम्भ हुई। स्वागताध्यक्ष श्री पं० परमेश्वरानन्द शास्त्री ने एक सुन्दर भाषण दिया। इसके बाद मनोनीत सभापति श्री भीखनलाल आत्रेय ने अपना विद्वतापूर्ण गम्भीर भाषण देते हुए बतलाया कि दर्शन का उद्देश्य जीवन और संसार के सम्बन्ध में यथा सम्भव दोष रहित, सत्यात्मक, सामान्य और व्यापक सिद्धान्तों का प्राप्त कर लेना है। सब प्रकार के अनुभवों का बुद्धि द्वारा एक व्यापक और विस्तृत दृष्टि में समन्वय कर लेने का नाम दर्शन है—आदि।

अध्यापक सम्मेलन—दिन में ११ बजे पंडाल में श्री प्रोफेसर दीवानचन्द शर्मा के सभापतित्व में हुआ। आपने पञ्जाब में हिन्दी की उन्नति के लिए अध्यापकों से अपील की तथा उन्हें देश व जाति के निर्माता व पथ-प्रदर्शक बता कर अपनी जिम्मेदारी समझने अपने ज्ञान को बढाने, बाल-मनोविज्ञान का अध्ययन करने को कहा। प्रिन्सिपल परमेश्वरानन्द जी, श्री बंशीधर जी, प्रोफेसर विद्याधर जी, पं० दौलतराम जी, पं० मनोहर लाल जी, पं० खुशीराम जी, श्रीमती सीतादेवी जी के भी प्रभाव-शाली व्याख्यान हुए। शिक्षण-संस्थाओं में भारतीय संस्कृति के उपासक व हिन्दी प्रेमी अध्यापक रखने, हिंदी अध्यापकों को जनता में हिन्दी-प्रचार करने तथा अपने को सुदृढ व सुसङ्गठित कर अन्य विषयों के अध्यापकों जैसे सम्मानित बनने, सरकार को ट्रेनिंग कालेज में हिंदी तथा संस्कृत ट्रेनिंग पुनः जारी करने तथा स्कूलों में प्रारम्भ से ही हिंदी की पढाई का प्रबन्ध करने तथा सिनेमा आदि की निर्णायक उप-समितियों में अनुभवी शिक्षा शास्त्रियों और अध्यापकों को भी उचित स्थान देने विषयक कई प्रस्ताव स्वीकृत हुए जिन्हें कार्यान्वित करने के लिए १७ सज्जनों की एक समिति श्री बंशीधर जी के संयोजकत्व में बनी।

अधिवेशन की दूसरी बैठक—दोपहर बाद अधिवेशन की दूसरी बैठक हुई जिसमें दस प्रस्ताव स्वीकृत हुए (प्रस्ताव अन्यत्र छपे हैं)। विद्वानों ने इन प्रस्तावों पर बोलते हुए हिन्दी का महत्व बतलाया।

राष्ट्र-भाषा परिषद्—संध्या में ८॥ बजे आरंभ हुई। स्वागताध्यक्ष श्री राजेन्द्र कुमार जैन की अनुपस्थिति में श्री लक्ष्मीचन्द जैन ने उनका भाषण पढा, जो अन्यत्र इसी अंक में छपा है। तत्पश्चात् सभापति महोदय श्री ग० र० वैशम्पायन ने सरल, प्रवाह पूर्ण भाषा में बड़ा हृदयस्पर्शी भाषण दिया तथा हिन्दी का प्रबल समर्थन योग्यता पूर्वक दिया। राष्ट्र-भाषा के सम्बन्ध में श्री अमरनाथ काक, श्री जैनेन्द्र कुमार, श्रीमती लेखवती जैन,

श्रीमती कमलाबाई किबे तथा श्री माखनलाल चतुर्वेदी के भी प्रभावशाली भाषण हुए। ११ बजे कार्यवाही समाप्त हुई।

नामधारियों का समारोह—२९ ता० को प्रातः ८ से ९ बजे तक पण्डाल में हुआ। उनके गुरु जी महाराज श्री प्रतापसिंह जी की संरक्षता में यज्ञ, संकीर्तन संगीत आदि बड़े प्रभावशाली ढङ्ग से हुआ जिसमें पू० टण्डन जी, श्री सम्पूर्णानन्द जी के अलावा अन्य बहुत से प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया।

विज्ञान परिषद्—२९ ता० को प्रातः ९ बजे से आरम्भ हुई श्री डा० रामजीनारायण डी० एस-सी० पी एच० डी० ने अपना विद्वत्तापूर्ण सुन्दर स्वागताध्यक्ष भाषण पढ़ा। तत्पश्चात् मनोनीत सभापति आयुर्वेदआनन श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल का आयुर्वेद के ऊपर एक खोज पूर्ण विस्तृत भाषण हुआ।

महिला सम्मेलन—दिन के ११ बजे महाराष्ट्र की श्रीमती कमलाबाई किबे के प्रधानत्व में हुआ। दूर-दूर के गाँवों से आई तथा स्थानीय महिलाएँ बहुत भारी संख्या में उपस्थित थीं। वन्देमातरम् के अनन्तर स्वागताध्यक्षा श्रीमती सीतादेवी विशारदा ने आगत देवियों का स्वागत करते हुए प्रभावशाली भाषण दिया।

श्रीमती किबे ने अपने भाषण में कहा मैं अच्छी तरह हिंदी नहीं बोल सकती, तो भी मैं हिंदी में बात-चीत करने में गौरव समझती हूं। महिला समाज को हिन्दी में बोलने तथा अन्य व्यवहार में अपनी ही भाषा का प्रयोग करना चाहिए। हिन्दी साहित्य बहुत प्रभावशाली है, यह हमें एक नई शक्ति प्रदान करता है। हिन्दी साहित्य को अपनाना हमारा धर्म है। जो बहनें हिन्दी नहीं जानतीं, उन्हें अवश्य हिन्दी सीखनी चाहिए।

"हिन्दी बोलने वालों को ध्यान रखना चाहिए कि वह शुद्ध और साफ हिंदी बोलें, क्योंकि कल जब हमारा देश स्वतन्त्र होगा तो यही राष्ट्रभाषा होगी। एक दूसरे प्रांत के परस्पर प्रेम तथा आपसी बर्ताव के लिए हिन्दी ही हमारी सहायक हो सकती है।

'सारे संसार की संस्कृति आज हमारी ओर आँखें लगाये बैठी है। राष्ट्र के नाते हमें हिन्दी को अपनाना चाहिए और हम आज निश्चय करती हैं कि इसे अन्त में राष्ट्रभाषा बना कर ही रहेंगी।"

इसके बाद में—पंजाब सरकार की, महिलाओं से भी हिंदी पढ़ने का अधिकार छीनने की नीति का विरोध करने, पंजाब में हिंदी प्रचार के लिए विशेष प्रयत्न करने तथा कशमीर में भी महिलाओं को अन्य राज्यों व प्रांतों की तरह प्रतिनिधित्व देने—विषयक ३ प्रस्ताव स्वीकृत हुए तथा सम्मेलन बड़ी सफलता से समाप्त हुआ।

इस वर्ष नीचे लिखे अनुसार पारितोषिक दिये गये श्री मंगलाप्रसाद पारितोषिक (१२ सौ रु०) श्री सम्पूर्णानन्द जी को 'समाजवाद' पुस्तक पर, श्री सेकसरिया पारितोषिक (५ सौ रु०) श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा को 'विहाग' पुस्तक पर, श्री रत्नकुमारी पारितोषिक श्री हरिकृष्ण प्रेमी को 'स्वप्न भङ्ग' पुस्तक पर, श्री नारंग पारितोषिक (सौ रुपये) श्री काशीराम शास्त्री 'पथिक' को 'मुक्तिगान' पुस्तक पर मिला।

साहित्य परिषद्—रात को ८ बजे से आरम्भ हुई। स्वागताध्यक्ष श्री सन्तराम बी० ए० ने अपने भाषण में हिन्दी साहित्य की अपेक्षा पंजाब में हिंदी भाषा के प्रचार का महत्व बतलाया। सभापति श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने एक विद्वतापूर्ण गम्भीर भाषण में हिंदी-साहित्य की मौजूदा गति-विधि की विवेचना की। श्रीयुत् नन्ददुलारे वाजपेयी तथा श्री ललिप्रसाद शुक्ल के भी साहित्य पर विद्वतापूर्ण भाषण हुए।

कवि सम्मेलन—साहित्य परिषद् के पश्चात् ९॥ बजे रात से कवि सम्मेलन श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के सभापतित्व में हुआ। कवि सम्मेलन की कार्यवाही सुनने के लिए जनता भारी संख्या में आई थी तथा मञ्च भी कवियों से ठसाठस भरा हुआ था, जिनमें दूर-दूर के प्रांतों के प्रमुख-प्रमुख कवि थे यथा—श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री सोहनलाल द्विवेदी, श्री 'बच्चन' श्री हरिकृष्ण प्रेमी, श्री उदयशंकर भट्ट, श्री उपेन्द्रनाथ अश्क, सुश्री सुमित्रा कुमारी सिनहा सुश्री चन्द्रमुखी ओझा, श्रीयुत् 'अंचल', श्रीयुत् सर्वदानंद वर्मा, श्रीरामेश्वर 'करुण' श्री सत्यभूषण योगी, श्री रामकृष्ण भारती, श्री खुशीराम

वाशिष्ठ श्री 'मुकुल' आदि। स्वागताध्यक्ष श्री उदयशंकर भट्ट ने कवि सम्मेलन का सारा आयोजन किया था। रात के १ बजे तक कवि सम्मेलन चलता रहा।

प्रीति भोज – स्वागत समिति के कार्यवाहक प्रधान, प्रधान मंत्री तथा अन्य २–३ प्रतिष्ठित सज्जनों की ओर से ३० ता० को प्रातः ८ बजे टाउनहाल में एक प्रीति भोज आगत प्रतिनिधियों तथा साहित्यिकों को दिया गया तथा साधारण परिचय भी कराया गया। लगभग डेढ सौ व्यक्ति इसमें सम्मिलित हुए।

समाज शास्त्र परिषद – ३० दिसम्बर को ९ बजे श्री भगवानदास केला के सभापतित्व में आरंभ हुई। स्वागताध्यक्ष श्री पं० भगवद्दत्त ने अपने भाषण में प्राचीन ग्रन्थों की खोज पर जोर दिया। सभापति महोदय ने समाज शास्त्र साहित्य की मौजूदा स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए कहा कि···अभागा है वह समाज, जिसके औसत व्यक्ति का ज्ञान बहुत निम्न कोटि का हो, चाहे उसमें दो-चार महानुभाव कितने ही विद्वान और सुप्रसिद्ध क्यों न हों। हां, अपने सर्व साधारण का ज्ञान-बल बढ़ाकर ही समाज के सुन्दर भविष्य की आशा करनी चाहिए आदि।

श्री प्रभुदयाल जी तोशाम (हिसार) निवासी ने, जो वर्षों से वैदिक साहित्य के अध्ययन में लगे हैं, अपने भाषण में आर्यों का निकास तोशाम से सिद्ध किया। समाज-शास्त्र पर अन्य निबन्ध भी पढ़े गये।

सम्मेलन की चौथी बैठक—दिन के १२॥ बजे से आरंभ हुई। कुछ प्रस्ताव स्वीकृत होने के बाद स्थायी समिति के लिए ४० सदस्यों का चुनाव हुआ। इसके बाद 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' के सम्बन्ध में इस अधिवेशन का सबमें महत्वपूर्ण प्रस्ताव माननीय श्री टण्डन जी ने उपस्थित किया जिसके पक्ष विपक्ष में १ दर्जन से अधिक प्रमुख वक्ताओं ने भाषण दिये। सब प्रस्तावों के स्वीकृत होने के बाद में अधिवेशन का कार्य समाप्त हुआ। अन्त में श्री स्वामी केशवानन्द जी ने स्वागत समिति की ओर से आगत प्रतिनिधियों, विद्वानों को सम्मेलन पर पधारने के लिए हार्दिक धन्यवाद दिया। इसके अलावा, इस अधिवेशन को सफल बनाने के लिए जिन सैंकड़ों कार्यकर्त्ताओं, स्वयं सेवकों तथा संस्थाओं ने तन, मन, धन, से वा किसी भी रूप में जो सहायता-सहयोग दिया, उन सबका भी हार्दिक धन्यवाद दिया।

इसके बाद में श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने प्रतिनिधियों की ओर से स्वागत समिति का, इतने थोड़े समय में इतनी भारी तैयारी करके सम्मेलन को अपूर्व सफलता दी, इसके लिए धन्यवाद दिया। सम्मेलन का अधिवेशन सानन्द समाप्त हुआ।

मंत्री मण्डल का चुनाव—रात के ९ बजे स्थायी समिति के ४० नये सदस्यों का नाम घोषित किया गया। इसके बाद, अगले वर्ष के लिए मंत्री-मण्डल का चुनाव इस प्रकार हुआ:—

सभापति—पं० अमरनाथ झा
उप सभापति—१. माननीय बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन
,, २. श्री सम्पूर्णानन्द जी
प्रधान मंत्री—श्री रामप्रसाद 'त्रिपाठी' एम.ए., डी. एस-सी
प्रबंध मंत्री – श्री रामलखन शुक्ल, एम० ए०
परीक्षा मंत्री—श्री दयाशङ्कर दुबे, एम०ए, एल-एल०बी०
साहित्य मंत्री—श्री रामचन्द्र टण्डन एम० ए०
प्रचार मंत्री—श्री अलगूराय शास्त्री एम० एल० ए०
संग्रह मंत्री – श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल
सहायक मंत्री श्री रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी'

सत्य हरिश्चन्द नाटक—रात को ८ बजे से रामनाटक क्लब में जाट विद्यालय सङ्गरिया के विद्यार्थियों ने खेला, जो बहुत ही सुन्दर तथा प्रभावकारी था। हजारों की संख्या में जनता उसे देखने आई तथा विद्यार्थियों के प्रदर्शन से अत्यन्त प्रसन्न होकर कई व्यक्तियों ने उन्हें पुरस्कार भी दिया।

इस प्रकार सम्मेलन का यह वृहत् आयोजन तथा इसके अन्तर्गत हुई विविध परिषदों तथा सम्मेलनों का कार्य निर्विघ्न तथा बड़ी सफलता पूर्वक समाप्त हुआ और आगत प्रतिनिधि तथा विद्वान् इस अधिवेशन से एक नया भाव, सुन्दर स्मृति लेकर लौटे।
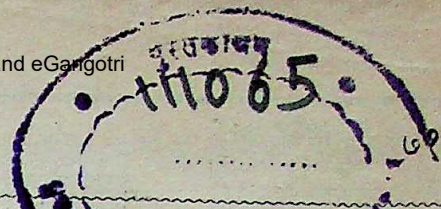
दीपक के प्रकाश में—

संस्कृत का अध्ययन (उसकी उपयोगिता उचित दिशा)—लेखक श्री डा० राजेन्द्रप्रसाद प्रकाशक—आरती मन्दिर पटना। पृ० संख्या १२८, मू० १)—आज हम लोग जिस संस्कृत को मुर्दा तथा नीरस कहते हैं उसी में श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू के शब्दों में ज्ञान का वह भण्डार है जिसके जोड़ का संसार के अन्य साहित्य में नहीं। किन्तु हमने उससे लाभ न उठाया। प्रस्तुत पुस्तक में उसी संस्कृत की महिमा का वर्णन करते हुए उसकी भाषा की पूर्णता, महत्वपूर्ण अपार साहित्य को बताया है जो ज्ञान-विज्ञान कला-कौशल तथा भारतीय इतिहास की सामग्री से पूर्ण है। अपने जिस विविध विषयक शास्त्रीय ज्ञान द्वारा भारतवर्ष हजारों वर्ष तक संसार में शिरोमणि रहा—अन्य देशों का मार्ग दर्शक बना, वह ज्ञान—संस्कृतभाषा में ही अवतीर्ण हुआ तथा आज भी उसीके साहित्य द्वारा लभ्य है। ऐसी महिमा मयी भाषा तथा साहित्य का गुणगान इस पुस्तक में हुआ है। पुस्तक के विचारों का जितना अधिक प्रचार होगा, उतना ही देशवासी अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य की ओर आकर्षित होंगे।

आरती—(नववर्षांक)—सम्पादक—श्री प्रफुल्लचन्द ओझा 'मुक्त' प्रकाशक—आरती मन्दिर पटना, वा० मू० ५) इस अङ्क का ।।।)—'आरती' विहार की एक मात्र प्रगतिशील साहित्यिक पत्रिका है जो पाठकों को कलापूर्ण, उन्नत साहित्य भेंट करती है। प्रस्तुत अङ्क में भी सुयोग्य विद्वानों के साहित्यिक लेख, उद्बोधक सुरुचि-पूर्ण कविताएं, सरस कहानियां तथा एकांकी नाटक हैं। श्रद्धेय डा० राजेन्द्रप्रसाद का 'युग धर्म' लेख बहुत सामयिक तथा हमारे लिए देश व संसार की आज की स्थिति में मार्ग निर्देशक है। छपाई, गेट-अप बहुत सुन्दर, दर्जनों चित्र। पत्रिका सर्वथा पठनीय है।

विश्ववाणी (संस्कृति अङ्क १म भाग)—सम्पादक विश्वम्भरनाथ, प्रकाशक—मैनेजर 'विश्ववाणी' इलाहाबाद वा० मू० ६), इस अङ्क का २), पृ० संख्या २००। 'विश्ववाणी' भारतीय सांस्कृतिक ऐक्य के लिए सदैव प्रयत्नशील रहती है। इस अँक में लगभग ३ दर्जन चोटी के विद्वानों ने आदि मानव से लेकर भारत की आज तक की संस्कृति की विभिन्न कालों की अवस्थाओं तथा विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उनका वर्णन किया है। भारतीय संस्कृति के रक्षक पुरातत्व खोज के प्राचीन स्थानों व ग्रन्थों आदि का भी परिचय तथा खोज में पायी सामग्री के चित्र हैं। इस अङ्क की सामग्री बहुत महत्व पूर्ण, पठनीय तथा संग्रहणीय है।

हिन्दी-टीचर (उर्दू)—लेखक वीरविश्वेश्वर बी० ए० भूषण, प्रकाशक—रा० सा० मुन्शी गुलाबसिंह एण्ड सन्स लाहौर। पृ० संख्या ९६, मू० ≡)१०, कश्मीर राज्य के शिक्षा विभाग में हिन्दी उर्दू की शिक्षा अनिवार्य होने से उर्दू के अध्यापकों के लिए ऐसी पुस्तकों की मांग हुई जो उन्हें उर्दू के द्वारा हिन्दी का प्रारम्भिक ज्ञान कराये। इसी उद्देश्य को सामने रखकर यह पुस्तक लिखी गई है तथा बड़ी बारीकी से उर्दू जाननेवालों को हिन्दी के स्वर, व्यंजन, मात्राएँ, संयुक्त अक्षर, बारहखड़ी तथा उच्चारण आदि का परिचय कराती है। उपरोक्त सब बातें उर्दू के साथ-साथ हिन्दी में भी दी गई हैं ताकि उर्दू पढा व्यक्ति आसानी से हिन्दी जान सके। उर्दू के विद्वानों को हिंदी का प्रारँभिक ज्ञान कराने के लिए बड़ी उपयोगी है।

सेवक (साप्ताहिक)—श्री लाः हरदेवसहाय के सम्पादकत्व में नयाबाजार देहली से प्रकाशित, वा० मू० ३)—'सेवक' हरियाणा प्रान्त का मुख-पत्र है, ग्रामीणों की सेवा इसका मुख्य ध्येय है। ग्रामीणों के कष्टों व मांगों को अधिकारियों व जनता तक पहुँचाता है। बेगार, रिश्वतखोरी तथा अफसरों की मनमानी से उनकी रक्षा करता है। मिलावटी घी, दुर्व्यसनों और मुकदमेबाजी जैसी ग्रामों को तबाह करने वाली बुराइयों के विरुद्ध भारी आन्दोलन करता है तथा गोरक्षा, शिक्षा प्रचार, घरेलु दस्तकारी आदि ग्रामोद्धार के रचनात्मक कार्यों का जबरदस्त प्रचारक है। इस पत्र के पीछे लाः हरदेवसहाय जी का तीसों वर्षों का ग्रामसेवा का ठोस, सच्चा काम तथा क्रियात्मक अनुभव है। विज्ञापनों से अछूता सरल भाषा में लिखित यह पत्र ग्रामीणों के लिए बेजोड़ है।
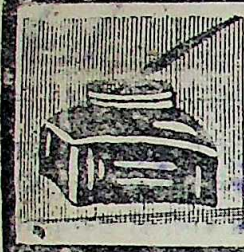
अबोहर सम्मेलन —

अ०भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अबोहर में हुआ ३० वाँ अधिवेशन सफलता पूर्वक समाप्त हो गया। इस सम्बन्ध में स्वागत समिति का कर्त्तव्य था प्रांत में सम्मेलन का अधिक से अधिक प्रचार, सम्मेलन पर अधिक से अधिक हिंदी जनता को एकत्र करना तथा आगत प्रतिनिधियों व अतिथियों के स्थान, भोजन का प्रबंध और अधिवेशन के लिए स्थान यानी पंडाल की व्यवस्था। स्वागत समिति को समय थोड़ा मिलने पर भी, उसने अपने इन कर्त्तव्यों को जिस तत्परता और परिश्रम से पूरा किया उसका अनुमान, इसी अङ्क में दिये अबोहर सम्मेलन के कार्य-विवरण तथा सम्मेलन में भाग लेने वाले साहित्यिकों के इस अधिवेशन विषयक लेखों से लग सकेगा। फिर इस अधिवेशन द्वारा जितना भारी आन्दोलन अबोहर इलाके के सैंकड़ों गाँवों व कस्बों में हुआ उतना किसी पूर्व अधिवेशन द्वारा उसके समीपस्थ इलाके में शायद ही हुआ हो। देश भर में, विशेषतः पञ्जाब में, राष्ट्रभाषा प्रचार के मार्ग में, उपस्थित कठिनाइयों को दूर करने के लिए छोटे-बड़े २९ महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत कर देश के कोने-कोने से आये प्रतिनिधियों ने इस अधिवेशन पर अपने कर्त्तव्य का सुचारु रूप से पालन किया। श्री सभापति महोदय ने जिस योग्यता तथा सुन्दरता से अधिवेशन की समस्त कार्यवाही का सञ्चालन किया उसके लिए वे स्वागत समिति, स्थायी समिति, प्रतिनिधि तथा दर्शकगण —सभी की प्रशंसा के पात्र हैं। दर्शकगण ने भी भारी संख्या में उपस्थित होकर समस्त कार्यवाही में भाग लिया तथा विद्वानों के भाषण शांति-पूर्वक सुने। इस प्रकार, इस अधिवेशन के सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों ने यथोचित रूप से अपने कर्त्तव्य का पालन किया तथा अधिवेशन को सफल बनाने के कारण बने।

अस्तु, सम्मेलन की मौजूदा कार्य-प्रणाली के अनुसार अबोहर-अधिवेशन का सब कार्य ठीक-ठाक हुआ। किंतु सम्मेलन के हितेच्छुक बहुत से विद्वान्, साहित्यिक तथा कार्यकर्त्ता सम्मेलन की उन्नति तथा विकास के लिए उसकी मौजूदा कार्य-प्रणाली में कुछ परिवर्त्तन आवश्यक समझते हैं। परिषदों की मौजूदा पद्धति में परिवर्त्तन कर उन्हें अधिक उपयोगी बनाना, स्थायी समिति की चुनाव-पद्धति में सुधार, विद्वानों-साहित्यिकों के परस्पर मिलन, परिचय तथा विचार-विनिमय व साहित्य चर्चा का आयोजन, कवि सम्मेलन के मौजूदा रूप में सुधार—आदि विषयों में वे उचित परिवर्त्तन चाहते हैं। एक बात और, जिस प्रांत में सम्मेलन होता है वहाँ हिन्दी का प्रचार तथा आन्दोलन कई मास तक होते रहने से, वहाँ की जनता में उसके लिए कुछ करने की इच्छा जाग्रत होती है। सम्मेलन को इस भावना से लाभ उठाकर अधिवेशन के बाद में अपने प्रचारक उक्त प्रांत में नियुक्त करके स्वीकृत प्रस्तावों को कार्य रूप देने का प्रयत्न करना चाहिये। इससे उक्त प्रांत में हिन्दी प्रचार को विशेष गति मिलेगी। पञ्जाब प्रांत के लिए तो सम्मेलन को इस ओर कार्य करने का बहुत अच्छा अवसर है। अगला अधिवेशन भी तो पञ्जाब में ही हो रहा है। आशा है सम्मेलन की स्थायी समिति उपरोक्त बातों पर विचार करके आवश्यक कार्य करने के लिए प्रयत्नशील होगी।

अगला अधिवेशन भैणीसाहब में —

सम्मेलन के ३१ वें अधिवेशन को नामधारी सिखों के गुरु श्री प्रतापसिंह जी महाराज ने आमन्त्रित किया है। अगला अधिवेशन नामधारियों के प्रमुख स्थान श्री भैणी-साहब (लुधियाना) में होगा। अतः अबोहर-सम्मेलन की यह सबसे बड़ी सफलता है कि उसमें सम्मेलन को सिखों ने अपनाया है।

रत्न, भूषण, प्रभाकर परीक्षार्थियों के लाभार्थ

'दीपक' का नया आयोजन

'हिन्दी-परीक्षा-मन्दिर' की स्थापना

पञ्जाब युनिवर्सिटी की हिन्दी परीक्षाओं में बैठने वालों की संख्या दिन दिन बढ़ती जा रही है। हिन्दी की उन्नति के लिए यह शुभ लक्षण है। इन परीक्षाओं में प्रति वर्ष हजारों परीक्षार्थी बैठते हैं, किन्तु पञ्जाब में हिंदी का कोई भी ऐसा पत्र नहीं है जो ऐसी सामग्री देता हो जिससे परीक्षार्थियों को इन परीक्षाओं की तैयारी में सहायता मिले हम इस कमी का बहुत समय से अनुभव कर रहे थे, किन्तु अभी तक 'दीपक' में परीक्षोपयोगी सामग्री नियमित रूप से देने का प्रबन्ध न कर सके थे।

परीक्षार्थियों को सूचित करते हर्ष होता है कि अब हमने 'दीपक' में प्रतिमास परीक्षोपयोगी उच्चकोटि की सामग्री देने का स्थायी रूप से प्रबन्ध कर लिया है तथा इस मास से 'दीपक' में 'हिन्दी-परीक्षा-मन्दिर' शीर्षक स्तम्भ आरम्भ कर दिया है। इसमें सुयोग्य विद्वानों तथा साहित्यिकों के रत्न, भूषण, प्रभाकर परीक्षाओं संबंधी विवेचनात्मक तथा विद्वतापूर्ण लेख व निबन्ध नियमित रूप से प्रकाशित हुआ करेंगे।

सौभाग्य से 'परीक्षा मन्दिर' विभाग के सम्पादन के लिए हमें श्री चन्द्रकान्त बाली शास्त्री, प्रभाकर, श्रीराम निकेतन मुलतान शहर जैसे परीक्षाओं के अनुभवी विद्वान् तथा प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति का सहयोग प्राप्त हो गया है। अतः परीक्षा संबंधी लेख, पत्र दि इसी पते पर आने चाहिएँ। इस कार्य में इन परीक्षा के अध्यापकों तथा परीक्षार्थियों का पूर्ण सहयोग चाहिए तभी हम इस स्तम्भ को परीक्षार्थियों के लिए अधिक से अधिक उपयोगी बना सकेंगे।

परीक्षांक—मई के प्रथम सप्ताह में 'दीपक' का 'परीक्षांक' प्रकाशित होगा जिसमें समस्त लेख परीक्षाओं सम्बन्धी ही होंगे, मूल्य लगभग १) अबोहर में हुए अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन की सम्पूर्ण कार्यवाही भाषण लेख आदि से युक्त 'दीपक' का **सम्मेलनांक अङ्क** भी प्रकाशित हुआ है। स्थायी ग्राहक बनने वालों को ये **विशेषांक** अमूल्य मिलेंगे। इस सुअवसर से लाभ उठाने के लिए

व. पिंक मू० २।)   **शीघ्र ग्राहक बनिये**   एक प्रति ।)

प्रबंधक 'दीपक' साहित्य सदन अबोहर (पंजाब)

मुद्रक:— श्री कुलभूषण, दीपक प्रेस, साहित्य सदन, अबोहर (पंजाब)